इकाई-१

इतिहास दृष्टि व साहित्य इतिहास लेखन

इकाई की रूपरेखा :

१.१ इकाई का उद्देश्य

१.२ प्रस्तावना

१.३ इतिहास दृष्टि एवं साहित्य इतिहास लेखन

१.३.१ भारतीय दृष्टिकोण

१.३.२ पाश्चात्य दृष्टिकोण

१.४ साहित्य का इतिहास दर्शन

१.५ साहित्येतिहास क्या है ?

१.६ सारांश

१.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी : -

- इतिहास दृष्टि के अंतर्गत भारतीय दृष्टिकोण और पाश्चात्त्य दृष्टिकोण का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगें
- साहित्य इतिहास लेखन की परम्परा से अवगत होंगे।
- साहित्य के इतिहास दर्शन को जानेंगे।
- साहित्येतिहास क्या है यह जान सकेंगे।

१.२ प्रस्तावना

यह सर्वविदित हे कि हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा दोनों एक लम्बी यात्रा की परिणति है। हिन्दी साहित्य में अध्ययन रत होने पर यह कुतुहुल होता है कि साहित्य की यह यात्रा शुरु कहाँ से होती है और कैसे होती है। इसका इतिहास क्या है और जो आज हमारे सामने प्रस्तुत है उसे उस लिखित रूप में किसने और कैसे लिखा उसका उद्देश्य और स्वरूप क्या था इन सभी प्रश्नों के हल के साथ हजारों वर्ष की यात्रा से अवगत होना ही साहित्यवाचक का प्रमुख ध्येय हो जाता है।

munotes.in

१.३ इतिहास दृष्टि एवं साहित्य इतिहास लेखन

किसी भी राष्ट्र की नागरिक शिक्षा और उसके सार्वजनिक जीवन में इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। उसके द्वारा मनुष्य अपने मानसिक एवं बौद्धिक क्षितिज को व्यापकता प्रदान करता है। मानव-जीवन में क्या स्थाई है, क्या अस्थाई, इसका निर्णय हम इतिहास द्वारा कर सकते हैं। इतिहास केवल जातीय, भावनात्मक और राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन नहीं हैं। कुछ विपरीत मतों के रहते हुए भी, उससे महान और उच्च कोटि के व्यक्तियों के संपर्क में आने से पाठक का चारित्रिक उत्थान होता है, सह-अनुभूति पैदा होती है। मनुष्य के नैतिक कर्म और उसकी नियति में सम्बन्ध और मानव क्रिया-कलाप का बहुमुखी व्यापकत्व स्थापित होता है। इतिहास के अध्ययन से एक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का रहस्य ही नहीं, अपने जातीय जीवन का रहस्य भी जान जाता है। इसलिए सम्पूर्ण जगत के सम्बन्ध में संतुलित दृष्टिकोण ग्रहण करने के लिए, वर्तमान को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए और समग्र जीवन का क्षेत्र अपने सामने रखने के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। जीवन के रास्ते पर चलते हुए मुसाफिर को अपने चारो ओर का वातावरण और परिस्थिति समझने के लिए इतिहास उसके पथ-प्रदर्शन का काम करता है। इतिहास के अध्ययन के बिना न तो दूरदर्शी जननायक और राजनेता का जन्म हो सकता है और न राजनीति में विवेकपूर्ण सक्रिय भाग लिया जा सकता है। इतिहास मानव जाति की आत्मचेतना को जगाता है और अंतरात्मा को पहचानने का साधना प्रदान करता है। इस रूप में इतिहास की परिधि इतनी विस्तृत हो गई है कि मानव जाति का समग्र जीवन उसके अध्ययन का विषय बन गया है। इतिहास की इसी व्यापक परिधि से साहित्येतिहास भी सम्बद्ध है।

इतिहास के अध्ययन के लिए अलग-अलग विद्वान अलग-अलग द्दृष्टिकोणों का प्रयोग करते हैं। ये दृष्टिकोण भी समय के अनुसार बदलते रहते हैं - इसी तथ्य के आधार पर 'इतिहास दर्शन' विषय की स्थापना हुई। जिसमें इतिहास के सम्बन्ध में प्रयुक्त व प्रचलित अलग-अलग दृष्टिकोणों, धारणाओं तथा विचारों का अध्ययन किया जाता है। अतः, इतिहास संबंधी इन्हीं विचारों या धारणाओं को सामूहिक रूप में इतिहास दर्शन कहा जाता है। इतिहास दर्शन का सर्व प्रथम प्रयोग वाल्टेयर ने किया था, परन्तु हीगेल को इसका जनक माना जाता है क्योंकि उन्होंने ही इतिहास के सम्बन्ध में दर्शन का प्रयोग किया। उनके अनुसार - 'इतिहास दर्शन का अर्थ इतिहास संबंधी चिंतन युक्त विचारों के अतिरिक्त कुछ नहीं है।' अधिकांश विद्वानों का मानना है कि इतिहास दर्शन भी दर्शन शास्त्र का ही एक अंग है तथा इसका उद्देश्य मानव समाज के ऐतिहासिक मूल्यों एवं लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त करना भी है। इतिहास दर्शन इतिहास धारा की गति एवं लक्ष्य को समझने का प्रयास करता है। इस प्रकार इसका स्वरूप नीतिपरक न होकर विज्ञानात्मक है और यह एक वैज्ञानिक दर्शन है। इस सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि में कुछ भिन्नता है। जिसे हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं :

१.३.१ भारतीय दृष्टिकोण :

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आदर्शमूलक एवं अध्यात्मवादी रहा है। यहाँ चिरंतन मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता रहा है। इसीलिए यहाँ के प्राचीन इतिहासकार इस परिवर्तनशील संसार में भी उन प्रवृत्तियों की खोज करते दिखाई देते हैं जो मनुष्य को स्थाई एवं अमर बनाती हैं। उन्होंने घटनाओं एवं क्रियाकलापों की व्यवस्था सम्पूर्ण समाज के हित में अधिक

की है। यही कारण है कि यहाँ प्राचीन युगीन इतिहासकारों की रचनायें चारित्रिक मूल्यों, नैतिक उपदेशों, तथा आध्यात्मिक रूपकों के साथ पौराणिक रूप में बदल गई। यहाँ सत्यम, शिवम् और सुन्दरम के समन्वय का प्रयास ही अधिक रहा। बाद में बाण और कल्हण जैसे कुछ इतिहासकारों ने इससे अलग दृष्टि अपनाते हुए यथार्थपरक वस्तु एवं तथ्यों को अधिक महत्व दिया लेकिन काव्यात्मकता एवं अलंकृति का मोह इनके यहाँ अधिक मिलता है।

१.३.२ पाश्चात्य दृष्टिकोण :

पाश्चात्य विद्वानों की इतिहास दृष्टि में भी व्यापक विरोध दिखाई देता है। यूनानी विद्वान् हिरोदोतस इतिहास को 'अनुसंधान', 'गवेषणा' या 'खोज' मानते हुए इसे वैज्ञानिक विद्या, मानवीय विद्या तथा तर्कसंगत विद्या और शिक्षाप्रद विद्या मानते है।

हीगल के अनुसार 'विश्व इतिहास की प्रक्रिया का मूल लक्ष्य मानव-घटना का विकास है जो द्वंद्वात्मक पद्धति पर आधारित है। इसके अनुसार वाद (thesis) एवं प्रतिवाद (anti-thesis) के द्वंद्व से संवाद (synthesis) का विकास होता हैं। इतिहास की व्याख्या भी इसी द्वंद्वात्मक पद्धति पर होनी चाहिए।'

१९ वीं शताब्दीं में डार्विन ने इसे 'विकास क्रम का विवेचन' बताया। कार्ल मार्क्स, एंजिल्स, मारगन आदि विद्वानों ने विकासवाद के विभिन्न पक्षों की व्याख्या अपनी दृष्टि से करते हुए उसे अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत किया। बीसवीं सदी के विद्वानों में स्पेंगलर और टर्नर आदि ने विश्व संस्कृति और सभ्यता के इतिहास की व्याख्या विकासवादी नियमों और प्रवृत्तियों के आधार पर करने का प्रयास किया।

१.४ साहित्य का इतिहास दर्शन

साहित्य के इतिहास में हम प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय क्रिया कलापों के स्थान पर साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा जी का मानना है कि 'साहित्यिक रचनायें साहित्यकारों की सर्जनात्मक क्रियाओं और प्रवृत्तियों की सूचक होती हैं, अतः उनके इतिहास को समझने के लिए उनके रचयिताओं तथा उनसे सम्बन्धित स्थितियों, परिस्थितियों और परम्पराओं का समझना भी आवश्यक हैं।' अंग्रेजी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा भी इस बात को स्वीकारा गया है कि 'साहित्य की प्रवृत्तियाँ सम्बन्धित समाज की प्रवृत्तियों की सूचक होती हैं।'

मार्क्सवाद से प्रभावित आलोचकों ने द्वंद्वात्मक भौतिक विकासवाद, वर्ग संघर्ष और आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में साहित्य की विकास प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। वहीं मनोविश्लेषण और अर्थविज्ञान के आधारपर भी साहित्य के विभिन्न पक्षों - विशेष रूप से शैली पक्ष के विकास की व्याख्या आई.ए. रिचर्ड और सी.एस. लेविस आदि विद्वानों ने की है।

इन सभी विद्वानों के विचारों में कुछ न कुछ भिन्नता है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि आज साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण केवल साहित्य तक सीमित रहकर नहीं किया

munotes.in

जा सकता है। उसकी विषयगत प्रवृत्तियों तथा शैलीगत प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए उससे सम्बन्धित राष्ट्रीय परम्पराओं, सामाजिक वातावरण, आर्थिक परिस्थितियों, युगीन चेतना और साहित्यकार की वैयक्तिक प्रवृत्तियों का विवेचन-विश्लेषण भी आवश्यक है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'वस्तुतः परम्परा और युगीन वातावरण के अंतर्विरोधों से उत्पन्न द्वंद्व ही साहित्य के विभिन्न आन्दोलनों, उसकी धाराओं और प्रवृत्तियों को गति देता हुआ साहित्य की विकास प्रक्रिया को संचालित करता है। साहित्येतिहास की विकासवादी व्याख्या के लिए उन सभी तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है जो साहित्यकार के व्यक्तितत्त्व एवं उससे सम्बन्धित पूर्व परम्परा, युगीन वातावरण, द्वंद्व के स्त्रोत, अभीष्ट लक्ष्य पर प्रकाश डालते हैं।' इसलिए, अंत में यह कहना उचित होगा कि जिस प्रकार सामान्य इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन विकासवाद के आधारपर ही संभव है, उसी प्रकार साहित्य के इतिहास की भी वैज्ञानिक व्याख्या के लिए विकासवादी सिद्धांतों का आधार ग्रहण करना आवश्यक है।

१.५ साहित्येतिहास क्या है?

साहित्येतिहास के सम्बन्ध में अनेकानेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। जिसे निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं :

१) मानव के क्रिया - कलाप का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में विवेचनात्मक अभिलेख साहित्येतिहास है जिसके लिए इतिहासवेत्ता को दार्शनिक, कला-पारखी और समाज शास्त्री बनना पड़ेगा।

२) साहित्य सक्रिय हैं - साहित्येतिहास प्रवृत्ति मूलक, विवरणात्मक होता है। वह अनुभूतियों का स्पष्टीकरण करता है। उसमें परिवर्तित होती हुई चित्त-वृत्तियों का विकास और कृति के महत्त्व का निर्धारण रहता हैं।

३) जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार साहित्येतिहास विधेयवादी इतिहास लेखन है जिसमें युग-विभाजन, प्रवृत्ति निरूपण, पृष्ठभूमि निर्देश, तुलनात्मक अध्ययन, मूल्यांकन आदि विशेषताएं रहती हैं।

४) टी.एस. इलिएट ने साहित्येतिहास का अस्तितत्त्व ही नहीं माना, क्योंकि साहित्य जीवंत कृति है। वह कभी प्राचीन नहीं होता, इसलिए उसका इतिहास नहीं हो सकता। साहित्य में जो भाव और अनुभूतियाँ व्यक्त होती हैं उनका कोई इतिहास नहीं होता। किसी कृति की PASTNESS होती ही नहीं, उसमें पुरानापन होता ही नहीं। साहित्य सनातन है, सदैव विद्यमान है। उसका अस्तितत्व समक्षणिक 'Simultaneous' होता है। कला में नैरन्तर्य होता है, विकास नहीं। उसका न तो अतिक्रमण हो सकता है और न पुनरावृत्ति। साहित्य सर्वव्यापी अनन्त का ज्ञान है। कुछ अन्य विद्वानों ने भी साहित्येतिहास की निरर्थकता को सिद्ध किया है।

५) कुछ विद्वानों ने कृतियों के सम्बन्धों, स्त्रोतों, और प्रभावों का विवेचन भी साहित्येतिहास का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना है। प्रभाव डालने वाली कृतियों से विचारों, समानांतर उक्तियाँ, रूढ़ मुहावरों, रूपकों, समान विषय आदि में समानता खोजने में ये विद्वान् प्रयत्नशील रहते हैं। उनका यह दृष्टिकोण तुलनात्मक अध्ययन और मौलिकता की खोज करने की ओर प्रेरित करता हैं। वे यह देखना चाहते हैं कि साहित्यकार परम्परा से, रूढ़ विषयों, बिम्बों आदि से

अलग नवीन अनुभूतियों की उद्भावना की दृष्टि से भावात्मक और कलात्मक दृष्टि से कहाँ तक मौलिक है। परम्परा के सन्दर्भ में प्रत्येक कृति का उचित मूल्यांकन करना उनकी दृष्टि में साहित्येतिहास का पहला काम है। एक ही लेखक की कई रचनाओं में से किसी एक परिपक्व रचना में मूल्यों की खोज या उसकी निश्चित विशेषता और आदर्श टाइप का पता लगा कर भी यह कार्य पूर्ण किया जा सकता है। किसी एक लेखक की कृति के अतिरिक्त किसी एक काल या किसी राष्ट्र के समग्र साहित्य के आधार पर इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायता प्राप्त होती है।

६) साहित्येतिहास में साहित्य का विकास किसी मूल्य या आदर्श से जोड़ा जाता है। ऐतिहासिक प्रक्रिया की परख मूल्य से की जाती है और मूल्यों का मापदंड स्वयं इतिहास से ग्रहण किया जाता है। साहित्य का विकास जैव-विकास से अलग और अमूर्त होता है। उसका कोई शाश्वत मापदंड नहीं होता। इसलिए साहित्येतिहास मूल्यों की परिवर्तनीय योजनाओं के सन्दर्भ में ही लिखा जा सकता है और यह योजना स्वयं इतिहास से प्राप्त होती है।

७) विभिन्न विधाओं के इतिहास की समस्या भी साहित्येतिहास की एक समस्या मानी गई है। इसमें विधाओं की विच्छिन्न परम्पराओं और युगों के बीच सम्बन्ध सूत्र या सातत्य स्थापित कर समूचे इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता होती है। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि के विकासात्मक इतिहास इसी कोटि में आते हैं। लोक साहित्य से भी उनका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। आधुनिक काव्य या गद्य-विधाओं के इतिहास के लिए क्लासिक और मध्य युगीन भेदों-प्रभेदों का अध्ययन आवश्यक है किन्तु, यह अध्ययन प्रभेदों के वर्णन या अलग-अलग विवेचन की सम्बद्ध श्रृंखला बन कर नहीं रह जाना चाहिए। किसी विधा का क्रम टूट भी सकता है, तो भी कालबद्ध लक्ष्य अपने दिमाग में रखना जरुरी है।

इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कहना है कि 'साहित्येतिहास संबंधी धारणा के मूल में ज्ञान की वह विधा है जिसके अंतर्गत मानवजाति की सभ्यता का समग्र इतिहास आ जाता है और उसी इतिहास का एक प्रधान अंग साहित्येतिहास है जिसमें मानव-चेतना के सन्दर्भ में साहित्य का अध्ययन किया जाता है।' वहीं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का स्थाई प्रतिबिम्ब होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चलता है। आदि से अंत तक उन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ-साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।" वहीं डॉ. मैनेजर पाण्डेय के अनुसार 'साहित्येतिहास साहित्य के विकासक्रम के अंतर्गत होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या है और हर तरह की व्याख्या के लिए एक सुसंगत दृष्टिकोण की आवश्यकता होती हैं। एक व्यापक विचार प्रक्रिया ही इतिहास को सुसंगति प्रदान करती है।' वास्तव में साहित्येतिहास की रचना करते समय भलीभाँति ज्ञात और अल्पज्ञात सभी रचनाओं पर विचार किया जाता है। अपने आप में साहित्येतिहास अगाध पांडित्य का प्रतीक है। इसका अंतिम लक्ष्य मनुष्य की चेतना और चिरंतन वास्तविकताओं की खोज करना है।

इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि मानव-सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए साहित्येतिहास उसी प्रकार ज्ञान की एक स्वतंत्र विद्या है जिस प्रकार विज्ञान, धर्म, समाज,

राजनीति और दर्शन आदि स्वतंत्र विधायें हैं। साहित्येतिहास लेखन के लिए समाजशास्त्र तथा समाज शास्त्रीय पद्धति का ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना इतिहास और संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। यह सच है कि साहित्य युग और समाज का यांत्रिक उत्पादन नहीं है और उसका साहित्यकार की प्रतिभा से घनिष्ठ सम्बन्ध है, परन्तु यह भी उतना ही सच है कि साहित्येतिहास में साहित्य की व्याख्या युग चेतना तथा सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ में ही होती है। इस सत्य को समझ कर ही साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है। वास्तव में साहित्य का इतिहासकार अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण के आधार पर अपने ग्रन्थ के लिए विषय सामग्री का चयन करता है, उसे सुव्यवस्थित रूप देता है, उसे युगों में विभाजित करता है तथा उसमें कार्यकारण का सम्बन्ध स्थापित करते हुए उसकी व्याख्या करता है। निश्चित ही साहित्येतिहास लेखन एक जिम्मेदारी से भरा महत्त्वपूर्ण कार्य है जो किसी भी साहित्य की विकास यात्रा और युगीन साहित्यगत विशेषताओं से हमारा परिचय करता है।

१.६ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से इतिहास दर्शन क्या है। इतिहास दर्शन का अर्थ विभिन्न विद्वानों के इतिहास संबंधी चिंतन और मान्यताओं इतिहास दर्शन धारा की गति और लक्ष्य समझने का पूर्ण प्रयास हुआ है।

१.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) साहित्येतिहास को स्पष्ट करते हुए साहित्य के इतिहास दर्शन पर प्रकाश डालिए।
२) साहित्येतिहास किसे कहते है ? इसके लिए किन बातों पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है ?

१.८ लघुत्तरी प्रश्न

१) इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण कैसा रहा है ?
२) यूनानी विद्वान हिरोदोतस ने इतिहास को क्या माना ?
३) होगल के अनुसार विश्व इतिहास प्रक्रिया का मूल लक्ष्य क्या है ?
४) डॉ. रामविलास शर्माजी के अनुसार साहित्यिक रचनाएँ साहित्यकारों के लिए क्या होती है ?
५) मार्क्सवादी आलोचकों ने किस संदर्भ में साहित्य की विकास प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है ?
६) जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार साहित्येतिहास क्या है ?
७) टी. एस. इलिएट ने साहित्येतिहास का अस्तित्व क्यों नहीं माना ?
८) डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार साहित्येतिहास संबंधी धारणा के अंतर्गत क्या आता है ?

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-२

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा एवं पुनर्लेखन की समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा :

२.१ इकाई का उद्देश्य
२.२ प्रस्तावना
२.३ हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा एवं पुनर्लेखन की समस्याएँ
२.३.१ साहित्य चेतना का विकास
२.३.२ नवीन शोध परिणाम
२.४ सारांश
२.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
२.६ लघुत्तरीय प्रश्न

२.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है -

साहित्येतिहास लेखन, उसकी आवश्यकताओं और उसकी परम्परा एवं समस्याओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है।

२.२ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन के अंतर्गत इतिहास दृष्टि को स्पष्ट करते हुए साहित्येतिहास और साहित्य लेखन पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही साहित्येतिहास लेखन की परम्परा, उसके लेखन में आने वाली कठिनाइयों और उसकी आवश्यकताओं पर टिप्पणी की गई है।

२.३ हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा एवं पुनर्लेखन की समस्याएँ

हिन्दी साहित्य की जड़ें भले ही हजार वर्ष पीछे तक फैली हों लेकिन उसके इतिहास लेखन की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है। यद्यपि कि नाभादास ने अपनी रचना 'भक्तमाल' में

munotes.in

कुछ भक्तों और कवियों का विवरण दिया है, वहीं जायसी द्वारा भी अपने काव्य में पूर्ववर्ती प्रेम काव्य के कवियों का उल्लेख किया गया है और गोकुलनाथ द्वारा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में पुष्टिमार्ग में दिक्षित वैष्णवों का जीवन चरित आदि मिलता है। इसे हम साहित्य का इतिहास तो नहीं कह सकते लेकिन साहित्येतिहास लेखन की पूर्व पीठिका कहने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों जैसे - कविमाला (सन १६५५), कालिदास हजारा (सन १७१९), भाषा काव्य संग्रह (सन १८७३) के नाम भी इस श्रेणी में लिए जाते हैं।

यद्यपि कि डॉ. नगेन्द्र और डॉ. शिवकुमार शर्मा आदि अनेक परवर्ती लेखकों ने फ्रेंच विद्वान् - 'गार्सा द तासी' को हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास लेखक माना है। उन्होंने फ्रेंच भाषा में लिखित अपनी पुस्तक 'हिन्दुई और हिन्दोस्तानी साहित्य का इतिहास' (प्रथम भाग - १८३९ और दूसरा भाग - १८४७) में हिन्दी के ७० कवियों सहित उर्दू के कुछ कवियों का विवरण काल क्रमानुसार दिया है।

इस परम्परा में अगला नाम शिवसिंह सेंगर का लिया जा सकता है। जिन्होंने अपनी पुस्तक 'सरोज' में लगभग एक हजार छोटे-बड़े भाषा कवियों के जीवन चरित और उनकी कविताओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए यह पुस्तक महत्वपूर्ण मानी गई। 'सरोज' की भूमिका के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है शिवसिंग सेंगर भाषा साहित्य के आरम्भ संबंधी ऐतिहासिक समस्या से जूझे थे और उनका कुच समाधान भी प्रस्तुत किया था। सन १८८३ ई. में प्रकाशित इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में जॉर्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि 'एक देशी ग्रन्थ जिस पर मैं अधिकांश रूप में निर्भर रहा हूँ और प्रायः सभी छोटे कवियों और अनेक प्रसिद्ध कवियों के सम्बन्ध में प्राप्त सूचनाओं के लिए जिसका मैं ऋणी हूँ …… अत्यंत लाभदायक 'शिवसिंह सरोज' है।'

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में तीसरा महत्त्वपूर्ण नाम जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन का लिया जाता है। सन १८८८ ई. में एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में उनका आलेख 'द मॉडर्न वरनाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' छपा और सबसे पहले यहीं हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री को काल क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया। इसमें ९५२ कवियों की चर्चा की गई है। डॉ. सुमन राजे के अनुसार - 'ग्रियर्सन ने केवल कालों का वर्गीकरण ही नहीं किया बल्कि उन्हें उपयुक्त नामों से विभूषित भी किया।' ग्रियर्सन के इस इतिहास में भावी हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के सभी चिन्ह विद्यमान हैं।

आगे के विद्वानों में बाबू श्यामसुंदर दास की रचना 'हिन्दी कोविद ग्रन्थ - माला' (प्रथम भाग सन १९०९ ई. और दूसरा भाग सन १९१४ ई.) प्रकाशित हुई। इसके बाद मिश्र बंधुओं द्वारा रचित 'मिश्रबन्धु - विनोद' चार भागों में प्रकाशित हुआ। इसमें से प्रथम तीन भाग तो सन १९१३ में ही प्रकाशित हो गये थे लेकिन चौथा भाग सन १९३४ में प्रकाशित हुआ। यद्यपि कि इन ग्रंथों से साहित्येतिहास लेखन को कोई नई गति नहीं मिल पाई। फिर भी, यहाँ आते-आते ऐतिहासिक दृष्टिकोण का विकास होता गया तथा राष्ट्रीयता की भावना व्यापक एवं परिपक्व होती गई। इसीलिए राष्ट्र के सामान्य इतिहास तथा साहित्येतिहास के शोध कार्यो में वृद्धि होती गई। रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'वास्तव में हिन्दी साहित्य के इतिहास का जन्म श्रद्धेय मिश्र बंधुओं द्वारा ही हुआ … उन्होंने साहित्य के इतिहास का नया मार्ग दिखलाया है।'

munotes.in

यद्यपि की कुछ अन्य पुस्तकें और आलेख भी इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुए लेकिन हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का परिपक्व रूप आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सन १९२९ ई.) में पहली बार दिखाई दिया। इस पुस्तक में उन्होंने साहित्यिक आंदोलनों और प्रवृत्तियों के आरम्भ और विकास तथा उनके ऱ्हास के कारण ऐतिहासिक परिवेश में खोजने का प्रयास किया। साहित्यिक प्रवृत्तियों की छान-बीन उनके साहित्येतिहास की सबसे बड़ी विशेषता है तथा हिन्दी साहित्येतिहास लेखन को सबसे बड़ी देन है। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्येतिहास के विवेचन को अधिक से अधिक तर्कसंगत एवं युक्तियुक्त बनाने की और विशेष ध्यान दिया। यह इतिहास शिल्प की दृष्टि से भी अत्यंत उत्कृष्ट है। डॉ. सुमन राजे के अनुसार - 'शुक्ल जी का वर्गीकरण कालजयी सिद्ध हुआ है। सर्वप्रथम उन्होंने किसी पुष्ट आधार पर विभाजन किया है एवं उसके कारण भी प्रस्तुत किये है।' शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्येतिहास के मूल विषय को आरम्भ करने से पूर्व की काल विभाजन के अंतर्गत हिन्दी साहित्य के लगभग ९०० वर्षो के इतिहास को चार काल-खंडों में विभाजित करके अपनी पूरी योजना को एक ऐसे निश्चित रूप में प्रस्तुत कर दिया कि पाठक की सभी शंकायें स्वतः ही समाप्त हो गई। यद्यपि कि बाद में कुछ नए तथ्यों और निष्कर्षों के अनुसार उस पर अस्पष्टता के आरोप अवश्य लगाये गए लेकिन अपनी सरलता के कारण यह ग्रन्थ आज भी बहुमान्य हैं।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के क्षेत्र में आ. शुक्ल के बाद रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' - हिन्दी साहित्य का इतिहास (सन १९३१) डॉ. रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (सन १९३८) आदि प्रमुख रहे। लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (सन १९४०) से हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के क्षेत्र में नए युग का आरम्भ माना जाता है। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में साहित्येतिहास लेखन की एक नवीन पद्धति का सूत्रपात किया। असल में आचार्य द्विवेदी जी ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास लेखन की कमियों को अच्छी तरह समझ लिया था और पहली बार उन्होंने इतिहास को सांस्कृतिक तथा सामाजिक पीठिका पर स्थापित किया। डॉ. नामवर सिंह इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'पूर्ववर्ती व्यक्तिवादी इतिहास प्रणाली' के स्थान पर सामाजिक अथवा जातीय ऐतिहासिक प्रणाली का आरम्भ करने वाली यह पहली हिन्दी पुस्तक है। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' क्रम और पद्धति की दृष्टि से इतिहास के रूप में प्रस्तुत नहीं है किन्तु उसमें विभिन्न स्वतंत्र लेखों में कुछ ऐसे तथ्यों और निष्कर्षो का प्रतिपादन किया गया है जो हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए नई दृष्टि, नई सामग्री और नई व्याख्या प्रदान करते हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा कि 'भक्ति आन्दोलन न तो तद्‌युगीन पराजित हिन्दू जाति की निराशा से उद्‌वेलित है और न इस्लाम कि प्रतिक्रिया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सातवीं-आठवीं शती में, जबकि भारत की धरती पर इस्लाम की छाया भी नहीं पड़ी थी।' अन्य कालों के सम्बन्ध में द्विवेदी जी के विचार आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी से भिन्न हैं। द्विवेदी जी ने बाद में 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास' तथा 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' जैसे ग्रंथों की रचना की।

आचार्य द्विवेदी जी के बाद हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के कुछ सामूहिक प्रयास भी किये गए। जिनमें 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' द्वारा 'हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास' कुल १८ भागों में प्रकाशित किया गया। इसमें इतिहास का प्रत्येक भाग अलग-अलग आधिकारिक विद्वानों के सम्पादन में लिखा गया है। इसके साथ ही भारतीय हिन्दी परिषद् द्वारा 'हिन्दी साहित्य' तीन भागों में प्रकाशित हुआ। डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' इसी कड़ी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

munotes.in

इस परम्परा के अन्य लेखकों में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का 'हिन्दी साहित्य', डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, का 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (सन १९६५), डॉ. भागीरथ मिश्र का 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास', डॉ. नगेन्द्र का 'रीति काव्य की भूमिका', डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का 'हिन्दी साहित्य का अतीत', डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के - 'साहित्य और साहित्येतिहास' सहित इस विषय पर उनके कई शोध प्रबंध, डॉ. नलिन विलोचन शर्मा का 'साहित्य का इतिहास दर्शन', डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', डॉ. जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल का 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ', श्री राजनाथ शर्मा का 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' - एक नवीन दृष्टि (सन १९७६), डॉ. श्रीनिवास शर्मा का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सन १९८२), डॉ. बच्चन सिंह का 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', डॉ. शिवकुमार शर्मा का 'हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ' आदि अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और नई-नई खोजों के साथ थोड़े-बहुत परिवर्तन लेकर आज भी प्रकाशित हो रहे हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'गार्सा द तासी' से लेकर आज तक लगभग पौने दो सौ वर्षों में हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन अनेक दृष्टियों, रूपों एवं पद्धतियों का आकलन और समन्वय करता हुआ निरंतर प्रगति के मार्ग पर चल रहा है। हमारे नए साहित्येतिहास लेखकों ने अपनी नई खोजों को स्थापित करने के साथ-साथ विश्व इतिहास दर्शन के बहुमान्य सिद्धांतों और प्रयोगों को भी स्वीकार किया है जिसे साहित्येतिहास लेखन की एक स्वस्थ परम्परा कहा जा सकता है।

२.३.१ साहित्य चेतना का विकास :

पिछले लगभग सौ वर्षों में, या कहें कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समय के साहित्य-चिंतन और आज के साहित्य चिंतन में व्यापक परिवर्तन आया है। यद्यपि कि साहित्य के मौलिक प्रतिमानों में कोई अधिक बदलाव नहीं होता लेकिन बदलते युग बोध के कारण परिप्रेक्ष्य एवं प्रविधि प्रक्रिया आदि में परिवर्तन स्वाभाविक है। समय के साथ साहित्य चेतना का विकास भी हो रहा है दूसरा समाज के अन्य क्षेत्रों और दुनिया की अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी में भी नित नए शोध - परिणाम आ रहे हैं। जिसमें अनेक पूर्ववर्ती निर्णय और निष्कर्ष अनिवार्य रूप से बदल गए हैं। ये सभी साहित्येतिहास पुनर्लेखन की मांग करते हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार साहित्येतिहास पुनर्लेखन में कुछ समस्याएँ मुख्य रूप से लेखकों के समक्ष उपस्थित होती हैं:

१) हिन्दी का स्वरूप विस्तार कहाँ तक है ?
२) साहित्य की सीमा क्या है ?

हिन्दी के विद्वान् और अन्य भाषाविद प्रारंभ से ही यह स्वीकार करते रहे हैं कि भारत के जितने भू-भाग में हिन्दी या खड़ी बोली हिन्दी सामाजिक व्यवहार, शिक्षा-दीक्षा तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति आदि के माध्यम की भाषा है, वह पूरा हिन्दी प्रदेश है और इसके अंतर्गत बोली जाने वाली सभी भाषाएँ हिन्दी की उप भाषाएँ हैं। इस दृष्टि से वर्तमान का झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली जैसे राज्य हिन्दी क्षेत्र के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। इसलिए इन प्रदेशों में बोली जाने वाली मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बघेलखंडी, कनौजी, बुन्देलखंडी, राजस्थानी भाषाओं के विविध रूप और कुमायुनी आदि पहाड़ी बोलियाँ हिन्दी की ही शाखाएँ हैं। निश्चित ही यह एक विशाल और समृद्ध साहित्य का क्षेत्र है। लेकिन, पिछले कुछ दशकों से क्षेत्रीय बोलियों को हिन्दी से अलग स्वतंत्र भाषा के रूप में मान्यता की आवाज उठने लगी है। निश्चित ही इन बोलियों की

प्रकृति और प्रवृत्ति हिन्दी से कुछ भिन्न है। मैथिली जैसी भाषाओं को अलग भाषा के रूप में मान्यता मिल भी गई है। उसके साहित्य के अलग प्रकाशन का काम भी चल रहा है। इसी तर्क पर राजस्थानी और भोजपुरी जैसी बोलियों के लिए भी अब आवाज उठने लगी है। भविष्य में अवधी और ब्रज के अलग होने की आवाज भी उठ सकती है। निश्चित ही इन बोलियों का अपना अस्तित्व है लेकिन ये सभी बोलियाँ यदि हिन्दी से बाहर चली जायेंगी तो मात्र खड़ी बोली हिन्दी के आधार पर किस साहित्येतिहास की बात की जायेगी? निश्चित ही यह सब हिन्दी को कमजोर करने का एक षडयंत्र है। दूसरी तरफ एक विस्तारवादी विचार भी है जो उर्दू को भी हिन्दी की ही उपभाषा मानता है। उनके अनुसार ब्रज आदि की तरह उर्दू का साहित्य भी हिन्दी साहित्य का ही अंग है। उदाहरण के लिए, नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी साहित्य इतिहास में उर्दू-साहित्य के विकास की भी चर्चा की गई है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में उर्दू साहित्य का जबरदस्ती समावेश उचित नहीं है। इसके साथ ही हिन्दी की अनेक उपभाषाओं - बोलियों में रचित साहित्य को समझना भी अनके बार साहित्येतिहास लेखक के समक्ष समस्या बनती है। ऐसी समस्या आदिकाल की हिन्दी के विषय में भी उठते हैं जब हिन्दी का स्वरूप अपभ्रंश, डिंगल-पिंगल और सीमावर्ती क्षेत्रों में गुजराती, पंजाबी आदि के साथ कुछ-कुछ ऐसा उलझा हुआ है रचना को किस भाषा के इतिहास में जोड़ा जाए, यह कठिन होने लगता है। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र जी का मानना है कि 'इस विषय में अधिक शुद्धतावादी दृष्टिकोण अपनाना ठीक नहीं होगा। व्यावहारिक दृष्टिकोण यही है कि ऐसी सभी रचनाओं को, जिनके अधिकांश भाषिक रूप हिन्दी की उपभाषाओं के भाषिक रूपों से अभिन्न हैं, हिन्दी के अंतर्गत मान लेना चाहिए।'

पिछले कुछ दशकों से यह भी आवाज उठ रही है कि वर्तमान में भारत का एक विशाल हिन्दीभाषी वर्ग विदेशों में रोजी-रोटी की तलाश में गया है और वहाँ व्यापक मात्रा में साहित्य लेखन कर रहा है। जिसे प्रवासी साहित्य के नाम से अभिहित किया जा रहा है। निश्चित ही उनकी रचनायें हिन्दी साहित्य की ही श्रीवृद्धि कर रही हैं और उन्हें भी हिन्दी साहित्येतिहास में स्थान मिलना चाहिए। इतना ही नहीं मॉरिशस, फिजी, त्रिनिदाद और इस प्रकार के अन्य देशों में कुछ पीढी पहले भारत से जाकर बसे हुए लोगों की नई पीढ़ियों द्वारा भी व्यापक मात्रा में साहित्य सृजन का कार्य किया जा रहा है। इन साहित्यकारों की हिन्दी रचनाओं को भी हिन्दी साहित्येतिहास का अंग बनाने की बात अनेक विद्वानों द्वारा कही जा रही है। निश्चित ही वर्तमान के हमारे हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों को इन मुद्दों पर भी विचार करना चाहिए।

हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन के समय दूसरी समस्या यह उठती है कि साहित्य की सीमा कहाँ तक मानी जाये। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र जी का मानना है कि 'हमारा दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए और रस के साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान के साहित्य का भी अंतर्भाव करना चाहिए। यह ठीक है कि साहित्य का अर्थ मूलतः यहाँ भी सर्जनात्मक साहित्य ही है और एक सीमा से आगे सम्पूर्ण वांगमय को उसके साथ समेटना संभव नहीं है।' आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी तमाम रचनायें - विज्ञान लेखन के रूप में हो रही हैं ये सब साहित्य के अंतर्गत भले ही न आयें लेकिन पूरे वांगमय का त्याग करना भी ठीक नहीं होगा। अतः साहित्येतिहास के रचनाकार को यहाँ भी विवेक पूर्वक, प्रमुख और सामान्य का भेद करते समय वांगमय के दोनों रूपों पर विचार करने की आवश्यकता होती है। वैसे भी इतिहास लेखन में समन्वयात्मक दृष्टिकोण और संतुलित विवेचन को अधिक पसंद किया जाता रहा है। इस रूप में साहित्येतिहास लेखन के समय कुछ निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये :

२.३.२ नवीन शोध परिणाम

१) नवीन शोध परिणामों और विकसित साहित्य चेतना को ध्यान में रखते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन आवश्यक है।

२) ऐतिहासिक दृष्टि और आलोचना शक्ति से युक्त एक लेखक यदि कार्य संपन्न कर सके तो ठीक होगा। किन्तु यदि यह संभव न हो तो एक निश्चित परियोजना के अंतर्गत निर्देशक सिद्धांतों का निर्धारण कर कुछ लेखकों का समुदाय मिलकर भी यह कार्य कर सकता है। नवीन शोध सामग्री का उपयोग आवश्यक है, किन्तु इस विषय में सतर्कता भी होनी चाहिए। प्रत्येक नवीन स्थापना यथावत ग्राहय और मान्य भी नहीं हो सकती।

३) साहित्य परम्परा अर्थात साहित्यिक कृतियों के परस्पर सम्बन्ध के निरूपण पर बल देना चाहिए, किन्तु प्रकृति विश्लेषण तथा प्रमुख कवि -लेखकों और रचनाओं के योगदान एवं स्थान निर्धारण का भी साहित्य के इतिहास में उतना ही महत्व है। इस रूप में रचनाकार को समन्वयात्मक पद्धति का उपयोग करना चाहिए।

४) जीवन-वृत्त तथा ग्रन्थ विवरण साहित्यिक विवेचन से पूर्व देना ही अधिक संगत होता है।

५) विक्रम संवत का प्रयोग आज व्यवहार में कम ही होता है इसलिए इसवी सन का प्रयोग पाठक के लिए अधिक सुगम होगा।

इस प्रकार यह कहना समीचीन होगा कि हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की कुछ समस्याएँ आज भी अवश्य हैं फिर भी नए शोधकार्यो के आधार पर अनेकानेक ग्रन्थ कुछ संस्थानों और विद्वानों द्वारा प्रकाशित कराए जा चुके हैं लेकिन विकास के साथ-साथ उसकी आवश्यकता भविष्य में भी बनी रहेगी।

२.४ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थियों नें हजारों वर्ष की इतिहास लेखन परंपरा को जाना। साहित्येतिहास विषय में अध्ययन शील सभी प्रमुख भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों और उनके द्वारा प्रतिस्थापित मान्यताओं का अध्ययन किया है साथ ही साहित्येतिहास, पुनर्लेखन की समस्याएँ के अंतर्गत विद्यार्थी जान सके कि हिन्दी का स्वरूप विस्तार कहाँ तक है और साहित्य की सीमा क्या है ?

२.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा को रेखांकित करते हुए उसके पुनर्लेखन की प्रमुख समस्यायें बताइए।

२) हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की आवश्यकता बताते हुए उसके पुनर्लेखन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

munotes.in

२.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) फ्रेंच विद्वान 'गार्स द तासी' अपनी कौनसी पुस्तक में हिन्दी साहित्य के इतिहास का विवरण दिया है ?
२) 'हिन्दी कोविद ग्रंथ माला' के लेखन कौन है ?
३) मिश्र बंधुओं द्वारा रचित 'मिश्र बंधु विनोद' कितने भागों में प्रकाशित है ?
४) डॉ. सुमन राजे के अनुसार शुक्लजी का वर्गीकरण कैसा है ?
५) 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पुस्तक के लेखक है ?
६) हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन के समय दूसरी समस्या क्या है ?

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-३

हिन्दी साहित्य का इतिहास : कालविभाजन व नामकरण

इकाई की रूपरेखा :

३.१ इकाई का उद्देश्य

३.२ प्रस्तावना

३.३ हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण

 ३.३.१ काल विभाजन के विविध आधार

 ३.३.२ काल विभाजन व नामकरण

३.४ नामकरण की समस्याएँ

३.५ सारांश

३.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.७ लघुत्तरी प्रश्न

३.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी हिन्दी साहित्य के काल विभाजन, उसके संबंध में विद्वानों के विचार नामकरण और उसकी समस्याओं से परिचित हो सकेंगे।

३.२ प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत हिन्दी साहित्य के लगभग ९०० से ११०० वर्ष का हिन्दी साहित्य का काल विभाजन और उससे सम्बन्धित अनेक विद्वानों के विचारों को उद्धृत करते हुए उसके नामकरण के विविध आधारों को स्पष्ट किया गया है।

३.३ हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण

साहित्य निरंतर आगे बढ़ती हुई एक नदी की धारा की तरह होता है। उसमें निरंतरता होती है, वह कभी भंग नहीं होती, उसी प्रकार हर विकास के साथ पिछली पीढ़ियों का सहयोग जुड़ा होता है। किसी युग विशेष के साथ जो प्रवृत्तियाँ उभरती हैं वे आकस्मिक नहीं होती हैं। फिर भी जैसे नदी पहाड़ों, जंगलों और मैदानी क्षेत्रों में अलग-अलग रूप धारण करती है ठीक

munotes.in

उसी प्रकार साहित्य-रूपों में भी कुछ परिवर्तन दिखाई देता है और वही परिवर्तन उसके काल विभाजन एवं नामकरण की प्रेरणा देता है। साहित्य का काल विभाजन करके हम उसकी लम्बी यात्रा के विविध पड़ावों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। साहित्य के इतिहास को देशकाल और समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रख कर समझने में काल-विभाजन हमारी सहायता करता है। एक तरह से अध्ययन की सुविधा के लिए यह आवश्यक भी है। वैसे, यह कहना कि अमुक काल इस तिथि को शुरु हुआ और यहाँ समाप्त हो गया, उचित नहीं होगा। क्योंकि, एक काल की प्रवृत्तियाँ दूसरे काल तक मिलती हैं और उसे प्रभावित भी करती हैं। उसी प्रकार नामकरण भी पूर्णतः सत्य नहीं हो सकता। वीरगाथा काल, भक्ति काल के नामकरण का यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि इन युगों में क्रमशः वीर और भक्ति के अतिरिक्त दूसरी रचनायें नहीं हुई। हाँ, इस युग में उस भावधारा की रचनाओं की अधिकता अवश्य रही और उसी अधिकता को ध्यान में रख कर उनका नामकरण किया गया।

३.३.१ काल विभाजन के विविध आधार :

सामान्यतः साहित्य के इतिहास का काल विभाजन कृति, कर्ता, पद्धति और विषय की दृष्टि को ध्यान में रखकर किया जाता है। कभी-कभी नामकरण के किसी सुदृढ़ आधार के उपलब्ध न होने पर उस काल के किसी अत्यंत प्रभावशाली साहित्यकार के नाम पर भी उसका नामकरण कर दिया जाता है। जैसे - भारतेंदु युग और द्विवेदी युग। कभी-कभी साहित्य सृजन की मुख्य शैलियों के आधार पर भी काल विभाजन कर लिया जाता है। जैसे - छायावादी युग, प्रगतिवादी युग और प्रयोगवादी युग। इसके साथ ही कभी-कभी मानव - मनोविज्ञान और तत्कालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति को भी नामकरण का आधार बना लिया जाता है। मानव मनोविज्ञान के आधार पर किसी समय को आदि (प्रारंभिक), मध्य और अंत (आधुनिक) इन तीन भागों में विभाजित किया जाता है। वहीं हिन्दी साहित्येतिहास में वीरगाथा काल, भक्ति काल, और रीतिकाल जैसे नाम प्रवृत्तियों के आधार पर ही दिए गए हैं। डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार 'कभी-कभी साहित्य में अनेक धारायें और प्रवृत्तियाँ एक साथ समान वेग से उदित और विकसित होती दिखाई देती हैं। इस प्रकार की संक्रमणशीलता एवं किसी विशिष्ट प्रवृत्ति के प्रधान और अप्रधान हाने की अनिश्चयात्मक स्थिति में साहित्य का अध्ययन उसके काव्य-रूप भेदों के आधार पर कर लिया जाता है। साहित्य के इन काल विभाजनों के विविध आधारों में से किसी को भी अपनाया जा सकता है किन्तु स्मरण रखना होगा कि उस आधार को साहित्य की अन्तर्निहित चेतना के क्रमिक विकास के समग्र अवबोध की प्रक्रिया में साधक सिद्ध होना चाहिए न कि बाधक।'

३.३.२ काल विभाजन व नामकरण :

गार्सा द तोसी - हिन्दी साहित्य के क्रमिक काल विभाजन का प्रथम प्रयास गार्सा द तोसी ने किया लेकिन उनके यहाँ केवल शताब्दी और कवियों के नाम ही मिलते हैं :

१) नौवीं शताब्दी - सबसे पहले हिन्दू कवि हैं।
२) बारहवीं शताब्दी - चंद, पीपा
३) तेरहवीं शताब्दी - बैजू बावरा
४) चौदहवीं शताब्दी - खुसरो
५) पंद्रहवी शताब्दी - भक्ति-पद्धति संबंधी रचनायें - कबी, गोपालदास, धरमदास, नानक, भागोदास आदि।

६) सोलहवीं शताब्दी - सुखदेव, नाभाजी, वल्लभ, बिहारी, गंगादास
७) सत्रहवीं शताब्दी - सूरदास, तुलसीदास, केशवदास
८) अठाहरवी शताब्दी - गंगापति, वीरभान, रामचरण, शिवनारायण
९) उन्नीसवीं शताब्दी - बख्तावर, दूल्हाराम, छत्रदास

(साहित्य और साहित्येतिहास - डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृष्ठ : ११५)

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन - यद्यपि कि हमारे अधिकांश साहित्येतिहास लेखक इसे महत्व न देते हुए जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के काल विभाजन को हिन्दी का प्रथम काल विभाजन मानते हैं. जो निम्नवत है:

१) The bardic Period - वीरगाथा काल (सन ७०० से १३०० ई.)
२) The Religious Revival of Fifteenth Century - 15 वीं शताब्दी का धार्मिक जागरण
३) The Romantic poetry of Malik Muhammad - मलिक मुहम्मद का प्रेम काव्य (सन १५४० ई.)
४) The Krishna Cult of Braj - ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय (सन १५०० - १६०० ई.)
५) The Mugal court - मुगल दरबार
६) Tul'si Das - तुलसीदास
७) The Ars Poetica - रीतिकाव्य (सन १५८०-१६९२ ई.)
८) Other Successors of Tul'si Das - तुलसीदास के परवर्ती कवि (सन १६००-१७०० ई.) भाग १ - धार्मिक कवि, भाग - २ अन्य कवि
९) The Eighteen Century - अठारहवीं शताब्दी
१०) Hindustan Under Company - कंपनी के काल में हिन्दुस्तान (सन १८००-१८५७ ई.)
१०) Hindustan under Queen - महारानी के काल में हिन्दुस्तान (सन १८५७-१८८७)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित और सर्वाधिक प्रमाणिक विभाजन आचार्य रामचंद्र शुक्ल का माना गया। उन्होंने हिन्दी साहित्य को चार भागों में विभाजित किया :

१) आदि काल (वीरगाथा काला - वि.सं. १०५० से १३७५ तक अर्थात सन ९९३ से १३१८ ई. तक)
२) भक्तिकाल (पूर्व मध्य काल - वि.स. १३७५ से १७०० तक अर्थात सन १३१८ से १६४३ ई. तक)
३) रीतिकाल (उत्तर मध्य काल - वि.स. १७०० से १९०० तक अर्थात सन १६४३ से १८४३ ई. तक)
४) आधुनिक काल (गद्य काल - वि.स. १९०० से अब तक अर्थात सन १८४३ ई. से अब तक)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रत्येक काल के लिए दुहरे नामकरण किये हैं। उन्होंने आदिकालीन साहित्य में वीरगाथा की प्रमुखता को देखते हुए उसे 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। मध्यकाल को साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर दो भागों में बाँट दिया है। प्रथम भाग अर्थात पूर्व मध्यकाल में भक्ति की तथा द्वितीय भाग अर्थात उत्तर मध्यकाल में रीति पद्धति की प्रधानता को देखते हुए उन्हें क्रमशः भक्तिकाल और रीतिकाल नाम दिया है। वहीं आधुनिक काल में गद्य लेखन की प्रवृत्ति को देखकर उसका नाम 'गद्य काल' रखा है। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने जिस कालखंड के साहित्य में जिस प्रवृत्ति की अधिकता देखी उसे उसी के अनुरूप उन्होंने काल-विभाजन और नामकरण किया है।

आ. शुक्ल का यह काल विभाजन निश्चित ही अपने आप में प्रमाणिक और विश्वसनीय है लेकिन जिस वीरगाथा काल को उन्होंने सं. १०५० से माना है उसे बाद की खोजों के आधार पर अनेक विद्वानों ने सन ७०० ई. के आस-पास मानना शुरु किया है। इसका मुख्य आधार नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय के योगियों तथा जैन आचार्यों की रचनायें हैं। इसी आधार पर शिव सिंह 'सरोज' कवि 'पुष्प' को हिन्दी का पहला कवि मानते हैं तो वहीं राहुल सांकृत्यायन 'सरहपा' को हिन्दी का प्रथम कवि मानते हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य के काल विभाजन को वि.सं. ७५० से मानते हैं और उसे संधिकाल की संज्ञा देते हैं। उनका विभाजन निम्नवत है :

१) संधिकाल - वि.सं. ७५० से १००० तक
२) चारण काल - वि.सं. १००० से १३७५ तक
३) भक्तिकाल - वि.सं. १३७५ से १७०० तक
४) रीतिकाल - वि.सं. १७०० से १९०० तक
५) आधुनिक काल - वि.स. १९०० से अब तक

वर्मा जी ने संधिकाल में अपभ्रंश की रचनाओं को शामिल किया है। उनके चारण काल और शुक्ल जी के वीरगाथा काल में कोई अंतर नहीं है। वीर गाथाओं के रचयिता चारण ही कहलाते थे।

गणपति चंद्र गुप्त - गणपतिचन्द्र गुप्त नें अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (१९६५) में हिन्दी साहित्य का प्रारंभ सन ११८४ से मानते हुए निम्नलिखित रुप में करते हैं।

१) प्रारंभिक काल - सन ८८४ से १३५० ई. तक
२) मध्यकाल - i - पूर्व मध्यकाल - सन १३५० से १५०० ई.
ii - उत्तर मध्यकाल - सन १५०० से १८७५ ई. तक
३) आधुनिक काल - सन १८७५ ई. से आज तक

इस प्रकार थोड़े - बहुत परिवर्तनों और नामों में भी कुछ हेरफेर के साथ तमाम विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। सामान्य रूप से स्वीकृत कालविभाजन को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :

१) आदि काल या वीरगाथा काल - सन १००० ई. से १३५० ई. तक
२) भक्तिकाल - सन १३५० ई. से १६५० तक
३) रीतिकाल - सन १६५० से १८५० ई. तक
४) आधुनिक काल - सन १८५० ई. से अब तक

यद्यपि कि पछिले लगभग पौने दो सौ वर्षो में काव्य के साथ-साथ गद्य शैली ने भी प्रर्याप्त विकास किया है। इसे ध्यान में रखते हुए साहित्येतिहास लेखकों द्वारा आधुनिक काल को भी अलग-अलग भागों में विभाजित करने का प्रयास किया गया है। जिसे निम्नलिखित रूप में देख सकते है :

१) भारतेंदु युग - सन १८५० से १९०० ई. तक
२) द्विवेदी युग - सन १९०० से १९१८ ई. तक
३) छायावाद युग - सन १९१८ से १९३८ ई. तक
४) प्रगति वाद - सन १९३८ से १९४३ ई. तक
५) प्रयोग वाद - सन १९४३ से १९५३ ई. तक

इसके बाद नवलेखन काल, नई कविता, साठोत्तरी कविता, स्वातंत्र्योत्तर साहित्य आदि अनेक नाम आते हैं। इतिहास सन १९७० के आस-पास 'समकालीन' शब्द लगभग सर्वसम्मति से उभर कर सामने आता है और समकालीन कविता, समकालीन कहानी, समकालीन उपन्यास एवं समकालीन नाटक आदि लगभग सभी विधाओं के प्रारंभ में समकालीन शब्द जुड़ने लगता है। यहाँ एक बात का ध्यान और रखना होगा कि पिछले लगभग चार-पाँच दशकों में कुछ विद्वानों ने अलग-अलग विधाओं के विकास क्रम को भी रेखांकित किया है। जिनमें गोपाल राय द्वारा सृजित 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास', हिन्दी कहानी का इतिहास भाग - ०१, हिन्दी कहानी का इतिहास भाग - ०१ एवं भाग - ०२ (वर्ष २०१४) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार की रचनायें साहित्येतिहास लेखन के अंतर्गत भले न रखी जायें लेकिन इनसे उस निश्चित विधा का २१ वीं सदी तक के विकास का पता तो चल ही जाता है। और अब, सन २००० के बाद की कविता को कुछ विद्वानों द्वारा नई सदी की कविता के नाम से अभिहित किया जा रहा है।

munotes.in

३.४ नामकरण की समस्याएँ :

हिन्दी साहित्य में काल विभाजन के साथ-साथ नामकरण को लेकर भी विद्वानों में मतैक्यता नहीं रही। इसका मुख्य कारण था कि विद्वानों ने नामकरण के अलग-अलग आधार अपनाए।

डॉ. नगेन्द्र इस बात को स्पष्ट करते हैं कि - आ. रामचंद्र शुक्ल ने वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल जो नाम दिए उनमें 'उन्होंने जॉर्ज ग्रियर्सन और मिश्र बंधुओं के कुछ संकेत अवश्य ग्रहण किये हैं, परन्तु काल - विभाजन और नामकरण की अंतिम तर्क पुष्ट व्याख्या उनकी अपनी है। इनमे से भक्ति और आधुनिक काल को यथावत स्वीकार कर लिया गया है परन्तु वीरगाथा काल और रीतिकाल के सम्बन्ध में विवाद रहा है। वीरगाथा

काल के विरुद्ध यह आपत्ति है कि जिन वीरगाथाओं के आधार पर शुक्ल जी ने यह नामकरण किया है, उसमें से कुछ अप्राप्य हैं और कुछ परवर्तीकाल की रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त जो साहित्य इस कालखंड में लिखा गया, उसमे सामंती और धार्मिक तत्वों की प्रधानता होने पर भी कथ्य और माध्यम के रुपों की ऐसी विविधता और अव्यवस्था है कि किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर उसका सही नामकरण नहीं किया जा सकता। यह समय संभवत: अभी हिन्दी साहित्य के जन्म के बाद उसके संवरने का समय था. वह अपभ्रंश के प्रभाव से अभी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया था। उसमें वीर, श्रृंगार, रहस्योपासना आदि को अभिव्यक्ति मिल रही थी। इसीलिए इसे आदिकाल से अधिक उचित हिन्दी का आरंभिक काल कहना होगा। द्विवेदी जी द्वारा इसे 'आदिकाल' नाम दिया गया। लेकिन कुछ विद्वानों का यह मानना है कि 'आदिकाल' शब्द आदिम युग की तरफ संकेत करता है जबकि इस समय अनेक अच्छी रचनायें भी हमें मिलती हैं जो हिन्दी के कुछ विकसित होने का संकेत देती हैं।'

इसी प्रकार भक्ति के स्वर की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए आ. शुक्ल जी ने भक्तिकाल नाम दिया। इस पर तो विद्वानों में मतैक्यता है। रीतिकाल के विषय में मतभेद की परिधि सीमित है। वहाँ विवाद का विषय सिर्फ इतना ही है कि उस युग की प्रवृत्ति में रीति-तत्व प्रमुख हैं या श्रृंगार-तत्व? इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र जी का मानना है कि 'जिस युग में रीति तत्व का समावेश केवल श्रृंगार में ही नहीं, भक्ति काव्य और वीर काव्य में भी हो गया था - उसका नाम रीति काल ही अधिक समीचीन है।' निश्चित ही इस काल में नीति काव्य भी व्यापक मात्रा में लिखे गए फिर भी प्रधानता काव्य शास्त्रीय रचनाओं की ही रही इसलिए रीतिकाल ही सर्वाधिक उपयुक्त नाम है।

हिन्दी साहित्य के लगभग सभी साहित्यकारों ने संवत १९०० से आरम्भ होने वाले युग को आधुनिक काल ही कहा है। आ. शुक्ल और आ. द्विवेदी जी इसे आधुनिक काल नाम ही देते हैं। बाबू श्यामसुंदर दास ने इसे 'नवीन विकास का काल' कहा है। 'आधुनिक काल' शब्द केवल समय सूचक शब्द बनकर रह जाता है। कुछ विद्वानों का तर्क है कि जब शुक्ल जी ने पहले तीन कालों का नामकरण प्रवृत्तियों के आधार पर किया तो आधुनिक काल का नाम भी उसी पर रखना चाहिये था। इस समय राष्ट्रीय चेतना को ध्यान में रखते हुए 'राष्ट्रीय जागरण का काल' पुनर्जागरण का काल भी कहा जा सकता था। आधुनिक काल को भी आ. शुक्ल जी ने तीन चरणों में विभक्त किया उसे प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय उत्थान कहा। प्रथम और द्वितीय के सम्बन्ध में तो उन्होंने संकेत किया कि इन्हें क्रमशः भारतेंदु युग और द्विवेदी युग भी कहा जा सकता है लेकिन इसके आगे के लिए उन्होंने कुछ नाम नहीं दिया। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र जी का कहना है कि 'पहला काल-खंड जीवन और साहित्य में पुनर्जागरण का युग था। अतः इसे पुनर्जागरण नाम दिया जा सकता है। चूँकि, भारतेंदु के व्यक्तित्व और कृतित्व में, जिन्होंने अपने जीवन काल में इस युग का नेतृत्व किया और जिनका प्रभाव मरणोपरांत भी बना रहा - इसलिए उस काल का नामकरण उनके नाम पर करने में भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती।' प्रायः इसी पद्धति और युक्ति से द्वितीय उत्थान - जागरण - सुधार - काल को द्विवेदी युग भी कहा जा सकता है।

तीसरे चरण की सर्व प्रमुख प्रवृत्ति है छायावाद, इसलिए उसका नाम छायावाद ही उचित है। इसके बाद परिवर्तन का एक दौर चल पड़ता है जिसमें प्रगतिवाद बहुत जल्दी ही समाप्त हो जाता और उसका स्थान प्रयोगवाद ले लेता है। कुछ समय बाद वह भी सन १९५३

के आस-पास नवलेखन में परिणत हो गया। आगे अनेक धाराएँ विकसित होती रहीं और उनके समर्थकों द्वारा अलग-अलग वादों का समर्थन भी किया जाता रहा। स्वाभाविक है कि अब हिन्दी भाषा और साहित्य दोनों अपने विकास के चरम पर पहुँच रहे हैं। अनेकानेक वैज्ञानिक संसाधनों ने भी इसको गति प्रदान की है और छोटे-बड़े रचनाकारों की कई पीढ़ियों आज एक साथ अलग-अलग माध्यमों से साहित्य सृजन का कार्य कर रही हैं ऐसे में किस आधार को केंद्र में रख कर हिन्दी साहित्य के पिछले पचास वर्षो के रचना काल का नामकरण किया जाए यह आज के विद्वान साहित्येतिहास लेखकों के लिए भी एक चुनौती है।

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हम हिन्दी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण के विषय में संपूर्ण जानकारी हासिल कर सके। साथ ही विभिन्न विद्वानों के मतों का विवरण दे सकते है व नामकरण की समस्याओं के विवरणात्मक पहलुओं का अध्ययन कर सके।

३.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) हिन्दी साहित्य के काल विभाजन और उसके नामकरण को रेखांकित कीजिए।
२) काल विभाजन संबंधी सभी प्रमुख विद्वानों द्वारा दिए गए मत पर सविस्तार चर्चा कीजिए।
३) हिन्दी साहित्य का काल विभाजन व नामकरण का विवरण देते हुए, नामकरण की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

३.७ लघुत्तरी प्रश्न

१) हिन्दी साहित्य के क्रमिक काल विभाजन का प्रथम प्रयास किसने किया ?
२) हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक प्रमाणिक विभाजन किस विद्वान को माना जाता है ?
३) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन कितने भागों में किया है ?
४) गणपति चंद्र गुप्त ने हिन्दी साहित्य का प्रारंभ काल किस वर्ष से माना है ?
५) हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ प्रमुखतः कब से माना गया है ?

❖❖❖❖

इकाई-४

आदिकाल : परिवेश

आदिकाल : कवि

इकाई की रूपरेखा :

४.१ इकाई का उद्देश्य

४.२ प्रस्तावना

४.३ आदिकाल व वीरगाथा काल

४.४ आदिकालीन परिवेश

    ४.४.१ राजनीतिक परिवेश

    ४.४.२ धार्मिक परिवेश

    ४.४.३ सामाजिक परिवेश

    ४.४.४ सांस्कृतिक परिवेश

    ४.४.५ साहित्यिक परिवेश

४.५ आदिकाल के कवि

    ४.५.१ अमीर खुसरो

    ४.५.२ विद्यापति

४.६ सारांश

४.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.८ लघुत्तरी प्रश्न

४.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी : -

- आदिकाल की पृष्ठभूमि को जान सकेंगे तत्कालीन समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश से अवगत होंगे।
- आदिकाल के प्रमुख कवि और उनके साहित्य से विद्यार्थियों को परिचित कराना भी इस इकाई का उद्देश्य है।

४.२ प्रस्तावना

आदिकाल अर्थात साहित्य का प्रथमकाल या उदय काल भी इसे कहा जाता है। आदिकाल के सम्पूर्ण या परिपूर्ण अध्ययन का ध्येय आदिकालीन परिवेश का अध्ययन आवश्यक बना देता है साथ ही इसके काल के प्रमुख कवि और उनके साहित्य, साहित्य की विशेषताओं, भाषा आदि का अध्ययन आदिकाल से हमें परिचित कराता है।

४.३ आदिकाल अथवा वीरगाथा काल

हिन्दी साहित्य की परम्परा के प्रारंभ के सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों में भिन्नता है। सामान्य रूप से इतिहासकारों ने दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के साहित्य रचना काल को 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' माना है। दसवीं शताब्दी से पहले साहित्यिक प्रयत्नों का विकास अपभ्रंश भाषा में ही हुआ था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि 'दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के उपलब्ध लोकभाषा साहित्य को अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न भाषा का साहित्य कहा जा सकता है। वस्तुतः वह हिन्दी की आधुनिक बोलियों में से किसी-किसी के पूर्व रूप में ही उपलब्ध होता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक दसवीं शताब्दी से इस साहित्य का आरम्भ स्वीकार करते हैं। इसी समय से हिन्दी भाषा का आदिकाल माना जाता है।'

वैसे हिन्दी साहित्य के प्रथम साहित्येतिहासकार जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने इस काल को चारण काल नाम दिया था और इसकी समय सीमा सन ६४३ ई. माना था लेकिन, वे उस समय की किसी चारण रचना का उल्लेख नहीं कर सके। मिश्र बंधुओं ने अपने 'मिश्र बंधु विनोद' में इसका काल सन ६४३ से १३८७ ई. तक माना और इसे 'प्रारंभिक काल' नाम दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसे वीरगाथाकाल की संज्ञा देते हैं और इसकी समय सीमा वि.सं. १०५० से वि.स. १३७५ तक मानते हैं। उन्होंने इस काल को वीरगाथा कहने के पीछे कुल बारह ग्रंथों का आधार बनाया। जिनमें प्रथम चार अपभ्रंश भाषा में हैं और शेष आठ पुस्तकें देशी भाषा में हैं :

१) विजय पाल रासो (नल्ल सिंह - वि.सं. १३५०)
२) हम्मीर रासो (शारंगंधर - वि.सं. १३७५)
३) कीर्तिलता (विद्यापति - वि.सं. १४६०)
४) कीर्ति पताका (विद्यापति - वि.सं. १४६०)
५) खुमाण रासो (दलपति विजय - वि.सं. ११८० - १२०५)
६) बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह - वि.सं. १२९२)
७) पृथ्वीराज रासो (चंदबरदाई - वि.सं. १२२५ - १२४९)
८) जयचंद्र प्रकाश (भट्ट केदार - वि.सं. १२२५)
९) जयमयंक जसचंद्रिका (मधुर कवि - वि.सं. १२४०)
१०) परमाल रासो (जगनिक - वि.सं. १२३०)
११) खुसरो की पहेलियाँ आदि (अमीर खुसरो - वि.सं. १२३०)
१२) विद्यापति पदावली (विद्यापति - वि.सं. १४६०)

munotes.in

यद्यपि कि इन बारह ग्रंथों में से अधिकांश ग्रन्थ संदिग्ध एवं अप्रामाणिक ही हैं ।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को 'सिद्ध सामंत' युग नाम दिया है और इसकी समय सीमा ८ वीं से १३ वीं शताब्दी तक निश्चित किया है । उन्हें इस काल के साहित्य में सिद्धों की वाणी और सामंतों की स्तुतित विशेष रूप से सुनाई देती है । सिद्धों की वाणी के अंतर्गत बौद्ध तथा नाथ सिद्धों और जैन मुनियों की रुक्ष तथा उपदेश मूलक व हठयोग महिमा एवं क्रिया का विस्तार से प्रचार करने वाली रहस्यमूलक रचनाएँ आती हैं । वहीं सामंतों की स्तुति जैसी प्रवृत्ति में चारण कवियों के चरित काव्य आते हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाताओं का यशोगान किया है ।

फिर भी यह कहना उचित होगा कि 'आदिकाल' ही ऐसा नाम है जिसे किसी न किसी रूप में सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं । इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर आगे का साहित्य खड़ा होता है । भाषा की दृष्टि से हमें इस काल के साहित्य में हिन्दी के आदि रूप का पता चलता है, तो भाव की दृष्टि से इसमें भक्तिकाल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज खोज सकते हैं । जहाँ तक रचना शैलियों का प्रश्न है तो उनके भी सभी रुप हैं, जो बाद के काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, अपने आदि रूप में मिल जाते हैं। इस काल की आध्यात्मिक, श्रृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप बाद के साहित्य में मिलता है। इसलिए आदिकाल ही सबसे उपयुक्त नाम है ।

munotes.in

४.४ आदिकालीन परिवेश

साहित्य मानव-समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है । अतः उसके प्रेरक तत्त्व के रूप में परिवेश का विशेष महत्त्व होता है । इसलिये किसी भी काल के साहित्येतिहास को समझने के लिए उसके परिवेश को समझना आवश्यक होता है । आदिकाल भारतीय समाज के लिए अत्यधिक विरोधों और व्याघातों का युग था । राजनीतिक उठा-पटक चारो तरफ चल रही थी और किसी भी देश की राजनीतिक स्थिति वहाँ के साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित करती है । इसके साथ ही धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों को समझना भी आवश्यक है :

४.४.१ राजनीतिक परिवेश :

प्रभावशाली गुप्त-वंश के पराभव के बाद उत्तर भारत में वर्धन साम्राज्य की स्थापना हुई । हर्षवर्धन इस साम्राज्य के सबसे अधिक शक्तिशाली और अंतिम सम्राट थे । उनका समय सन ६०६ से ६४३ ई. तक माना गया । उनके शासन काल में ही भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर यवनों, हूणों और शकों के आक्रमण होने लगे थे । उनका सामना करते-करते ही वर्धन साम्राज्य क्रमशः कमजोर होने लगा था । हर्षवर्धन के बाद भारत की संगठित सत्ता बिखर गई । बाद में जो राजपूत - राज्य सामने आये वे आपसी दुश्मनी के कारण एक-एक कर इस्लाम - साम्राज्य के अधीन होते गए । ग्यारहवीं - बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गहड़वालों के शक्तिशाली राज्य थे । सन ११५० ई. में अजमेर के बीसलदेव चौहान ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाई । उधर गज़नी में तुर्कों का अंत करके शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भारत पर कई बार आक्रमण किया । पृथ्वीराज चौहान ने उसे रोकने का हर संभव प्रयास किया लेकिन

उसी समय उनका एक युद्ध जुझौती के राजा परमार्दिदेव से भी हुआ जिसमें दोनों राजाओं की शक्ति और धन का अपव्यय हुआ । कुछ समय बाद कन्नौज के राजा जयचंद के षडयंत्र से पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गोरी से पराजित होना पड़ा और बाद में उनकी मृत्यु भी हो गई । फिर, कन्नौज और कालिंजर का भी पतन हो गया और दिल्ली में तुर्क सल्तनत स्थापित हो गई । कुछ स्थानीय राजाओं के कठोर संघर्ष के बाद भी धीरे-धीरे सम्पूर्ण उत्तर भारत में मुस्लिम सत्ता स्थापित हो गई । इस प्रकार आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास का राजनीतिक परिवेश हिन्दू राजाओं के धीरे-धीरे समाप्त होने और इस्लाम सत्ता के विकास की कहानी है । राजनीतिक दृष्टि से इसे भारत का पतन काल भी कहा जा सकता है । मुसलमानों के आक्रमण की आग, प्रधान रूप से मध्य भारत को ही अधिक झेलनी पड़ी थी क्योंकि यहीं के राजाओं ने उन आक्रमणकारियों का सबसे अधिक विरोध किया था । और, यही वह हिन्दी प्रदेश था जहाँ हिन्दी भाषा का विकास हो रहा था और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान बनाने का प्रयास कर रही थी ।

लगातार बाहरी आक्रमणों से तो सामान्य जनता परेशान थी ही युद्धकामी देशी राजाओं के अत्याचार भी बढ़ गए थे । परिणामस्वरूप जनता में से एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जो साहस और वीरता के साथ लड़ते हुए मर जाना चाहता था या सम्मान के साथ जीना चाहता था । दूसरा वर्ग ऐसा पनपा जो युद्ध आदि देखकर संसार से परे की बातें करने लगा । यही इस काल के राजनीतिक परिवेश की एक विचित्र देन है, जिसके फलस्वरूप एक तरफ यदि स्त्री-भोग, हठयोग से लेकर आध्यात्मिके पलायन और उपदेशों तक का साहित्य लिखा गया तो दूसरी और ईश्वर की लोक कल्याणकारी सत्ता में विश्वास करने, लड़ते-लड़ते जीने और संसार को सरस बनाने की भावना भी साहित्य रचना के मूल में जुड़ गई ।

४.४.२ धार्मिक परिवेश :

इस युग की अराजकतापूर्ण राजनीतिक परिस्थिति के समान ही धार्मिक क्षेत्र में भी अराजकता ही फ़ैल रही थी । वैसे तो छठवीं शताब्दी तक देश का धार्मिक वातावरण शांत था । वैदिक यज्ञ, मूर्ति-पूजा तथा जैन एवं बौद्ध उपासना पद्धतियों एक साथ चल रही थी । लेकिन, सातवीं शताब्दी में अलवार और नयनार संत दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर एक धार्मिक आन्दोलन लाये । यह युग भारत में बौद्ध धर्म के लगभग पतन और जैन तथा शैव मतों के उत्कर्ष का युग था । अब बौद्ध - साधु अपनी सिद्धियों द्वारा उत्पन्न चमत्कारों से जनता को प्रभावित करने का प्रयास करने लगे थे । तंत्र-मन्त्र की साधना द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियों की उपलब्धि और उनके चमत्कार जनता में आकर्षण और भय दोनों का संचार कर रहे थे । हठयोग, नारी और मदिरा का अनिवार्य और मुक्त भोग आदि विधानों ने नवीन साधकों की पूरी जमात खड़ी कर दी थी । जैन धर्म पर भी इसका कुछ प्रभाव पड़ने लगा था और श्रावक-श्रावकियों के गुप्त सम्बन्ध जनता के समक्ष आने लगे थे । जैन धर्माचार्यों और कवियों ने अपनी लिखी रामकथा के अंत में राम और सीता को जैन धर्म में दीक्षा लेते हुए दिखाया । यह भी एक प्रकार का धार्मिक आडम्बर ही था जिसमें प्राचीन भारतीय अपने-अपने मतों का प्रचार करने के लिए आपस में टकराने लगे थे । राजपूत राजाओं पर शैव मत का प्रभाव अधिक था । इस प्रतिद्वंदिता में अहिंसावादी जैन धर्म न टिक सका । बारहवीं शताब्दी तक वैष्णव आन्दोलन तीव्र होने लगा था । रामानुज, निम्बार्क, रामानंद आदि ने उत्तर भारत में नए भक्ति सिद्धांत की स्थापना करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । इसके अतिरिक्त उत्तर भारत में सिद्धों और नाथों की साधना पद्धतियों भी प्रचलित थीं । कालांतर में इन सबके ऊपर उस व्यापक भक्ति सिद्धांत

की स्थापना हुई जो अपनी अनेक उपशाखाओं में विभाजित परन्तु आंतरिक रूप से एक ही बनी रह कर पूरे भारत को आंदोलित कर गई थी । देश व्यापी धार्मिक अशांति के इस काल में एक बाहरी धर्म इस्लाम का प्रवेश भी अपना विशेष महत्त्व रखता है ।

वास्तव में यह युग धार्मिक दृष्टि से विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों के आपसी संघर्ष का युग था । इस संघर्ष ने धर्म की आत्मा को नीचे दबा उस पर बाह्य आडम्बर, ढोंग और कृत्रिमता का मुलम्मा चढ़ा दिया था लेकिन इसी संघर्ष के बीच से बाद में भक्ति आन्दोलन का उदय भी हुआ । इस काल के कवियों ने तत्कालीन समाज की स्थिति के अनुरूप खंडन, मन्डन, हठयोग, वीरता एवं श्रृंगार का साहित्य लिखा ।

४.४.३ सामाजिक परिवेश :

जिस परिवेश में धर्म और राजनीति दोनों में अराजकता फ़ैली हो ऐसे समाज की अच्छी स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । इस समय के समाज में भी घोर अव्यवस्था फ़ैली हुई थी । पुराने जीवन मूल्य टूट रहे थे लेकिन उनके स्थान पर नये और लोक कल्याणकारी मूल्यों की स्थापना नहीं हो पा रही थी । सत्ता और धर्म दोनों अपने - अपने अहंकार और भोग विलास में डूबे हुए थे । हिन्दू धर्म की जातिवादी व्यवस्था का दुराचार भी अपने चरम पर था । उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों पर तमाम तरह के अत्याचार और शोषण कर रहे थे । नारी केवल भोग्या बन कर रह गयी थी । क्रय - विक्रय और अपहरण जैसे दुराचार उसके लिए जीवन के अंग बन गये थे । संपत्ति संबंधी कोई अधिकार उसे नहीं प्राप्त था ।

सामंती शासन व्यवस्था के कारण सत्ता से जुड़े सामंत और व्यापारी वर्ग के लोग ही सुखी और संपन्न था । आर्थिक रूप से सामान्य जनता की स्थिति अत्यंत दयनीय थी । उसके परिश्रम का सुख अन्य वर्ग ही भोग रहे थे । राजदरबारों में कलाकारों का सम्मान तो होता था लेकिन उन्हें केवल मनोरंजन का साधन ही समझा जाता था । उच्च वर्ग के लोग साहित्य शास्त्र, व्याकरण, राजनीति, नाटक, तंत्र-मंत्र आदि की शिक्षा प्राप्त करते थे । समाज पर अनेक प्रकार के साधु - संन्यासियों का प्रभाव होने के कारण जनता में अनेक प्रकार के अन्धविश्वास फैले हुए थे । इनके वरदान और शाप का विश्वास जोरों पर था । लेकिन, इसी बीच कुछ ऐसे लोग भी थे जो इन अनाचारों का विरोध कर रहे थे । सिद्ध आदि साधक समाज के ऐसे ही अंग थे, जिन्होंने साहित्य को प्रभावित किया था । यही प्रभाव आगे चलकर संत काव्य के उग्र, विद्रोही स्वर के रूप में सुनाई देने लगा ।

४.४.४ सांस्कृतिक परिवेश :

हिन्दी साहित्य का आदिकाल उस समय प्रारंभ हुआ जब भारतीय संस्कृति उन्नति के अपने चरम पर थी । हिन्दू सम्राट हर्षवर्धन के समय राष्ट्रव्यापी एकता और जातीय गौरव महत्त्वपूर्ण बन चुके थे । साहित्य, संगीत, चित्र एवं स्थापत्य आदि कलाऐं जीवन का अंग बन गई थीं । यहाँ शताब्दियों तक अनेक प्रकार के भव्य महलों और मंदिरों का निर्माण होता रहा । भारतीय स्थापत्य कला का अद्वितीय नमूना आबू का जैन मंदिर ग्यारहवीं शताब्दी में बना था । भुवनेश्वर, खजुराहो, जगन्नाथपुरी, काँची, बेल्लूर आदि के भव्य मंदिर इसी युग की देन हैं । इस शताब्दी तक हर हिन्दू के लिए उसका समस्त जीवन धार्मिक कर्तव्यों का प्रतिरूप था । उसका समस्त चरित्र धर्म-भावना से प्रेरित रहता था । इसी युग में मुस्लिम आक्रान्ता अपने साथ अपनी

भिन्न संस्कृति लेकर आये । आरम्भ में तो वे लूट-पाट कर वापस चले जाते रहे । यह क्रम ग्यारहवीं शताब्दी तक चलता रहा । १२ वीं शताब्दी में उन्होंने यहाँ साम्राज्य की स्थापना और निवास करना जब आरम्भ किया तो दोनों संस्कृतियों में टकराव शुरू हो गया और दोनों संस्कृतियाँ एक दूसरे से प्रभावित भी होने लगीं । इस्लामिक आक्रान्ताओ द्वारा जो लूट-मार और नरसंहार किया गया, मंदिर तोड़े गए, मूर्तियाँ तोड़ी गई और पुस्तकालय जलाए गये उससे हिन्दुओं में उनके प्रति घृणा का भाव भरता गया । हिन्दू लोग मुसलमानों को म्लेच्छ समझने लगे और मुस्लिम लोग हिन्दुओं को काफिर । एक तरह से आरंभिक युग टकराव का ही था । इस टकराव का ही परिणाम रहा कि भारतीय संस्कृति का उदारवादी दृष्टिकोण संकुचित हो उठा । इस प्रकार आदिकाल की भारतीय संस्कृति उत्कर्ष प्राप्त निजी परम्परा के ह्रास तथा इस्लाम के सम्मिश्रण की एक ऐसी कहानी है जिसमें कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवंत स्वर बहुत कम मिलता है ।

४.४.५ साहित्यिक परिवेश :

आदिकाल में साहित्य रचना की मुख्य रूप से तीन धाराएँ देखी जाती हैं । **प्रथम धारा** संस्कृत साहित्य की थी, जो एक निश्चित परम्परा के साथ विकसित हो रही थी । **दूसरी धारा** का साहित्य प्राकृत और अपभ्रंश में लिखा जा रहा था । **तीसरी धारा** हिन्दी साहित्य की थी । नौवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक कन्नौज और कश्मीर साहित्य रचना के केंद्र रहे और इस बीच अनेक आचार्य, कवि, नाटककार तथा गद्य लेखक उत्पन्न हुए । आनंदवर्धन, अभिनव गुप्त, राजशेखर, कुंतक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, भवभूति तथो जयदेव आदि इसी युग की देन हैं ।

संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत एवं अपभ्रंश का श्रेष्ठ साहित्य भी व्यापक मात्रा में इस युग में लिखा गया । जैन आचार्यों ने संस्कृत के पुराणों को नए रूप में प्रस्तुत किया । उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए प्राकृत अपभ्रंश के साथ पुरानी हिन्दी को भी माध्यम बनाया । इसी प्रकार पूर्वी सीमान्त पर सिद्धों ने अपभ्रंश के साथ लोकभाषा हिन्दी को भी अपने साहित्य का माध्यम बनाया । इस काल का साहित्य राजा, धर्म और लोक इन तीन भागों में विभाजित हो चुका था । इनकी भाषाएँ भी अलग-अलग वर्गों से जुड़ी हुई थीं । संस्कृत मुख्य रूप से राज - प्रवृत्ति से जुड़ी थी । अपभ्रंश धर्म की भाषा बन गई थी तथा हिन्दी सामान्य जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं का प्रतिनिधित्व कर रही थी । संस्कृत के कवियों एवं लेखकों को तत्कालीन परिस्थितियाँ अधिक प्रभावित करती थीं । वे काव्य और शास्त्र के विनोद में ही अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग कर रहे थे । प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवि एवं लेखक धर्म-प्रचार में लगे हुए थे, साहित्य तत्त्व उनकी रचनाओं का सहायक तत्त्व था । केवल हिन्दी ही इस काल की एक ऐसी भाषा थी, जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मुखर हो रही थी ।

आदिकाल काल की यही पृष्ठभूमि थी और चतुर्दिक अनिश्चितताओं से भरा । यही तत्कालीन परिवेश था जिसके प्रभाव से हिन्दी भाषा के साहित्यिक रूप का उदय हो रहा था जो आगे चलकर एक समृद्ध साहित्य का आधार बना ।

४.५ आदिकाल के कवि

४.५.१ अमीर खुसरो :

अमीर खुसरो का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। उन्हें 'हिन्दवी' अर्थात खड़ी बोली का प्रथम कवि भी माना जाता है। उनका असली नाम 'अब्दुल हसन' था। 'खुसरो' उनका उपनाम था। इनका जन्म सन १२५३ ई. में एटा के पटियाली गाँव में हुआ था और ये निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। यद्यपि कि उनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ-कुछ मतभेद बना हुआ है। इन्होंने हिन्दवी को अपनी काव्य सर्जना का माध्यम बनाकर उसे गौरव प्रदान किया। वस्तुतः ये अरबी-फारसी के कवि थे, संस्कृत का भी कुछ ज्ञान इन्हें था किन्तु हिन्दवी के प्रति इनमें विशेष लगाव था। सह्रदय व्यक्ति होने के कारण खुसरो सामान्य जनजीवन में घुल-मिलकर रचना करने वाले कवि माने गए।

इनकी रचनाओं की संख्या लगभग सौ के आस-पास मानी गई है लेकिन केवल २०-२२ ग्रन्थ ही वर्तमान में प्राप्त हैं। इन ग्रंथों में 'किस्सा चाह दरवेश', और 'खालिक बारी' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका 'खालिक बारी' नाम से तुर्की - अरबी-फारसी और हिन्दी का पर्याय कोष अधिक प्रसिद्ध है। इनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ और फुटकर गीत आज भी पाठकों में उत्सुकता उत्पन्न कर देती हैं। इनसे कवि के विनोदी स्वभाव का पता भी चलता है। जिसका एक उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है :

एक थाल मोती से भरा सबके सिर पर औंधा धरा
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे। (आकाश)

अमीर खुसरो की साहित्यिक देन :

अमीर खुसरो ने साहित्य के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया। यहाँ जीवन युद्ध और आत्मानुशासन की कठोर श्रृंखला से मुक्त होकर आनंद और विनोद की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। यही खुसरो की मौलिक विशेषता है। इनके साहित्य में हिन्दू - मुस्लिम एकता की बातें भी मिलती हैं तथा उसमें भाषा संबंधी एकता का आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन सुल्तानों का इतिहास भी इनके साहित्य में सुरक्षित है। खुसरो ने अपने समय की तमाम उन ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा भी अपने साहित्य में की है जो इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलती है। खुसरो द्वारा वर्णित इस प्रकार के प्रसंग अधिक विश्वसनीय भी लगते हैं क्योंकि वे केवल उन प्रसंगों के समसामयिक ही नहीं थे बल्कि उन घटनाओं के स्वरूप निर्माण में भी उनका निजी सहयोग रहा। इनके साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का केवल परंपरागत ब्योरा मात्र ही नहीं बल्कि तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को भी सजीव चित्रण किया गया है।

खुसरो एक प्रसिद्ध गवैया भी थे। ध्रुवपद के स्थान पर कौल या कव्वाली बनाकर इन्होंने बहुत से नए राग भी निकाले थे, जो अब तक प्रचलित हैं। संगीतज्ञ होने के कारण इनके साहित्य संगीतात्मकता भी दिखाई देती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इनकी भाषा के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'खुसरो के समय में बोलचाल की स्वाभाविक भाषा लिखकर बहुत कुछ उसी रूप में आ गयी थी जिस रूप में खुसरो में मिलती हैं। कबीर की अपेक्षा खुसरो का ध्यान बोलचाल की भाषा की ओर अधिक रहा है। खुसरो का लक्ष्य जनता का मनोरंजन था, पर कबीर धर्मोपदेशक थे, अतः

बानी पोथियों की भाषा का सहारा अधिक लिए हुए हैं।' डॉ. रामकुमार वर्मा जी का कहना है कि 'चारण-कालीन रक्तरंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की डिंगल कविता उद्धत स्वरों में गूँज रही थी और उसकी प्रतिध्वनि और भी उग्र थी, पूर्व में गोरखनाथ की गंभीर धार्मिक प्रवृत्ति आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल में अमीर खुसरो की विनोदपूर्ण प्रकृति हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक महान निधि है।' खुसरो ने अपनी सहज मनोवृत्ति के कारण जन सामान्य को उन्मुक्त ह्रदय से मनोरंजन का खजाना प्रदान किया। भाषा विज्ञान के पंडित इन्हें अरबी, फारसी, तुर्की, ब्रजभाषा और हिन्दी में खड़ीबोली का सफल प्रवक्ता कह सकते हैं लेकिन इनके द्वारा रचित मिश्रित भाषा के गजलों की श्रृंगारात्मकता सामान्य जन का मन मोह लेती है।

असल में खुसरो बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि एवं साहित्य और संगीत के क्षेत्रों में एक समर्थ आविष्कर्ता थे। वीणा से सितार और मृदंगम से तबला की निर्मिती करने वाले संगीतज्ञ की रचना 'मैं पग में घुँघरू बाँध, मिलन चली पिया को कि घुँघरू टूट गए' जैसी कव्वालियों के रचनाकार खुसरो सदैव याद किये जाते रहेंगे। उनकी मुकरियाँ भी सामान्य जन को आकर्षित करने में पूर्णतः सक्षम हैं। उदाहरण स्वरूप -

वह आये तो शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे वाके बोल, क्या सखि साजन ? न सखी ढोल।

खुसरो के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह उजागर होता है कि हिन्दी की प्रकृति व स्वभाव आरम्भ से ही साम्प्रदायिकता की भावना से मुक्त रहे हैं। यद्यपि कि खुसरो का राजदरबारों से सम्बन्ध साहित्य फारसी भाषा में रचित है, जहाँ कवि ने हिन्दू - मुसलमानों के साक्षात द्वंद्व और कलह का वर्णन किया है, वहाँ भी केवल दोनों जातियों के वीर योद्धाओं का संग्राम ही चित्रित हुआ है। उसमें किसी जाति अथवा सम्प्रदाय के प्रति वैमनस्य, घृणा या द्वेष बढ़ाने वाले कोई तथ्य नहीं दिखाई देते हैं। इस रूप में अमीर खुसरो हिन्दी के एक महत्वपूर्ण और समन्वयवादी कवि के रूप में देखे जा सकते हैं।

४.५.२ विद्यापति :

आदिकालीन कवियों में विद्यापति 'मैथिल कोकिल' और 'अभिनव जयदेव' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म १३६८ ई. में बिहार के दरभंगा जिला के विसपी गाँव में हुआ था। कुछ विद्वान इनकी रचनाओं के कुछ प्रसंगों के आधार पर इनका जन्म सन १३६० ई. मानते हैं। ये तिरहुत के महाराज शिव सिंह के आश्रय में रहते थे। विद्यापति ने अपनी रचनाओं 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' में अपने आश्रय दाता शिवसिंह और कीर्ति सिंह की वीरता का प्रभावशाली चित्रण किया है। वे एक महान पंडित थे। उन्होंने अपनी रचनायें संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखी है। चूँकि संस्कृत के ये अच्छे ज्ञाता थे इसलिए इनकी अधिकतर रचनायें संस्कृत में ही मिलती हैं। विद्यापति संक्रमण काल के कवि थे। जिसका स्पष्ट प्रभाव उनके साहित्य पर भी देखा जा सकता है। एक और वे वीरगाथा काल का प्रतिनिधित्व करते हैं तो दूसरी ओर हिन्दी में भक्ति और श्रृंगार की परम्परा के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में उनका वीर कवि का रूप हैं तो 'पदावली' में उनका श्रृंगारी रूप है और 'शैव सर्वस्व सार' में उनका भक्तिभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार भाव एवं भाषा के स्तर पर उनकी रचनाओं को तीन रूपों में देखा जा सकता है :

संस्कृत भाषा की रचनायें :

१) शैव सर्वस्व सार
२) शैव सर्वस्वसार प्रमाणभूत पुराण संग्रह
३) भूपरिक्रमा
४) पुरुष परीक्षा
५) लिखनावली
६) गंगा वाक्यावली
७) दान वाक्यावली
८) विभाग सार
९) गया पत्तलक
१०) वर्ण कृत्य
११) दुगा भक्ति तरंगिणी

अवहट्ठ : कीर्तिलता और कीर्ति पताका।
मैथिली : पदावली

विद्यापति के आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। उन्होंने कृष्ण काव्य की उसी परम्परा को आगे बढ़ाया जिसकी उद्भावना संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जयदेव नें की थी। उन्होंने अपने काव्य में परकीया प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया है। यौवना, मुग्धा, प्रगल्भा, नवोढ़ा, खंडिता, मानिनी आदि नायिकाओं के अपूर्व चित्र इनके काव्य में देखे जा सकते हैं। 'पदावली' में इनका श्रृंगारी पक्ष उभर कर सामने आया है। इन्होंने इस रचना में आलंबन विभाव में नायक कृष्ण और नायिका राधा का सुन्दर चित्रण किया है। यहाँ श्रृंगार वर्णन में अनेक द्दश्य ऐसे भी उपस्थित हो जाते हैं जहाँ ईश्वरीय भावना की अनुभूति तनिक भी नहीं मिलती है। यथा -

कि आरे नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहएन पारिअ छओं अनुपम इकठामा।

विद्यापति के राधा-कृष्ण विषयक इसी प्रकार के तमाम श्रृंगार वर्णनों को देखकर हिन्दी के आलोचक इस सम्बन्ध में एक मत नहीं हो पायें हैं कि विद्यापति की श्रृंगार भावना लौकिक है या अलौकिक।

विद्यापति ने शिव और पार्वती कि स्तुति में भी पदों की रचना की है। उन पदों में उनका भक्तिभाव अधिक प्रकट हुआ है जिसे देखकर कुछ विद्वान् उन्हें शैव अथवा शाक्त मानते हैं। वहीं जहाँ राधाकृष्ण विषयक प्रेम का वर्णन है, वहाँ उन्हें भक्त न मानकर अनेक विद्वान् केवल श्रृंगारी कवि ही मानते हैं। इसके अतिरिक्त बंगाल के वैष्णव चेतन सम्प्रदाय में विद्यापति सातवें रसिक भक्त और उनकी पदावली धार्मिक ग्रन्थ मानी जाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि 'विद्यापति के पद अधिकतर श्रृंगार के ही हैं, जिनमें नायिका और नायक राधाकृष्ण हैं। विद्यापति को कृष्ण भक्ति की परम्परा में नहीं समझना चाहिए। आध्यात्मिक रंग के चश्में आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने 'गीत गोविन्द' के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। सूर आदि कृष्ण भक्तों के श्रृंगारी पदों की ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं।' डॉ. रामकुमार

वर्मा भी विद्यापति को श्रृंगारी कवि के रूप में ही देखते हैं - 'विद्यापति के बाह्य संसार में भगवत भजन कहाँ, इस वयः संधि में ईश्वर संधि कहाँ, सद्यः स्नाता में इश्वर से नाता कहाँ, अभिसार में भक्ति का सार कहाँ? उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं।' वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विद्यापति को भक्त कवि के रूप में देखते हैं। उनका कहना है कि 'राधा और कृष्ण के प्रेम प्रसंगों को यह पुस्तक प्रथम बार उत्तर भारत में गेय पदों में प्रकाशित करती है। इस पुस्तक के पदों नें आगे चलकर बंगाल, आसाम और उड़ीसा के वैष्णव भक्तों को खूब प्रभावित किया और यह उन प्रदेशों के भक्ति साहित्य में नई प्रेरणा और नई प्राणधारा संचारित करने में समर्थ हुई। इसीलिए पूर्वी प्रदेश में सर्वत्र यह पुस्तक धर्म-ग्रन्थ की महिमा पा सकी है।'

वास्तव में विद्यापति का व्यक्तित्त्व बहुमुखी है । उनमें पांडित्य, कला, रसिकता और भावुकता का अद्भुत समन्वय है । संक्रांतिकालीन कवि होने के कारण भावगत के आधार पर भी उनके साहित्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

१) **श्रृंगारिक,**
२) **भक्ति संबंधी, और**
३) **विविध विषयक, नीति, वीर गाथात्मक**

उनके श्रृंगारी साहित्य को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 'भले ही वे शिव भक्त हों, किन्तु कम से कम वे कृष्ण भक्त नहीं हैं । पदावली में चित्रित राधा-माधव की केलि लीलाओं के पीछे किसी भी प्रकार की कोई भक्ति, धार्मिकता, सांकेतिकता या रहस्यवाद नहीं है । विद्यापति के राधा-माधव साधारण नायक नायिका हैं और उनकी लीलाओं एवं प्रेम लीलाओं का चित्रण विशुद्ध लौकिक स्तर पर हुआ है ।' (डॉ. शिवकुमार शर्मा)

इस प्रकार विविध विद्वानों के विचारों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि विद्यापति वीर, कवि, भक्त कवि और श्रृंगारी कवि इन सभी रूपों में परिपूर्ण दिखाई देते हैं । एक और उनकी कीर्तिलता और कीर्तिपताका चारण काव्य की वीरगाथाओं का स्मरण दिलाती हैं तो दूसरी ओर उनकी पदावली कृष्ण कवियों विशेषतः रीतिकालीन कवियों की श्रृंगारपरक कोमल भाव सामग्री की मूल प्रेरक सिद्ध होती हैं । विद्यापति हिन्दी साहित्य में पद शैली के प्रवर्तक और महाकवि सूर के पथ प्रदर्शक भी जान पड़ते हैं । ये अपने समय के सफल कवि थे यही कारण है कि इनके प्रशंसकों ने इन्हें अनेक उपाधियों से विभूषित किया है । जैसे - अभिनय जयदेव, कवि शेखर, सरस कवि, खेलन कवि, कवि कंठहार और कवि रंजन आदि । इस रूप में विद्यापति ने मध्ययुग के प्रायः समस्त काव्य को प्रभावित किया है । श्रृंगार की सारी मान्यतायें इनके काव्य में देखी जा सकती हैं । कल्पना, साहित्यिकता और भाषा की भंगिमा में ये अनुपम हैं । विद्यापति की सर्व - लोकप्रियता का पता इस बात से भी चलता है कि वे अपने जीवन में ही लोगों द्वारा पूज्य बन गए थे - विशेष रूप से मिथिला और भोजपुर के जनपदीय आंचलिक क्षेत्रों में । यद्यपि कि वे परम शैव-भक्त थे किन्तु उन्होंने अपने सर्वप्रिय प्रेम के प्रतीक-स्वरुप, श्रृंगार रस के अधिष्ठाता कृष्ण व ललित भावात्मिका राधा के ऐहिक अद्वैत प्रेम के थिरकते मनोहारी चित्र अंकित किये हैं जो हिन्दी साहित्य की शाश्वत चिरनिधि हैं । राधा - कृष्ण के परकीया प्रेम की पार्श्व-भूमि की सीमित परिधि में अंकित नानाविध नायिकाओं के सुन्दर चित्र पाठकों के मन को हरने की अद्भुत क्षमता रखते हैं । विद्यापति की 'कीर्तिलता' से वीर रसात्मक तथा 'पुरुष परीक्षा' जैसे ग्रंथों से नीति और उपदेशमय ग्रंथों की शैली का हिन्दी परवर्ती युगों में अनुसरण

होता रहा । विद्यापति का महत्त्व इसलिए भी भारतीय साहित्य में अक्षुण्ण है कि उन्होंने पद परम्परा का प्रवर्तन किया । उनके पद काव्य तत्त्व से परिपूर्ण और गेय हैं । जो आगे चलकर कृष्ण - भक्त कवियों के लिए एक सरल मार्ग का निर्माण करते दिखाई देते हैं ।

४.६ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हम आदिकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश को जान सके साथ ही आदिकालीन कवियों के परिचय के साथ उनके साहित्यिक यात्रा को समझ सके।

४.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) हिन्दी साहित्य के आदिकालिन परिवेश पर प्रकाश डालिए।
२) अमीर खुसरो का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनके साहितयिक योगदान पर प्रकाश डालिए।
३) विद्यापति का जीवन परिचय देते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व को समझाइए।

४.८ लघुत्तरी प्रश्न

१) आदिकाल की कालावधि कब से कब तक मानी गई है ?
२) रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को किस नाम से अभिहित किया ?
३) राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को क्या नाम दिया ?
४) आदिकाल में रामकथा का वर्णन किस धर्म ग्रंथ में दिखाया गया है ?
५) आदिकाल में वाह्य आडम्बर, ढ़ोंग और कृत्रिमता के तहत किस प्रकार का साहित्य लिखा गया ?
६) आदिकालीन साहित्य में प्रथम धारा में कौनसी भाषा साहित्यिक भाषा थी ?
७) आदिकाल के प्रथम सिद्ध कवि कौन है ?
८) बौद्ध धर्म कौनसे दो प्रमुख भागों में विभाजित है ?
९) हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली का प्रथम कवि किसे माना जाता है ?
१०) मैथिल कोकिल और अभिनव जयदेव के नाम से आदिकाल के कौनसे कवि प्रसिद्ध हे ?

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-५

आदिकाल : साहित्य
सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, रासो साहित्य

इकाई की रूपरेखा :

५.१ इकाई का उद्देश्य
५.२ प्रस्तावना
५.३ सिद्ध साहित्य
५.४ नाथ साहित्य
५.५ जैन साहित्य
५.६ रासो साहित्य
५.७ सारांश
५.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
५.९ लघुत्तरीय प्रश्न
५.१० संदर्भ पुस्तकें

५.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी आदिकालीन हिन्दी साहित्य की विविध धाराओं से परिचित होंगें और सभी धाराओं जैसे साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य और रासो साहित्य का सम्पूर्ण अध्ययन कर सकेंगे।

५.२ प्रस्तावना

आदिकाल साहित्य का प्रथम स्त्रोत है, यह स्त्रोत संक्षेपित न होकर विस्तृत रूप लिए था। साहित्य और भाषा के विविध आयाम इस काल को सिद्ध करते है। यह विविध आयाम एक विशेष रूप साहित्य को प्रदान करते है जो आज भी साहित्यप्रेमी को अध्ययन की ओर आकृष्ट करते है। आदिकाल की साहित्यिक भाषा संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत हिन्दी भाषा की जननी के रूप में आज भी हमें आश्वस्त करते है और इस बात अनुमान हम लगा सकते है कि हिन्दी साहित्य प्रथम काल से वृहत और विस्तृत है।

munotes.in

५.३ सिद्ध साहित्य :

सामान्य रूप से सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जनभाषा में लिखा, उसे ही सिद्ध साहित्य कहा गया । प्रथम सिद्ध कवि सरहपा का समय वि.सं. ८१७ (सन ७६९ ई.) माना गया है । इसी आधार पर सिद्धों का समय वि.सं. ८१७ से लेकर वि.सं.१२५७ तक निर्धारित किया गया है । सिद्धों की परम्परा ने बौद्ध धर्म के विकृत रूप से जन्म लिया । गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात बौद्ध धर्म दो भागों में विभाजित हो गया -

१. हीनयान २ - महायान :

महायान वर्ग में ऊँच - नीच, छोटे-बड़े, गृहस्थ - संन्यासी सबको निर्माण तक पहुँचाने का दावा किया जा रहा था । यह वर्ग वैष्णवों की भक्ति से अधिक प्रभावित हुआ इसका व्यावहारिक पक्ष शंकर के ज्ञान काण्ड से जुड़ गया । जबकि, **हीनयान** वर्ग केवल विरक्तों और संन्यासियों को अपने समूह में शामिल करता था । इसमें ज्ञानार्जन, पांडित्य और व्रत आदि की प्रधानता थी । आगे चलकर महायान के कई भाग हो गए जिनमें वज्रयान और सहजयान मुख्य हैं। धीरे-धीरे इन दोनों में (वज्रयान और सहजयान में) मंत्र चमत्कार और वाममार्ग का प्रभाव अधिक हो गया । इस प्रकार बाद में अपने मन्त्रों द्वारा सिद्धि का चमत्कार प्रस्तुत करने वाले साधक ही सिद्ध कहलाये । बहुत जल्दी ही इनकी समस्त साधना और इनसे जुड़ा तत्कालीन समाज अश्लील और कामुकता के प्रवाह में बहने लगा । इनकी इसी विलासिता को देखकर ही गुरु गोरखनाथ ने लिखा कि - **चारि पहिर आलिंगन निद्रा, संसार जाई विषया दाही ।**

सिद्ध अधिकतर अशिक्षित और हीन जाति से ही अधिक सम्बन्ध रखते थे अत: उनकी साधना की साधनभूत मुद्राएँ - कापाली, डोम्बी आदि नायिकाएं भी निम्नवर्ग की ही थीं । इन्होंने धर्म और अध्यात्म की आड़ में जन-जीवन के साथ विडम्बना करते हुए नारी का उपभोग किया और वही उनकी चरम गंतव्य भी था । उनके कमल और कुलिश योनी और शिश्न के प्रतीक हैं ।

सिद्धों की कुल संख्या ८४ मानी गई है । इनमें सभी वर्णों के साधक शामिल थे लेकिन शुद्र अधिक थे । वैसे इन सभी सिद्धों की रचनायें आज उपलब्ध नहीं हैं । जिन सिद्धों की वाणियाँ उपलब्ध हैं उनमें - सरहपा, शबरपा, मुसुकपा, लुइपा, विरूपा, डोम्बिपा, गुंडरिपा, गोरक्ष्पा, तिलोपा, शान्तिपा आदि कुछ और हैं । राहुल संकृत्यायन ने सिद्ध कवियों की वाणियों का संपादन किया है और सरहपा को उन्होंने सर्वप्रथम सिद्ध कवि माना है । सिद्ध कवियों की रचनाएँ चर्यागीतों और दोहों के रूप में मिलती हैं । जैसे -

जहि मन पवन न संचरई रवि ससि नहीं पवेस
तहि वट चित्त वसाम करू सरसे कहिंस उसेस ।

सरहपा

ठीक इसी प्रकार -

काय तरुवर पंचपि डाल ।
चंचल चित्त पईठो काल ।।
दिठ्ट करिअ महासुह परिमान ।
लुई भनई गुरु पुच्छीय जान ।।

सिद्ध तांत्रिक सम्प्रदायों की सामान्य प्रवृत्तियाँ :

१. प्रत्येक सिद्ध तांत्रिक सम्प्रदाय में देवता, मन्त्र और तत्त्व दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली भिन्न-भिन्न है, किन्तु साधना पद्धतियाँ सबकी समान हैं ।

२. प्रत्येक सम्प्रदाय में शास्त्रीय चिंतन पक्ष गौढ़ था । साधना क्रिया और चर्यापदों की अधिकता थी साधना में गुरु को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया ।

३. तांत्रिक सम्प्रदायों की साधना पद्धति में शिव और शक्ति की युगबद्धता और उनकी मिथुनात्मक व्याख्या मिलती है ।

४. तांत्रिक साधना में जाति-पांति और वर्ण-भेद की भरसक निंदा की गई है ।

५. इन सम्प्रदायों में योगसाधना पर विशेष बल दिया गया है ।

६. प्रत्येक सम्प्रदाय में वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था प्रकट की गई है और उनके स्थान पर लोक देवताओं और उनकी असंस्कृत पूजन पद्धतियों को प्रश्रय दिया गया है ।

७. तांत्रिक साधना में मरणोपरांत मुक्ति या निर्वाण प्राप्ति की अपेक्षा जीवनकाल में सिद्धियों का प्राप्त करना श्रेयस्कर बताया गया है ।

असल में सिद्धों का मानना था कि संसार और मन एक ही है । मन के द्वारा ही सांसारिक बन्धनों से निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है । इनके दोहों, चर्या गीतों और बज्रगीतों में मर्मस्पर्शी भावनाएं भी मिलती हैं । वैसे सिद्धों का साहित्य एक तरह से शास्त्र, रुढियों और धर्मबद्ध भावनाओं तथा आडम्बरों के प्रति एक खुला विद्रोह है ।

सिद्धों की भाषा को 'संध्या भाषा' कहा गया है । संध्या का अर्थ सांझ लगाकर कुछ लोगों ने 'कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट' भाषा कहा है । बंगाल और बिहार के सीमा क्षेत्र की संधि में लिखी जाने के कारण कुछ विद्वान इसे संध्या भाषा मानते हैं । वस्तुतः सिद्धों ने अपनी साधना पद्धति की अभिव्यंजना रूपकों और प्रतीकों के द्वारा की हैं । अलंकारों का प्रयोग करके भी ये अर्थ की दि्वधा अर्जित करते हैं । यहाँ एक अर्थ अभिधेयात्मक होता है दूसरा प्रतीकात्मक और लक्षणा मूलक । विरोधमूलक अलंकारों द्वारा उलटबाँसियों में सिद्ध कवियों ने विशेष प्रकार की अभिव्यंजना प्रणाली को अपनाया है । यथा :

दुहिल दूध के वेंटे समाय, बलद बियायेल गविआ बाँझे ।
पिटो दुहिये तीनों साँझे, जो सो दुधि सोइ निबूधी ।।

डॉ. रामकुमार वर्मा जी का कहना है कि 'सिद्ध साहित्य का महत्त्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढंग से प्राप्त होती है । -- यह सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का स्पष्ट उल्लेख है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी यह साहित्य महत्त्वपूर्ण है ।'

साहित्यिक उदात्तता और परिपक्वता की दृष्टि से सिद्ध साहित्य विशेष महत्त्वपूर्ण भले ही न हो इस साहित्य की इतनी देन तो है ही कि इनके चर्यापदों को विविध रागों में लिखकर अपने बाद के गीतिकाव्यकारों - जयदेव, विद्यापति और सूरदास आदि के लिए मार्ग खोल

दिया । श्रृंगार को काम-समन्वित बना इन्होंने उनमें नाना काम कलाओं का वर्णन किया । इस प्रकार इन्होंने भागवतकार और गीत-गोविन्दकार जयदेव के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी ।

५.४ नाथ साहित्य

सिद्धों की वाममार्गी भोग प्रधान योग साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदि काल में नाथ पंथियों की हठ योग साधना आरम्भ हुई । इस मत के प्रवर्तक आदिनाथ (शिव) को माना जाता है । राहुल सांकृत्यायन इस नाथ-पन्थ को सिद्धों की परम्परा का ही विकसित रूप मानते हैं । डॉ. श्रीनिवास शर्मा के अनुसार 'सिद्ध और नाथ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं । ----ऐसा भी हो सकता है कि आरम्भ के साधक सिद्ध कहलाये और बाद में उसी परम्परा को नाथों ने स्वीकार कर लिया हो । लेकिन, नाथपंथ की मूल चेतना शीव दर्शन पर आधारित है ।' सिद्धों की विचारधारा को ही लेकर इस सम्प्रदाय ने उसमें नवीन विचारों की प्राण-प्रतिष्ठा की । उन्होंने निरीश्वरवादी शून्य को ईश्वरवादी शून्य बना दिया । साधना की दृष्टि से नाथपंथ में हठयोग का विशेष महत्त्व है जिसके आधार पर प्राणवायु को रोक कर कुण्डलिनी को जाग्रत किया जाता है । इस पंथ को चलाने वाले मत्स्येन्द्र नाथ और गोरखनाथ माने गए हैं ।

इस पन्थ के समय को लेकर विद्वानों में अब भी मतैयक्यता नहीं है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसका प्रारंभ नौवीं शताब्दी के मध्य में मानते हैं तो पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने दसवीं शताब्दी माना है । डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसका चरमोत्कर्ष बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक माना है । उनका यहाँ तक मानना है कि 'नाथपन्थ से भक्तिकाल के संत-मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे ।'

नाथ मतावलंबियों के अनुसार **वैराग्य से मुक्ति संभव है** और वैराग्य गुरु द्वारा संभव है । इसलिए इनके यहाँ गुरुमंत्र या गुरुदिक्षा का विशेष महत्त्व है । यहाँ शिष्य को दिक्षा देने के पूर्व कठोर परीक्षा की व्यवस्था है इसलिए सामान्य व्यक्ति उनकी कठोर शर्तों को पूरी नहीं कर सकता था फलस्वरूप यह सम्प्रदाय बहुत व्यापक रूप नहीं ले सका । इस सम्प्रदाय में **इन्द्रियों पर नियंत्रण** पर विशेष बल दिया गया । नारी से सर्वथा दूर रहने की शिक्षा दी जाती थी । शायद गोरखनाथ ने सिद्धों और बौद्धों को वामाचार में उलझकर पतन की ओर जाते देखा था । इन्द्रिय निग्रह के बाद इनके **यहाँ प्राण साधना और मनः साधना पर जोर दिया** गया । मनः साधना से तात्पर्य मन सांसारिक आकर्षणों की तरफ से खींच कर अन्तःकरण की ओर उन्मुख कर देना था । यहाँ अपने सम्प्रदाय के प्रचार की अपेक्षा मर्यादा रक्षण पर अधिक ध्यान दिया गया ।

नाथपंथियों ने अपने सिद्धांतों की मीमांसा जनभाषा के आश्रय से साखियों और पदों में की । नीति, आचार, संयम और योग आदि इनके साहित्य के प्रधान विषय हैं । नाथ योगियों की अनेक परम्पराएं प्रसिद्ध हैं । नाथों की संख्या कुल नौ मानी जाती रही है - आदिनाथ, मत्स्येन्द्र नाथ, गौरखनाथ, गाहिणी नाथ, चर्पट नाथ, चौरंगीनाथ, जालिंधर नाथ, भर्तरी नाथ और गोपीचंद नाथ । इनमें मत्स्येन्द्र नाथ, गोरखनाथ और जालिंधर नाथ जैसे ही कुछ नाथ प्रसिद्ध हैं। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ के गुरु थे । विद्वानो का मानना है कि दसवीं शताब्दी में ही गुरु गोरखनाथ ने धर्म, संस्कृति और सामाजिक क्षेत्रों में आमूल-चूल क्रांति का स्वर बुलंद किया ।

यद्यपि, कुछ विद्वानों का मानना है कि गुरु गोरखनाथ ने तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में साहित्य की रचना की थी । वैसे उनकी रचनाओं की संख्या चालीस मानी गई है लेकिन सबदी, पद, प्राण संकली आदि कुल चौदह रचनायें ही वर्तमान में प्राप्त हैं । डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'गोरख वाणी' नाम से उनकी रचनाओं का संकलन भी किया है ।

गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु महिमा, इन्द्रीय-निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, मनः साधना, आदि का वर्णन किया है । इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता मिलती है । गोरखनाथ ने ही षटचक्रों वाला योग-मार्ग हिन्दी में चलाया था जिसमें विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था । उनका चित्त भी सांसारिक आकर्षणों की तरफ आकर्षित नहीं हो सकता । जैसा कि उन्होंने लिखा है -

नव लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा ।
ऐसे मन लै योगी खेलै, तब अंतरि बसे भंडारा ।।

असल में गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रुप दिया वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ । उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहीं दूसरी और विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों का भी विरोध किया गया । जीवन को संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था का प्रयोग गुरु गोरखनाथ ने किया । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'इसकी सबसे बड़ी कमजोरी इसका रूखापन और गृहस्थ के प्रति अनादर भाव है । इसी ने इस साहित्य को नीरस बना दिया ।' फिर भी यह साहित्य उत्तरी भारत में मार्मिक वातावरण को शुद्ध और उदात्त बनाने में सहायक सिद्ध हुआ । बाद के साहित्य में चारित्रिक दृढ़ता, आचरण की शुद्धि और मानसिक पवित्रता का जो स्वर सुनाई पड़ता है उसका श्रेय नाथ साहित्य को ही जाता है । नाथों की विचारधारा, हठयोग की क्रियाओं, इन्द्रिय निग्रह, गुरुमहिमा आदि का कबीर आदि संतों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा ।

५.५ जैन साहित्य

जिस प्रकार हिन्दी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार हिन्दी-कविता के माध्यम से किया, उसी प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत प्रचार हिन्दी कविता के माध्यम से किया । वैसे तो जैन उत्तर भारत में जहाँ-तहाँ फैले रहे किन्तु आठवीं से तेरहवीं शताब्दी तक काठियावाड़ गुजरात में इनकी संख्या अधिक रही । वहाँ के चालुक्य, राष्ट्रकूट और सोलंकी राजाओं पर इनका पर्याप्त प्रभाव रहा ।

महावीर स्वामी का जैन धर्म, हिन्दू धर्म के अधिक समीप है । जैनों के यहाँ परमात्मा तो है वह इस संसार का नियामक न होकर चित्त और आनंद का स्त्रोत है । उसका संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है । कोई भी मनुष्य अपनी साधना और पौरुष से परमात्मा बन सकता है । उसे परमात्मा से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं । इन्होंने जीवन के प्रति श्रद्धा जगाई और उसमें आचरण की शुद्धता को महत्त्वपूर्ण बताया । अहिंसा, करुणा, दया और त्याग का जीवन में

विशेष महत्त्व बताया । इनके यहाँ त्याग इन्द्रियों के अनुशासन में नहीं कष्ट सहने में हैं । उन्होंने उपवास तथा व्रत आदि कृच्छ साधना पर अधिक बल दिया और कर्मकांड की जटिलता को हटाकर समाज के सभी वर्गों को मुक्ति का भागी बताया ।

जैन मुनियों की सर्वाधिक रचनायें अपभ्रंश में मिलती हैं, जो कि धार्मिक हैं । इनमें काव्य के रूप में सम्प्रदाय की रीति-नीति का वर्णन अधिक किया गया है । कुछ गृहस्थ जैनों का लिखा हुआ साहित्य भी उपलब्ध होता है । इसके अतिरिक्त उस समय के व्याकरण आदि ग्रंथों में जैन साहित्य के कुछ उदाहरण मिलते हैं । कुछ जैन कवियों ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत की कथाओं से राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने धार्मिक सिद्धांतों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है । इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जैन महापुरुषों के चरित्र लिखे गए तथा लोक प्रचलित इतिहास प्रसिद्ध आख्यान भी जैन धर्म के रंग में रंग कर प्रस्तुत किये गए । इनके अतिरिक्त जैनों के रहस्यात्मक काव्य भी लिखे हैं । इस साहित्य के प्रणैता शील और ज्ञान-संपन्न उच्च वर्ग के थे । अतः उनमें अन्य धर्मों के प्रति कटु उक्तियाँ नहीं मिलती हैं और न ही लोकव्यवहार की उपेक्षा मिलती है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जैन साहित्य के अंतर्गत पुराण साहित्य, चरित काव्य, कथा काव्य एवं रहस्यवादी काव्य भी लिखे गए इसके अतिरिक्त व्याकरण ग्रन्थ तथा श्रृंगार, शौर्य नीति और अन्योक्ति संबंधी फुटकर पद्य भी लिखे गए । पुराण संबंधी आख्यानों के रचइताओं स्वयंभू, पुष्पदंत, हरिभद्र सूरि, विनय चन्द्र सूरी, जोइंदु, तथा राम सिंह का विशेष स्थान है । आचार शैली के जैन काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई । यहाँ जैन तीर्थकरों के जीवन चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाएं जैन आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से लिखी गई । जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात को 'ताल' देकर रास का गायन करते थे । धीरे-धीरे यहीं 'रास' उनके लोकप्रिय ग्रन्थ बन गए । जैन साहित्य की कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ हम देख सकते हैं :

पउम चरिउ (पद्म चरित) : आठवीं शती में स्वयंभू द्वारा रचित पद्म चरित में राम की कथा है । स्वयंभू ने जैन धर्म की प्रतिष्ठा के लिए राम कथा में अनेक परिवर्तन भी किये हैं ।

श्रावकाचार : सन ९३३ ई. में प्रसिद्ध जैन आचार्य देवसेन ने इसकी रचना की थी । इसके २५० दोहों में उन्होंने श्रावक - धर्म का प्रतिपादन किया है । इस रचना में कवि ने गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों पर भी विस्तार से विचार किया है ।

भरतेश्वर - बाहुबली रास : इस ग्रन्थ की रचना सन ११८४ ई. में प्रसिद्ध जैन आचार्य शालिभद्र सूरि ने की थी । इसमें भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित्र-चित्रण है । ये दोनों चरित नायक संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में भी काव्य रचना के विषय रहे हैं । कवि ने दोनों राजाओं की वीरता तथा युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन किया है । कुल २०५ छंदों में रचित यह एक सुन्दर खंड काव्य है ।

चन्दनबालारास : यह कुल पैंतीस छंदों का एक लघु खंड काव्य है जिसकी रचना सन १२०० ई. के आस–पास आसुग नामक कवि ने जालौर में की थी । इसकी कथा नायिका चंदनबाला अनेक कष्टों को सहती हुई अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त होती है । एक लघु कथा पर आधारित यह जैन - रचना करुण रस की गंभीर व्यंजना करती है ।

स्थूलिभद्ररास : सन १२०९ ई. में रचित यह काव्य 'जिनधर्म सूरि' की कृति मानी जाती है । इसमें कोशा वेश्या के पास भोग-विलास में लिप्त रहने वाले स्थूलि भद्र को कवि ने जैन धर्म में दिक्षित बताकर बाद में मोक्ष का अधिकारी बना दिया है । काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिन्दी ही है ।

रेवंतगिरिरास : यह विजयसेन सूरि की रचना है जो सन १२३१ ई. के आस-पास रचित है । इस काव्य में तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रेवंत गिरि तीर्थ का वर्णन है ।

नेमिनाथ रास : इस काव्य की रचना 'सुमति गणि' ने सन १२१३ ई. में की थी । कुल अट्ठावन छंदों की इस रचना में कवि नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया गया है । रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिन्दी है ।

यहाँ जैन धर्म की शिक्षा देने के लिए इस प्रकार के अन्य काव्य भी लिखे गए जिनमें धनपत की भविष्यत् कथा, राम सिंह का पाहुड दोहा, धर्मसूरि के जम्बूस्वामी रास आदि विशेष प्रसिद्ध रहे हैं ।

इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि हिन्दी साहित्य के विकास में जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । अपभ्रंश भाषा में जैन धर्म के अनेक ग्रन्थ लिखे गए और अपभ्रंश से हिन्दी का विकास होने के कारण जैन साहित्य का हिन्दी पर विशेष प्रभाव पड़ा । केवल भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं बल्कि हिन्दी के प्रारंभिक रूप का सूत्रपात करने में भी इस साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । अपभ्रंश साहित्य अपने आप में एक अत्यंत व्यापक साहित्य है । इसमें महाकाव्यों, खंडकाव्यों, गीति काव्यों, धार्मिक काव्यों, स्फुट साहित्य और गद्य साहित्य आदि की अनेक विधाओं का बीजारोपण हुआ है । हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण जानकारी के लिए अपभ्रंश का अध्ययन आवश्यक है ।

काव्य और शैली की दृष्टि से भी जैन साहित्य में व्यापकता दिखाई देती है । जैन कवियों ने प्रबंध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया है । उन्होंने अनेक प्रकार के छंदों- चांचर, चतुष्पदी, रास, चौढालिया, कवित्त और दोहा आदि का प्रयोग किया है । दोहा अपभ्रंश का प्रिय छंद है । बाद में अपभ्रंश के इन चरित काव्यों, शैलियों और छंदों का हिन्दी पर विशेष प्रभाव पड़ा ।

५.६ रासो साहित्य :

रासो शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अलग-अलग विद्वानों के विचार भी भिन्न हैं । फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सा द तासी का मानना है कि चारण काव्यों में राजसूय यज्ञ का उल्लेख है और उसी राजसूय से जोड़ते हुए इनका नाम रासो पड़ा । जब कि कुछ विद्वान रासो का सम्बन्ध रहस्य से जोड़ना चाहते हैं । कुछ विद्वानों ने रास को रसिया शब्द से जोड़ कर देखा है जिसका अर्थ भद्दा श्रृंगार है । प्रसिद्ध विद्वान आ. रामचंद्र शुक्ल ने रासो शब्द का सम्बन्ध रसायन में माना है कि बीसलदेव रासो में काव्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । आचार्य हजारी प्रसाद

द्विवेदी के अनुसार - 'रासक एक छंद भी है और काव्य भेद भी । काव्य के इस बंध में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ करता था । पृथ्वीराज रासो उसी परम्परा का काव्य है ।'

हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश साहित्य में दो प्रकार की रासो परम्परायें प्रचलित थीं :

१. गीत-नृत्य परक २. छंद वैविध्य परक ।

पहले के अंतर्गत अपभ्रंश के उन रासो ग्रंथों की रचना हुई जिनका मूल उद्देश्य कथा-रूप में जैन धर्म का अंकन एवं व्याख्या करना रहा ।

दूसरे, छंद वैविध्य परक परंपरा के अंतर्गत वे रचनायें आती हैं जिनमें वीरों के चरित्र का वर्णन किया गया है । जैसे - मुंजरास, हम्मीर रासो आदि । इन परम्पराओं के ग्रंथों की रचना भिन्न-भिन्न प्रदेशों में हुई थी । पहली परम्परा के ग्रन्थ प्रधान रूप से गुहरात और पश्चिमी राजस्थान में लिखे गए ; और दूसरी परम्परा के चरित - काव्य हिन्दी भाषी प्रदेशों में इस दूसरी परम्परा के कवि जैन नहीं थे । हिन्दी में बाद के रासो ग्रन्थ इसी दूसरी परम्परा से प्रेरित और प्रभावित थे ।

रासो ग्रंथों की प्रमुख विशेषताएँ : इस युग में जो प्रसिद्ध रासो ग्रन्थ लिखे गए और जो उपलब्ध हैं, वे निम्नलिखित हैं :

१. खुमाण रासो - दलपत विजय,
२. बीसलदेव रासो - नरपति नाल्ह,
३. विजयपाल रासो - नल्ह सिंह भट्ट,
४. हम्मीर रासो - शारंगधर,
५. परमालरासो - जगनिक और
६. पृथ्वीराज रासो - चंद बरदाई ।

उक्त सभी ग्रन्थ कथा काव्य हैं । इनमें से केवल 'बीसलदेव रासो' ही एक मात्र ऐसा रासो ग्रन्थ है, जिसमें चरित नायक राजा बीसलदेव की वीरता का वर्णन न होकर श्रृंगार के संयोग और विप्रलंभ - दोनों रूपों की प्रधानता रही हैं । शेष सम्पूर्ण ग्रंथों में कवियों ने अपने-अपने आश्रय दाता राजाओं को अप्रतिम वीर पुरुष सिद्ध करके उनके द्वारा लड़े गए विभिन्न युद्धों में प्रदर्शित उनके अद्भुत शौर्य आदि के साथ ही श्रृंगार के, प्रेम के क्षेत्र में उनकी अद्भुत सफलताओं का रोचक और व्यापक वर्णन किया है । प्रत्येक रासो ग्रन्थ का नायक हमारे सामने अत्यंत पराक्रमी और सुन्दर पुरुष के रूप में आता है । इन ग्रंथो की कुछ विशेषताएं लगभग सबमें समान हैं ।

पहली विशेषता यह है कि सबके नायक अत्यंत बलवान, सुन्दर और दानवीर, उदार, शरणागत वत्सल हैं । इनकी वीरता की चर्चा देश-विदेश में होती है । इन कवियों ने अपने आश्रयदाता सामान्य राजाओं को भी वीर सिद्ध करने के लिए बड़े राजाओं को युद्ध में पछाड़ते हुए दिखाया है । उनमें से कई उदाहरण तो ऐसे भी मिल जाते हैं जिसमें हारने वाला राजा उस समय से बहुत पहले या बाद में पैदा हुए थे । इस प्रकार के अतिरंजित और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन इन रासो ग्रंथों की विशिष्टता और कमजोरी दोनों माना जा सकता है ।

दूसरी विशेषता है, इन ग्रंथों में मिलने वाला **बुद्धों का सजीव वर्णन** । इनमे से कई कवियों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वे स्वयं भी वीर थे और युद्धों में भाग लिया करते थे । युद्धों का व्यक्तिगत अनुभव होने के कारण ही इनके युद्ध वर्णन में वास्तविकता का रूप उभर आया है । इन वर्णनों की यह विशेषता है कि इनके कवियों ने इनका वर्णन करते समय ऐसे शब्दों और पदावली का प्रयोग किया है जो युद्ध के वातावरण और उनमें होने वाले कोलाहल तथा शस्त्रों की झंकार का जीवंत चित्र प्रस्तुत कर देते हैं । आगे चलकर कवि भूषन ने भी इसी शब्दावली प्रयोग किया था ।

इनकी तीसरी विशेषता है, **श्रृंगार और वीर रस** जैसे परस्पर विरोधी माने जाने वाले रसों का समन्वित रूप प्रस्तुत कर देना । इनके चरित नायक वीर होने के साथ ही नारी-सौन्दर्य के भी उपासक हैं । किसी भी सुन्दर नारी की सूचना पाकर तुरंत उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठते हैं और वीरता का प्रदर्शन करते हुए उस सुन्दरी के पिता से युद्ध छेड़ देते हैं । यहाँ प्रेम का प्रबल आकर्षण उनके पौरुष को उत्तेजित करता है । फिर, प्रियतमा को प्राप्त करने के बाद ये नायक उसके साथ केलि-क्रीडा में डूबे रहते हैं । इस प्रकार श्रृंगार और वीर रस ही इन ग्रंथों में प्रधान हैं । इनमें श्रृंगार वीर रस का प्रेरक बन कर आता है । इसलिए उसका रूप अधिक सशक्त, यथार्थ, रंजक और प्रभावशाली हो उठा है ।

इनकी चौथी विशेषता है, इनका मात्र **सामन्ती जीवन तक ही सीमित** रह जाना । इनके रचयिता कवि अपने चरित-नायकों, उनकी प्रियतमाओं और सामंत वर्ग के चित्रण को ही महत्त्व दिए हैं । ये ग्रन्थ प्रबंध काव्य हैं, आकार में भी बड़े हैं, परन्तु इनमें जनजीवन का चित्रण कहीं भी नहीं मिलता । अनेक विद्वानों द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' को हिन्दी पहला प्रबंध काव्य माना जाता है लेकिन उसमें भी जनजीवन कही उभर कर नहीं आता है, जबकि महाकाव्य में जनजीवन का चित्रण होना अनिवार्य माना गया है ।

इन ग्रंथों की **पाँचवीं विशेषता** भाषा और छंद योजना को माना जा सकता है । इनमें तीन भाषाओं के रूप मिलते हैं - **अपभ्रंश, अपभ्रंश मिश्रित और अपभ्रंश से प्रभावित** हिन्दी जिसे पिंगल कहा गया है तथा डिंगल (राजस्थान की भाषा) । भाषा के ये विविध रूप इनकी प्रामाणिकता के लिए सन्देह पैदा करते हैं । कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि ये रासो ग्रन्थ मूल रूप में परिनिष्ठित अपभ्रंश में लिखे गए थे । कालांतर में हिन्दी का कवि उनमें प्रक्षिप्त अंश जोड़ते चले गए । इसी कारण उनमे यह भाषा की भिन्नता मिलती है ।

वास्तव में रासो ग्रन्थ के उस संक्रमण काल में लिखे गए जब साहित्य में अपभ्रंश और संस्कृत का आधिपत्य था । हिन्दी-भाषा साहित्य में प्रवेश तो कर चुकी थी परन्तु उपर्युक्त दोनों समृद्ध भाषाओं के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाई थी । संभवत इसी कारण इन रासों ग्रंथों के रचनाकार कहीं-कहीं अपभ्रंश का भी प्रयोग कर बैठते हैं । जहाँ तक पिंगल और डिंगल की बात है तो, पिंगल राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा थी और डिंगल शुद्ध राजस्थानी भाषा थी । इन भाषाओं के प्रयोग की इच्छा कवियों पर निर्भर थी । जैसे 'पृथ्वीराज रासो' और उन्नीसवीं शताब्दी में रचा गया सूर्यमल्ल का 'वंशभास्कर' दोनों ही पिंगल भाषा में रचे गए ग्रन्थ माने जाते हैं । परन्तु, पृथ्वीराज रासो में ब्रजभाषा का अनुपात अधिक रहा है और 'वंशभास्कर' में राजस्थानी भाषा का ।

इस प्रकार यह कहना समीचीन होगा कि रासो ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । अधिकांश कवि यद्यपि कि दरबारी ही थे, अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा में ही ये काव्य रचे गए फिर भी तत्कालीन परिस्थितियों को समझने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है । इन ग्रंथों की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता नित गए शोधों के आधार पर सिद्ध हो या न हो लेकिन सामान्य पाठकों के बीच इन रचनाओं और इनके रचनाकारों को पूर्ण स्वीकृति मिल चुकी है । इसलिए इन रासो ग्रंथों को हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा में मील के पत्थर कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । ये रासो ग्रन्थ आदिकाल में निश्चित रूप से डिंगल, पिंगल में रचित चारण कवियों के चरित काव्यों के सूचक हैं ।

५.७ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी आदिकालीन साहित्य परम्परा से अवगत हो सके साथ ही साहित्य की प्रत्येक धारा जैसे सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, रासो साहित्य आदि का परिपूर्ण ज्ञान अर्जन कर सके।

५.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) सिद्ध साहित्य पर प्रकाश डालते हुए उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखांकित कीजिए।
२) नाथ साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
३) जैन साहित्य की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
४) रासो साहित्य किसे कहा गया है ? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

५.९ लघुत्तरी प्रश्न

१) सिद्ध साहित्य में सिद्धों की कुल संख्या कितनी है ?
२) सिद्ध साहित्य में किस बात पर बल दिया गया है ?
३) नाथपंथीयों ने कौनसी साधना को प्रारम्भ किया ?
४) नाथपंथ में विशेष महत्व किसे दिया ?
५) हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय का प्रारंभ कब से माना ?
६) नाथों की कुल कितनी संख्या मानी गयी है ?
७) जैन साहित्य में विशेष महत्व किन बातों को दिया गया ?
८) श्वावकाचार किस सम्प्रदाय की रचना है ?
९) हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश साहित्य में कौनसे दो प्रकार की रासो परम्परायें प्रचलित थी ?

❖❖❖❖

इकाई - ६ भक्तिकाल : परिवेश - भक्ति आन्दोलन का विकास

इकाई - ७ संत काव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ

इकाई - ८ सूफी काव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ

लेखक - डॉ. संध्या शिवराम गर्जे

munotes.in

इकाई-६

भक्तिकाल : परिवेश

भक्ति आन्दोलन का विकास

इकाई की रूपरेखा :

६.१ इकाई का उद्देश्य

६.२ प्रस्तावना

६.३ भक्तिकाल परिवेश

- ६.३.१ राजनीतिक परिवेश
- ६.३.२ आर्थिक परिवेश
- ६.३.३ सामाजिक परिवेश
- ६.३.४ धार्मिक परिवेश
- ६.३.५ सांस्कृतिक परिवेश
- ६.३.६ साहित्यिक परिवेश

६.४ भक्ति आन्दोलन उद्भव और विकास

- ६.४.१ 'भक्ति' का शाब्दिक अर्थ
- ६.४.२ भक्ति का उद्भव
- ६.४.३ आचार्य युग

६.५ भक्ति आंदोलन के उद्भव संबंधी विचार

- ६.५.१ आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- ६.५.२ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

६.६ सारांश

६.७ बोध प्रश्न या दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

६.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप भक्तिकालीन परिवेश और भक्तिकाल के उद्भव और विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप :

- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश को समझ सकेंगे।
- 'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति और अर्थ जान सकेंगे।

- भक्ति के उद्‌भव और विकास क्रम को समझ सकेंगे।
- भक्ति काल में विकास में सहायक आचार्य और विभिन्न संप्रदायों का अध्ययन कर सकेंगे।
- भक्तिकाल के उद्‌भव से संबंधित विद्‌वानों के विचार जान सकेंगे।

६.२ प्रस्तावना

इस इकाई में हम भक्तिकाल का अध्ययन करने जा रहे है। सर्वप्रथम हम भक्तिकाल के समय समाज और देश में व्याप्त परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे। इन परिस्थितियों में किस प्रकार भक्ति का उद्‌भव हुआ और भक्तिकालीन काव्य विकास की और अग्रसर हुआ। भक्ति शब्द की उत्पत्ति के स्त्रोत हमें कहाँ से मिलते है और आगे चलकर भक्ति का विकास किस प्रकार आंदोलन के स्वरूप में परिवर्तित होता है। भक्ति का विकास विभिन्न सम्प्रदायों और आचार्यों के सान्निध्य में फलता फूलता है। और भक्ति के विकास की अवधारणा आधुनिक युगीन आचार्यों ने किस प्रकार दी है इसके पीछे क्या कारण माने है। उन कारणों के तथ्य तक पहुँचने की कोशिश करेंगे।

६.३ भक्तिकाल परिवेश :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल की समयावधि सन् १३९८ से १६४३ ई. तक मानी है अन्य इतिहास कार भी इसी कालावधि को स्वीकारते है लेकिन भक्ति का विकास छटी शताब्दी से ही दक्षिण भारत में प्रारंभ हो गया था लेकिन बाद में भक्ति का प्रसार उत्तर भारत में इतने वृहत रूप में हुआ कि इसका समय निर्धारण तेरहवी शताब्दी से सत्रहवी शताब्दी तक का माना गया है। तत्कालीन समय में भारत इस्लाम के संपर्क में आया। मुस्लिमों का बढ़ता प्रभाव और आक्रोश मयी प्रवृत्ति ने समाज की व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर दिया था ऐसा नहीं है कि इस वातावरण में भक्ति का आवेग रूका हो परंतु इस प्रकार की तीक्ष्ण व्यवस्था ने भक्तिकालीन काव्य पर प्रभाव निश्चित ही डाला है। इसी आधार पर भक्तिकालीन परिवेश का विभिन्न क्षेत्रों में अभ्यास इस प्रकार किया गया है।

६.३.१ राजनीतिक परिवेश :

भक्तिकाल के उदय से ही भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। भक्तिकाल के विस्तार के समय तुगलक वंश से लेकर मुगल वंश के शाहजहाँ के शासन काल रहे तत्कालीन समय का राजनीतिक इतिहास देखने पर दृष्टिगोचर होता है। तुर्की की घुसपैठ भारत के पश्चिमी राज्य से हुई मुस्लिमों का बढ़ता प्रभाव और राजपूत राजाओं की आपसी रंजिश और शत्रुता के कारण पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी के हाथों मारे जाते है वही जयपुर के राजा जयचंद्र को कुतुबद्दीन मार डालता है। धीरे-धीरे दिल्ली का राजसिहांसन तुर्कीयों के तख्रोताज में तब्दील हो जाता है। मुहम्मद गौरी एक जैसे अभियान ही छेड़ देता है और भारत के अनेक हिस्सो में आक्रमण कर पूरे भारत को अपने कब्जे में लेना चाहता था। मुहम्मद गौरी ने अपना उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन को चुना। उस समय तक दिल्ली सल्तनत को विदेशी आक्रमणों और कब्जे का खतरा बढ़ गया। उनमें भी आपसी मतभेद होने लगे और राजपूत राजाओं के

राज्य वापस छीन लेने का भी खतरा बढ़ गया लेकिन तुर्की शासकों ने सभी को मात देकर दिल्ली सल्तनत का विस्तार कर गुजरात, दक्षिण भारत और दक्कन पर कब्जा कर लिया।

इस प्रकार १२०९ से १२९० ई. तक दिल्ली की सल्तनत में कई उतार चढ़ाव आये। १२९० में बलतन की मृत्यू के उपरांत खिलजी वंश का शासन स्थापित हुआ। जलालुद्दीन खिलजी गद्दी पर बैठा उसका शासन काल ६ वर्षे का था लेकिन वह कठोर नहीं था उसने राज्य में प्रजा को सर्वोपरि माना उसका मानना था भारत वर्ष में अधिकांश जनता हिन्दु है इसीलिए धार्मिक दृष्टि से किसी भी प्रकार की जोर जबरदस्ती ठीक नहीं होगी। जलालुद्दीन के बाद अलाउद्दीन खिलजी शासक बना जिसने फिर से सत्ता का खेल उलट कर रख दिया जो भी उसका विरोध करता वह मृत्युदंड की सजा पाता। अलाउद्दीन की मृत्यु के उपरांत गयासुद्दीन को गद्दी मिली जिसने तुलगक वंश की शुरुवात की तुगलक वंश का शासन १३२० से १४१२ तक रहा। गयासुद्दीन के पश्चात उनके पुत्र मुहम्मदबिन तुगलक (१३२४ से १३५१ ई.) और उसका भतीजा फिरोज तुगलक जिसका शासन १३५१ तक था लेकिन तैमूर द्वारा दिल्ली आक्रमण के पश्चात साम्राज्य का अंत हो गया। बलाउद्दीन खिलजी के सत्ता में आने के उपरांत राज्य प्रसार अधिकाधिक हुआ। गुजरात, मालवा, राजस्थान, दक्षिण भारत, दक्कन और मदुरै तक खिलजीयों का शासन रहा।

१४५१ में अफगान सरदार बहलोल लोदी का शासन स्थापित हुआ। लोदीयों में सिकंदर लोदी सर्वाधिक शक्तिशाली शासन रहा। उसने ग्वालियर, धौलपुर जीतकर राज्य प्रसार किया। १६०६ में उसने आगरा की नीव डाली जो लोदीयों की दूसरी राजधानी थी लोदीयो के दूसरे शासक इब्राहिम लोदी थे जो आपसी मनमुटाव और दुश्मनी की वजह से ज्यादा दिन टिक नहीं पाये।

१५ वीं शताब्दी के मध्य पठानो ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। बाबर दिलावर खाँ का आक्रमण पाकर भारत गया और १५२६ में बड़ी सूझ बूझ के साथ पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी पर विजय हासिल की। १५२७ में राणा सांगा को पराभूत कर दिया। बाबर के बाद उसका पुत्र हिमायूँ के हाथ में सत्ता आई परंतु वह भाग गया। शेर शाह की मृत्यु के पश्चात हिमायूँ के पुत्र अकबर का शासन स्थापित हुआ। अकबर की चतुर नीति में मुगल साम्राज्य को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से राजपूत व अन्य राजाओं के साथ समन्वय स्थापित करने की कोशिश की। अकबर के नेतृत्व में विशाल और स्थिर मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई उसका साम्राज्य उत्तर पश्चिमी अफगाण देश से असम तक और उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक फैला हुआ था। अकबर की नीति उदार सामाजिक व सांस्कृतिक एकता और धर्मनिरपेक्षता की थी। अकबर के बाद १६०५ से १६९७ ई. तक जहाँगीर और १६२० से १६५२ तक शाहजहाँ के कुशल नैतृत्व में मुगल राज्य चलता रहा। अकबर नीति को इन शासको ने आगे बढ़ाया।

६.३.२ आर्थिक परिवेश :

यदि भक्तिकाल का आर्थिक परिवेश देखते है तो तुर्की के आने के बाद उनके शासन काल में शहरों का उदय हुआ ये शहर व्यापार के प्रमुख केंद्र थे शहरों के साथ कस्बों का भी उदय हुआ और इस तरह शहर, गाँव और कस्बे में परस्पर संबंध स्थापित हुए। दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, पटना आदि शहरों का विकास मुगलकाल में ही हुआ माना जाता है।

शहरों के साथ उद्योग व्यापारों का भी विकास हुआ। चरखा, कागज, चुम्बक समय सूचक उपकरण आदि से प्रोद्यौगिकी का विकास हुआ साथ ही वस्त्र उद्योग इतना फैल गया कि वह भारत का अग्रणीय, उद्योगों में गिना जाने लगा इनमे रेशम से बने वस्त्र और बुनाई व कसीदाकारी से राजाओं के वस्त्र बनते थे और राज महल सजते थे। शहरो और कस्बों के निर्माण के साथ किलों और महलों का निर्माण बड़े पैमाने पर देशीय व्यापार के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी आगे बड़ा। सूती वस्त्र बड़े पैमाने पर निर्यात किया जाता था। कई देशों को चीनी और चावल भी निर्यात होता था। इस सबके चलते व्यापरी वर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो रहे थे। मुगलकाल में अर्थव्यवस्था को बल मिला लेकिन गरीब मजदूर की दशा हीन-दीन ही रही।

६.३.३ सामाजिक परिवेश :

सामाजिक परिवेश में जाति-पाँति व्यवस्था पूर्वत ही बनी रही और उससे भी अधिक कठोर हो गई। विवाह और खान-पान संबंधी बंधन अधिक कठोर हो गए। ब्राह्मण वर्ग अधिक अहंकारी व मान-मरातब वाला था। वही शुद्र वर्ण के लोगों की मुश्किले बढ़ती जा रही थी। वह चारों और से कमजोर हो रहा था। क्योंकि शूद्रों का कर्तव्य दुसरे वर्ण के लोगों की सेवा करना था। शूद्रो के साथ अछूत सा व्यवहार होता था। तुर्को इरानियों, अफगानों और भारतीय मुसलमानों में एक दूसरे के साथ वैवाहिक संबंध नहीं होता था। हिन्दु और मुसलमानों के अपने अलग अलग तौर तरीको के कारण दोनो का मेल-मिलाप अधिक न था इस बावजूद भी एक दूसरे से संपर्क बना रहा यही कारण है कि कृष्ण भक्ति काव्य में मुस्लिम कवियों का भी समावेश है। और जाति-प्रथा, ऊँच नीच की भावना का जमकर विरोध सिध्दों और नाथ सप्रंदाय ने किया। स्त्री जाति सर्वाधिक पतन के दौर से गुजर रही थी। हिन्दु कन्याओं को मुस्लिम शासक उनके रूप-रंग के आधार पर पैसा देकर खरीदते थे। कुलीन नारीयों का अपहरण कर मनोरंजन करते थे। ठीक इसी तरह हिन्दु शासक भी मुस्लिम नारीयों को नृत्य और गीत का प्रशिक्षण देते थे। मुस्लिम शासकों के यहाँ हजारों औरतो वाले हरम रहते थे जिनमें सुंदर युवतियों को इकट्ठा किया जाता था। परिणामतः पर्दाप्रथा का प्रचलन बढ़ गया, जोहर और सती प्रथा का प्रारंभ हुआ। हिन्दु नारीयो ने स्वयं को संकुचित दीवारों में घेरना प्रारंभ कर दिया। भारतीय समाज दो वर्गो में विभक्त हो गया पहला सुविधा-संपन्न और दूसरा असुविधा ग्रस्त।

६.३.४ धार्मिक परिस्थिति :

धार्मिक परिवेश का अध्ययन करने के पश्चात यही दृष्टिगोचर होता है कि मुगलकाल में कई मंदिरों को तोड़कर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया गया। भारत में अधिपत्य के पश्चात् तुर्कियों ने कई मस्जिदों का निर्माण कराया। शरीयत कानून के तहत अन्य धर्म को नए पूजा स्थल या मंदिर बनाने का परवाना नहीं मिलता था।

इस युग में धर्म परिवर्तन बहुत हुआ। कई हिन्दुओं ने मुस्लिम धर्म स्वीकार किया इसका कारण किसी भी प्रकार की जोर जबरदस्ती नहीं थी वरन इस्लाम धर्म को स्वीकारने के पश्चात सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक और राजनीतिक लाभों की ललक थी। किसी जनजाति विशेष का जनप्रतिनिधि या शासक धर्म परिवर्तन करता था तो जनता भी उसका अनुकरण करती थी।

मुस्लिम शासन हिन्दुओं की धार्मिक भावना की प्रबलता को जानते थे। यह भी उन्हें ज्ञात था कि किसी भी प्रकार के बल प्रयोग से इस भावना को नष्ट नहीं किया जा सकता। हिन्दु

और मुसलमानों में कुछ कट्टर लोग आपस में धार्मिक मतभेद मजबूत करने मे लगे थे लेकिन आपसी सामन्जस्य भी कगार पर था।

इस काल में बोध्द धर्म की विकृत परिस्थिति देखने को मिली वही वैष्णव धर्म अपनी परम्परागत वैशिष्ट्य की और बढ़ रहा था। बौध्द धर्म दो भागों में बँट गया। हीनयान और महायान में व्यावहारिक पक्ष की उदारता अधिक देखने को मिली। लेकिन बौध्द धर्म के आपसी कलह ने वैदिक धर्म का पुनरूद्धार किया। बौध्द धर्म के विरोध में अद्वैतवाद का प्रचार हुआ। विष्णु के अवतार रूप राम और कृष्ण की आराधना हुई। जनता को भी धर्म का आश्रय मिला। जनभाषा में धार्मिक ग्रंथ अनुदित हुए और जन जन तक पहुँचे।

सिध्द और नाथ संप्रदाय एकेश्वरवाद की अवधारणा को लेकर आए जो जात-पात, ऊँच-नीच और धर्म के भेद को मिटा कर सदाचार और एकता स्थापित करना चाहते थे। इस सम्प्रदाय का प्रमुख कार्य हिन्दु - मुस्लिम के बीच की खाई को मिटाना और भाई चारे की भावना को आगे बढ़ाकर समाज में समानता स्थापित करना था।

६.३.५ सांस्कृतिक परिवेश :

सांस्कृतिक चेतना में समन्वयात्मकता की अभिव्यक्ति का काल भक्तिकाल है। यह अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर धार्मिक और दार्शनिक प्रतिष्ठा के माध्यम से हुई वैदिक धर्म के पुनरुत्थान से देवालयों का निर्माण हुआ। मूर्ति पूजा, भजन-कीर्तन, अवतार वाद, धर्म शास्त्रों की रक्षा और सम्मान आदि में लोक विश्वास का महत्वपूर्ण योगदान माना जाने लगा।

समन्वयात्मक प्रवृत्ति धर्म के समान मूर्ति एवं वास्तु कलाओं में भी देखी जाती सकती है। खजुराहों के वैद्यनाथ मंदिर के शिलालेख में ब्रह्म बुध्द तथा वामन को शिव रूप माना गया है, ऐलोरा के समीप कैलाश मंदिर में शिव की मूर्ति के सिर पर बोधी वृक्ष स्थित है। भक्ति आंदोलन इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

मध्यकाल में हिन्दु मुस्लिम संस्कृतियाँ एक दूसरे के निकष आई। संगीत चित्र तथा भवन निर्माण कलाओं में दोनों संस्कृतियों के उपकरणों में समन्वय आरंभ हो गया।

६.३.६ साहित्यिक परिवेश :

भक्तिकाल के अधिकांश संत और सूफी कवियों ने अपना सम्पूर्ण साहित्य गद्य रूप में न लिखकर छंद रूप में प्रतिबध्द किये है। नवीनता और मौलिकता के विषय में किसी भी प्रकार का विचार न करते हुए भक्तिकालीन साहित्य सिध्दांत प्रतिपादन तथा अपने परम् ईष्ट की भक्ति का प्रचार की भावना से समाहित था। भक्तिकाल के प्रमुख कवि सूर, तुलसी, कबीर, जायसी आदि सभी कवियों के साहित्य में इस प्रकार कि मनोवृत्ति देखी जा सकती है। हिन्दु कवियों के एक वर्ग जहाँ संस्कृत भाषा की ओर अपना रूझान बनाये हुए था वही प्रादेशिक भाषा में रचित साहित्य ने जन जन को मोह लिया। अवधी, ब्रज और खोड़ी बोली में रचित काव्य ने इन भाषाओं को प्रशस्त किया। समृध्द करने का कार्य देश में ही नहीं विदेशो में भी किया।

जैसा कि हम जानते है हिन्दी साहित्य के लगभग ९०० वर्ष के इतिहास में काल विभाजन की दृष्टि से सवंत १३७५ से सवंत १७०० यह कालावधि पूर्व मध्यकाल अर्थात भक्ति

काल नाम से संबोधित है। यह काल साहित्य की दृष्टि से और समाज की दृष्टि से कोई साधारण काल नहीं है वरन् इस काल में सर्वोत्कृष्ट काव्य रचना हुई सर्वोत्तम महाकाव्य लिखे गये जिनके पठन और श्रवण से भारतीय जन मानस भक्ति भाव में सरावोर हुआ और आध्यात्म की ओर आकृष्ट हुआ। फल स्वरूप तत्कालीन समय में समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबरता और मानवीय कलुषता और अन्य कई बुराईयों से जूड़ने का उन्हे मिटाने का कार्य भक्ति कालीन काव्य ने किया अपनी इसी विशेषता के कारण इस काल को विद्वानों ने भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग माना है।

६.४ भक्ति आन्दोलन उद्‌भव और विकास

६.४.१ भक्ति का शाब्दिक अर्थ :

भारतकोश में भक्ति शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है। भक्ति शब्द की व्युत्पति भज धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजना अर्थात सेवा करना अपने ईष्ट के प्रति आसक्ति समर्पण भाव। भक्ति शब्द अत्यंत प्राचीन है इस शब्द की व्याप्ति वेदो और उपनिषद में भी हुई है। इस संबंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते है - भक्ति का सर्व प्रथम उल्लेख श्वेताश्वतरोंपनिषद में मिलता है। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्यो के भारत आने पर उन्हें यहाँ की यक्ष, किन्नर, गंधर्व, असुर, व्रात्य, विद्याधर आदि जातियों की नागर सांस्कृति का परिचय मिला था। आर्य लोग मुख्यतः सैनिक जीवन के अभ्यासी थे और उनका जातीय जीवन ग्रामीण संस्कृति पर आधारित था। इन दोनों के मिलन और पारस्परिक आदान-प्रदान से भारतीय संस्कृति का विकास हुआ जिसकी छत्र छाया में भक्ति परम्परा का बीज विकसित हुआ।

उपनिषदों में निर्गुण भक्ति को प्रधानता दी गई है। कहीं कहीं प्रतीकोपासना के पुनः जागृत भी परिलक्षित की गई है। छान्दोग्य उपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद, मुण्डकोपनिषद आदि निषदों में भक्ति उपासना के पर्याप्त संकेत मिलते है। प्राचीन ऋषि मुनियों ने भी भक्ति शब्द की व्याप्ति का वर्णन किया है। व्यासजी ने पूजा में अनुराग को भक्ति कहा है। गर्ग ऋषि ने कथा श्रवण में अनुरक्ति को भक्ति माना है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के उदयकाल से ही भक्ति का अविर्भाव हुआ प्राचीन उपनिषद, वेद, पुराण के अनुसार भक्ति के अर्थ को जानकर हम कह सकते है कि भक्ति अपने ईष्ट के प्रतिआसक्ति है, भक्ति वो परम भाव है जो आत्मा से परमात्मा का साक्षात्कार कराता है। भक्ति की पराकाष्टा आत्मा को परमात्मा में लीन कर देती है। भक्ति भजन है कीर्तन है, भक्ति मानव जीवन को सार्थक बनाने का प्रबल मार्ग है।

पाश्चात्य विद्वान मोनियर विलियम्स के अनुसार भक्ति शब्द की उत्पत्ति भज शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है भाग लेना।

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को व्याख्यायित करते हुए लिखा है। परमात्मा के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते है।

६.४.२ भक्ति का उद्‌भव

तत्कालीन समय में धार्मिक अनुष्ठान ब्राह्मण वर्ग तक ही सीमित हो गये, फलस्वरूप जन साधारण भक्ति के इस स्वरूप से दूर हटता चला गया। यही कारण था कि जैन और बौध्द धर्म का आर्विभाव हुआ उदय हुआ। इन धर्मो के उदय होने का प्रमुख कारण था धार्मिक अनुष्ठानों में जो हिन्सा हो रही थी उसके विरोध में अहिंसा को मूल मंत्र मानकर आगे बढ़ना। अपने उच्च आदर्शो से समाज में समानता स्थापित कर सके। यही कारण था जन साधारण इन धर्मो की और आकर्षित हुआ वहीं समाज में जैन धर्म और बौध्द धर्म की प्रशस्ति को देख दूसरी तीसरी शताब्दी में राजा-महाराजाओं ने इन धर्मो को आश्रय प्रदान किया। जैन-बौध्द धर्म के प्रचार-प्रसार से गुप्तकाल, सिंहल द्विप, लंका, दक्षिण भारत में विहारों की स्थापना हुई।

नैतिक आदर्श, कर्मकाण्ड का विरोध, व्यभिचार का विरोध, अहिंसा आदि मूल्यों के आधार पर इन धर्मों को प्रशस्ति मिली थी लेकिन राज्याश्रय मिलने के उपरांत ये धर्म अनेक विकृतियों से जड़ गये। अपने विपक्ष के प्रति हिंसा, अत्याचार खंडन-मंडन की नीति को अपनाया और इन धर्मो का जो समाज में आदर्श रूप था वह परिवर्तित हो गया, विहार, व्यभिचार और बुराइयों से भ्रमित हो गये इनके पदाधिकारी आपसी मतभेद में ही उलझते चले गये फलस्वरूप जनता इनसे विमुख हो गई।

ऐसे समय में तमिल प्रदेश में भक्ति आंदोलन का उदय हुआ। अब प्रश्न यह है कि आंदोलन शब्द का प्रयोग क्यों किया गया। क्योंकि तमिल के अलवार भक्तो द्वारा इसका नेतृत्व किया गया। आल्वार भक्तो ने वैष्णव भक्ति में लीन, तत्वों का समावेश कर भक्ति मार्ग को नवीन रूप प्रदान किया था। उस नवीन रूप को भक्ति आंदोलन कहा गया। चूकि वैष्णव भक्ति तो हमारे समाज में वैदिक और भागवत पुराण से चलती आ रही थी लेकिन प्रमुखतः धार्मिक, सामाजिक कारणो की वजह से इसका ऱ्हास हुआ उसी भक्ति धारा में नवीन तत्वों का समावेश कर सुधारवादी अवधारणा को स्थापित किया गया। इसमें सामंजस्य बिठाने का कार्य दक्षिण में हुए भक्ति आंदोलन में आल्वार भक्तों द्वारा हुआ जो भक्ति आन्दोलन के नाम से अभीहित है।

सातवीं - आठवीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक प्रदीर्घकाल भक्ति आंदोलन का प्रभाव रहा यह प्रभाव जन-जन में आज तक विद्यमान है। भक्ति आंदोलन सुधार की दिशा में आगे बढ़ता है। समाज की अवस्था बदलती है व्यक्तिगत नैतिक आदर्शो की आवश्यकता होती है उसी के अनुरुप भक्ति सामंजस्य भाव से आगे बढ़ती है।

आल्वार भक्तों द्वारा तमिल प्रदेश में भक्ति आंदोलन पाँचवी-छटी शताब्दी से लेकर १० वी ग्यारहवी शताब्दी तक चला इस आंदोलन का नेतृत्व अलवार और नयनार संतो द्वारा किया गया। अलवार संत विष्णु के उपासक थे। इनकी संख्या १२ थी। नयनार संत शिव की उपासना करते थे। इनकी संख्या ६३ थी। तत्कालीन समय में जन साधारण राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थिति से भयभीत था। ब्राह्मणों का बढ़ता वर्चस्व और जैन - बौध्द धर्म की असंगतिमय दशा से समाज खोखला हो रहा था। हीन-दीन मानसिक अवस्था से गुजर रहा था। इस वातावरण में अलवार संतो ने सर्वजन सुलभ भक्ति की धारा का सुत्रपात किया इस भावधारा का उद्‌भव समाज के लिए पथ प्रदर्शक साबित हुआ जो जन सामान्य के लिए सुलभ हो गई। अलवार संत और नयनार संतो की भक्ति की प्रवाहमयता ने कई राजाओं को राज्याश्रय प्रदान किया। जिसके फलस्वरूप शिव और वैष्णव मंदिरों का निर्माण हुआ, भक्त मंदिरों में जाने लगे, धार्मिक उत्सवों का आरंभ हुआ। वातावरण को भक्तिमय बनाने में अलवार संतो के

संगीतमय और भक्तिमय गीतों का बहुत बड़ा योगदान है। लेकिन इनके द्वार गाये गए गीत लिखित स्वरूप में नहीं है । अलवार संत भक्ति मे लीन उन गीतों को इतने भाव विभोर होकर गाते थे कि जन मानस द्वारा उन्हें गा गा कर वे गीत कंठस्थ हो जाते थे। अलवार संतों के प्रसिद्ध गीतों का जन जन में प्रचलित होने से भक्ति आंदोलन प्रबल हुआ और आगे बढ़ा ।

इस प्रकार भक्ति में पहली बार माधुर्य और प्रेम लक्षणा भक्ति का रूप परिलक्षित होता है क्योंकि इससे पूर्व पौराणिक साहित्य में दाम्पत्य भाव, कांत भाव और रागा नुगा भक्ति का अभाव था । अलवार संतो ने लौकिक प्रेम को ईश्वरीय प्रेम के रूप में परिवर्तित कर दाम्पत्य भाव का समावेश भक्ति में कर दिया । वही वियोग को आत्मा से परमात्मा तक जाने का रहस्य योग भी भक्ति में समाविष्ट कर हर प्रकार से भक्ति को सापेक्ष कर दिया । भक्ति को सरसता प्रदान कर नव जागरण काल का आरंभ हुआ जिसे संतो ने अपने कुशल आचरण सदाचारी और नैतिक बने रह कर जन जन को आकर्षित किया और भक्ति मार्ग किसी वर्ग विशेष के लिए न होकर समुचे मानव समाज के लिए खोल दिए ।

इस प्रकार २ री शताब्दी से ८ वी शताब्दी तक अलवार संतों ने भक्ति का प्रचार प्रसार कर उसे भक्तों के चरणों में रचा-बसा दिया । अलवारों के साथ नयनार संत भी ५ वी शताब्दी से १० वी शताब्दी तक भक्ति आंदोलन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे । इस प्रकार जन समाज में यह क्रांति विरोध और विद्रोह के रूप में नहीं थी वरन शांति पूर्ण ढंग से समाज को प्रबोधित कर रही थी ।

६.४.३ आचार्य युग :

भक्ति आंदोलन का दूसरा सोपान आचार्य युग के नाम से अभिहीत है । अलवार और नयनार संतो ने शुरू किया हुआ भक्ति आंदोलन आगे चलकर विभिन्न संतो, आचार्यो, मुनियों ने शास्त्रीय पद्धति से कुछ नियम और विशेष अनुग्रह से प्रचारित हुआ इनमें प्रमुख है ।

नाथ मुनि :

नाथ मुनि ९ वी शताब्दी के उत्तरार्ध और १० वी शताब्दी के पूर्वार्ध में आये । नाथ मुनि संस्कृत और तमिल भाषा के ज्ञानी थे । इन्होंने प्रमुख कार्य यह किया कि उन्होंने अलवार भक्तों द्वारा गाये गए गीतों को संग्रहित किया और 'नालायिर शिष्य प्रंबधम' नाम से संपादित किया इसे तमिल वेद नाम से भी जाना जाता है । इस संग्रह में पदों को निश्चित गीत पद्धति के रूप में गायन की व्यवस्था की, कर्म एवं भक्ति और लोक एवं वेद दोनों में सामंजस्य स्थापित किया और एक ऐसे व्यक्ति मार्ग की स्थापना की जो समाज के हर एक व्यक्ति स्त्री हो या पुरूष, हर एक वर्ण विप्र से लेकर शूद्र तक सभी के लिए उन्मुक्त कर दिया । इनके द्वारा किया गया सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य उत्तर भारत में जाकर अलवारों के भक्ति सिद्धांत का प्रचार किया ।

शंकराचार्य :

स्मार्त सम्प्रदाय में शंकराचार्यजी को शिव का अवतार माना जाता है । इनके विचार में परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूप में स्थापित है । सनातन धर्म को पुनः स्थापित और प्रतिष्ठित करने का श्रेय शंकराचार्यजी को ही दिया जाता है । इन्होंने अद्वैतवाद की स्थापना की और ब्रह्म सत्यम जगत मिथ्या कह कर जीवो ब्रह्मे न परा इस प्रकार से जीवों की महत्ता का वर्णन कर जगत को सारहीन बता दिया । इनके अद्वैतवादी दर्शन में ब्रह्म और जगत

एक ही तत्त्व है जो भी हमें दृष्टिगत होता है वह हमारे अज्ञान के कारण इसलिए जीव की मुक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है क्योंकि ज्ञान से ही जीव की मुक्ति हो सकती है और वह ब्रह्म में लीन हो जाता है । शंकराचार्यजी द्वारा किया प्रमुख कार्य भारत के विभिन्न भागों में मठों की स्थापना की इन मठों में गुरू शिष्य परम्परा का निर्वाह होता था इन मठों का प्रमुख उद्देश्य हिन्दु धर्म की एक जुटता और एकनिष्ठता था ।

रामानुजाचार्य :

इन्होंने श्री सम्प्रदाय का प्रारंभ किया । रामानुजाचार्य जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे । इन्होंने नाथ सम्प्रदाय द्वारा किए गये कार्य को आगे बढ़ाया और उसे व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया । इनका दर्शन विशिष्टा द्वैत दर्शन कहलाता है । ये विष्णु के अवतारी रूप राम के उपासक थे । इनका विशिष्टा द्वैतवाद पूर्णतः दार्शनिक मत न होकर मुक्ति सम्मिलित धार्मिक मत है जो जगत के नित्य और व्यवहारिक संज्ञा पर विश्वास रखते है । और ज्ञान से अधिक भक्ति पर बल देते हैं । श्री रामानुजाचार्य ने वेदांतदीप, वेदार्थ संग्रह, ब्रह्म सुत्रो और भगवत्गीता पर भाष्य लिखकर भक्ति के लिए सुदृढ आधार स्थापित किये और वैष्णव भक्ति आंदोलन को जीवित रखने के लिए भक्तों के लिए सदाचरण संहिता बनाई । भक्ति के प्रचार प्रसार के लिए मंदिरों में विविध उपक्रमों की शुरूवात की जैसे विभिन्न उत्सव, संगीत, नृत्य व अन्य कलात्मक कार्यक्रम का आयोजन ।

मध्वाचार्य :

मध्वाचार्यजी श्री विष्णु के अवतार श्री कृष्ण के समर्थक है इसी कारण श्री कृष्ण भक्ति का प्रचार प्रसार करके आगे बढ़े इनके द्वार ब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना हुई इनके दार्शनिक मत को द्वैतवाद नाम से जाना जाता है । इनका दर्शन द्वैतवाद शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खंडन करता है और जीव-जगत दोनों की सत्ता को सात्त्विक और सत्य मानता है। इनके अनुसार भगवान विष्णु अनंत गुणों से सम्पन्न है, परमात्मा स्वतंत्र और अद्वितीय है। परमात्मा में दैनिक गुण धारण करने की शक्ति है और जीव परमात्मा के अधीन है।

मध्वाचार्यजी द्वारा प्रस्थानप्रयी पर विद्वतापूर्ण भाष्य लिखकर उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति के प्रचार प्रसार में योगदान दिया। भक्ति के प्रचार हेतु मंदिरों का निर्माण करवाया और परवर्ती चैतन्य महाप्रभु का जो सम्प्रदाय या उसकी नींव मध्वाचार्यजी द्वारा रखी गयी।

आचार्य विष्णु स्वामी :

रूद्र संप्रदाय के प्रणैता श्री विष्णु स्वामीजी है इनका दार्शनिक मत शुद्धाद्वैतवाद कहलाया इस मत का प्रतिपादन करने के लिए इन्होंने संबंध सूत्र की रचना की। इनके अनुसार ईश्वर सद्चरित्र और आनंद रूप है। श्री आचार्य विष्णुस्वामीजी ने श्री कृष्णा की राधा के साथ युगल उपासना की जो हमे अष्टछाप और अन्य कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में वर्णित मिलती है। इनकी राधाकृष्ण भक्ति साध्य है। ज्ञान और कर्म भक्ति को प्राप्त करने के साधन है। इन्होंने भक्ति को मुक्ति से भी उत्तम माना और अष्टांग योग पालन पर अधिक बल दिया वही श्रोत और धार्मिक साहित्य के स्वाध्याय को आचरण में लाकर भक्ति को अधिक उत्तम और सार्थक बनाने का कार्य किया।

आचार्य विष्णुस्वामी का शुद्धाद्वैत दर्शन ही आगे चलकर श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रस्थापित किया गया। क्योंकि कुछ काल के लिए यह संप्रदाय विलुप्त सा हो गया था। बाद में

इस सम्प्रदाय के दर्शन को जीवित रखने का कार्य वल्लभाचार्यजी द्वारा १५ वी शताब्दी में किया गया।

स्वामी निम्बार्क :

इन्हे निम्बार्काचार्य भी कहा जाता है इनके द्वारा सनक या निम्बार्क सम्प्रदाय प्रस्थापित हुआ इनका दार्शनिक मत द्वैताद्वैत मत या भेदाभेद वाद था। इन्होने वेदान्त, पारिजात, सौरभ ब्रह्म सुत्रो पर संक्षिप्त भाष्य लिखा इनकी सिद्धांत रत्न नामक रचना है जो दशश्लोकी के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने राधा के साथ श्री कृष्ण की उपासना की और उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति का प्रचार प्रसार किया ये वृदांवन ब्रजमंडल में आकर रहे। इनके अनुसार ब्रह्म शक्तिशाली है वह नाना रूपों में आकर या उत्पन्न होकर आनंद उपभोग कर सकता है। भक्ति में योगदान की दृष्टि से देखे तो उत्तर भारत में राधाकृष्ण की भक्ति का पूर्ण श्रेय निम्बार्क सम्प्रदाय को जाता है उन्होंने भक्ति का शास्त्रीय विवेचन किया। राधाकृष्ण की युगल उपासना का विधान किया। राधा को कृष्ण की अधिष्टात्री और गोपीयों को अल्हादिनी शक्ति मान शरणागति को महत्व दिया।

इन सभी आचार्यो ने भक्ति आंदोलन को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया और भक्ति आंदोलन की नीव मजबूत की। इनके उपरांत जो भक्त और संप्रदाय आये उनके कार्यो ने भक्ति काल को सार्थन बना दिया और भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग बना दिया। इन आचार्यो में प्रमुख है - रामानंद वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, शंकर देव, माधव देव, आदि जिन्होने भक्ति को एक रूप दिया, रंग दिया और समाज के प्रत्येक वर्ग को उसमें समाहित किया। भारत वर्ष के अलग-अलग राज्यों में कई ऐसे संत हुए जिन्होने अपनी भक्ति-भावना से जन जन को प्रभावित किया उनके द्वारा रचित काव्य आज भी आत्मीयता से पढ़ा जाता है, पूजा जाता है और उन संतो को भी देवरूप मानकर पूजा की जाती है। बंगाल में भक्ति आंदोलन के प्रमुख सुत्रधार चैतन्य प्रभु रहे और उनके शिष्य रघुनाथ गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट आदि जो साधारण जनता के ह्रदय में देवो का अस्तित्व निर्माण करने में सफल रहे।

उत्कल प्रांत में पंचसखा भक्तों ने भक्ति आंदोलन को दिखा दिया कि इन्होंने जातीय संघर्ष को नष्ट करने का प्रयत्न किया इनमें कुछ नाम इस प्रकार है : - बलराम, अनन्त, यशवन्त, जगन्नाथ और अच्युत।

उपसमांचल प्रदेश में भक्ति का प्रचार शंकरदेव और मध्वाचार्य ने किया। शंकर देव ने शक्ति-परम्परा की स्थापना की और माधवाचार्य जी ने पहले शक्ति को पुष्ट किया। अन्य भक्तो में वृदांवन दास, परमानंद, पुरुषोत्तम ठाकुर, भागीरथ जैसे भक्तों का योगदान महत्वपूर्ण है।

महाराष्ट्र ने संत तुकाराम, नामदेव, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, रामदास स्वामी आदि प्रमुख संत थे जिनके द्वारा भक्ति के सगुण और निर्गुण दोनो रुपों को परखा गया। संत नामदेव महाराष्ट्र में ही नहीं सम्पूर्ण भारत वर्ष के लोक शिक्षक माने जाते है।

गुरुनानकजी द्वारा पंजाब में भक्ति को आधारस्तंभ मिला इनकी भक्ति में लोकाचार की भावना है और निर्गुण भक्ति को नया रूप प्रदान कर सामाजिक कुरीतियों पाखंडो से लड़ने की ताकत दी।

इस प्रकार शताब्दियों तक व्याप्त भक्ति आंदोलन ने समाज को प्रभावित किया। भक्ति आंदोलन की ही देन है कि समाज के हर वर्ग से महान संत उपजे जिन्होने भक्ति को सिर्फ

munotes.in

ईश्वरीय आराधना तक ही सीमित नहीं रखा अपितु समाज को सदाचार, सद्भाव, सहिष्णुता और एकता का पाठ पढ़ाया - कबीर, रैदास, नाभा, सेना नाई आदि।

इस प्रकार सभी विशेष मतो के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि मुस्लिमों का आगमन, मुगल साम्राज्य की स्थापना और उनका बड़ता वर्चस्व भक्ति आंदोलन के उदय का कारवा नहीं बन सकता क्योंकि भक्ति आंदोलन का उदय तो दक्षिण भारत में सातवी आठवी शती में हो गया था। आचार्य रामानंद के भक्ति प्रचार-प्रसार नीति से भारत वर्ष में भक्ति आंदोलन ने समाज सुधार और लोकजागरण का रूप धारण किया है। चौदहवी शताब्दी की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक-धार्मिक परिस्थितियों का असर पड़ सकता है लेकिन दक्षिण से प्रसारित हुआ यह भक्ति आंदोलन वैष्णव आचार्यो द्वार उत्तर भारत सहित देश के अन्य भागों में भी ह्रदयोन्मुख हो चुका था।

६.५ भक्ति आंदोलन के उद्भव संबंधी विचार :

भक्ति आंदोलन की विकास यात्रा में हमने अध्ययन किया अनेक कठिनाइयों उत्कर्ष और कभी कभी पतनोन्मुख होते हुए भी वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक भक्ति आंदोलन कार्यरत रहा। इस संबंध में आधुनिक युगीन आचार्यो ने विद्वानों ने अलग अलग मत व्यक्त किये है। जार्ज गिर्यसन ने भक्ति आंदोलन का कार्यक्षेत्र और समय सीमा को व्यापक बताते हुए कहा है- "बिजली की चमक के समान आनक इन समस्त धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नयी बात दिखाई दी। कोई हिन्दु यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी उसके प्रादुर्भाव के कारण का निश्चय नहीं कर सकता।" इस प्रकार पाश्चात्य विद्वान ग्रिर्यसन, वेबर कीथ आदि ने भक्ति परम्परा का उदय का कारण यही धर्म बताया। ग्रिर्यसन ने अपने मत प्रस्तुत करते हुए कहा कि ईसा की दूसरीं तिसरी शताब्दी में कुछ ईसाई मद्रास आकर बसे थे जिनके प्रभाव से भक्ति उदित हुई। वही बाल कृष्ण भट्ट के अनुसार भक्ति का उत्थान का कारण मुस्लिम का बड़ता प्रभाव और उनके द्वारा किए जा रहे अत्याचार है। इस प्रकार भट्ट जी ने भक्त कृतियों का विरोध किया और उन्हें हिन्दु धर्म को कमजोर करने की कड़ी भी करार दिया। इस प्रकार बालकृष्ण भट्ट सिर्फ राजनीतिक आधार पर भक्तिकाल को मूल्यांकन कर देते है उनके मत से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्णयुग के इस महान काव्यांजलि से वे अनभिज्ञ थे कभी उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि भक्तिकालीन काव्य पर पड़ने ही नहीं दीया।

६.५.१ आचार्य रामाचंद्र शुवल :

शुक्ल जी ने भारत वर्ष में मुस्लिमों का विस्तार होता साम्राज्य भक्ति के उदय का कारण माना उन्होंने स्पष्ट कहा है कि "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दु जनता के ह्रदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपने वीरता के गीत न तो वे गाही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़नेवाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दु जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश

जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"

शुक्लजी का मत स्पष्ट करता है कि मुस्लिम के आने से और विस्तारित होने से भक्ति उदयोन्मुख हुई लेकिन भक्ति आंदोलन का समूचा इतिहास, सम्पूर्ण अध्ययन और राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक सभी कारण शुक्लजी का मत गलत होने का दावा करते है जो भक्ति वैदिक काल और दक्षिण भारत से आगे बढ़कर सम्पूर्ण भारत वर्ष में जन जन के मन में रच बस गयी थी मुस्लिमों ने मंदिर और मुर्तियां तोड़कर भक्ति की ओर ध्यान नहीं खीचा क्योंकि वह ध्यान तो पहले ही हिन्दु धर्म में आ गया था। इस उपद्रव ने सिर्फ जख्म दिए है और कुछ नहीं।

डॉ. रामकुमार वर्मा और बाबू गुलाब राय भी शुक्ल जी के मत को योग्य मानते है। बाबू गुलाबराय कहते है "मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें संभव है या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोग विलास में पढ़कर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगो में पहली प्रकार की प्रवृत्ति पाई गई।" लेकिन कई भारतीय विद्वान न तो पाश्चात्य मत को मानते है और उक्त अन्य मतों का भी खंडन करते है उनके मत में भक्ति का उदय प्राचीन वेद संहिताओं से हुआ है इनमें प्रमुख विद्वान है -

६.५.२ हजारी प्रसाद द्विवेदी :

द्विवेदी जी शुक्लजी के मत का खंडन करते हुए लिखते है कि "यह बात अत्यंत उपहास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षा कृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा का उमड़ना था तो पहले उसे सिन्ध में और फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई दक्षिण में।"

इस प्रकार द्विवेदीजी भक्ति का उदय दक्षिण भारत से मानते है और डॉ. ग्रिर्यसन और शुक्लजी के मत को उपहासात्मक करार देते हुए कहते है कि 'यह बात उपाहास्पद है और यह कहना तो और भी उपहास्पद है कि जब मुसलमान हिन्दु मंदिरो को नष्ट करने लगे, तो निराश होकर हिन्दु लोग भजन-भाव में जुट गए .... जिस बात को अचानक बिजली की चमक के समान फल जाना लिखा है वह वैसी नहीं है उसके लिए सेकड़ो वर्ष से मेघखंड एकत्र हो रहे थे. फिर भी उसका प्रादुर्भाव एकाएक हो ही गया.'

इस प्रकार द्विवेदीजी ग्रिर्यसन के मत का भी खंडन करते हुए उनके मत पर भी स्पष्ट प्रतिक्रिया देते है। द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका पुस्तक में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि भक्तिकाव्य ईस्लाम की देन नहीं है वे कहते है - "अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"

डॉ. सत्येंद्र भी द्विवेदीजी के मत को मानते हुए कहते है "भक्ति द्राविडी उपजी जाये उमानंद।" इस उक्ति के अनुसार भक्ति का उत्थान द्रविड़ो द्वारा दक्षिण में हुआ। यह मत सर्व सम्मत माना जाता है।

इस प्रकार सभी विशेष मतों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि मुस्लिमों का आगमन, मुगल साम्राज्य की स्थापना और उनका बढ़ता वर्चस्व भक्ति आंदोलन के उदय का कारण नहीं बन सकता क्योंकि भक्ति आंदोलन का उदय तो दक्षिण भारत में सातवी-आठवी शती में हो गया

था। आचार्य रामानंद की भक्ति प्रचार प्रसार नीति से भारत वर्ष में भक्ति आंदोलन ने समाज सुधार और लोक जागरण का रूप धारण किया। हाँ ऐसा हो सकता है कि चौदहवी शताब्दी की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों का असर पड़ सकता है लेकिन दक्षिण से प्रसारित हुआ यह भक्ति आन्दोलन वैष्णव आचार्यो द्वारा उत्तर भारत सहित देश के अन्य भागों में भी ह्रदयोन्मुख हो चुका था।

६.६ सारांश

इस इकाई में अपने भक्तिकालीन परिवेश और भक्तिकाल के उद्‌भव और विकास की सम्पूर्ण जानकारी हासिल की। विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन से भक्तिकाल के संबंध में सम्पूर्ण जानकारी हासिल कर सके और भक्ति काल के प्रसार के कारणों की मिमांसा करने के साथ साथ भक्ति काल के विकास में सहायक विभिन्न सम्प्रदाय और आचार्यों ने किस प्रकार सहयोग दिया इन सभी मुद्दों से अवगत हो सके।

६.७ बोध प्रश्न या दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भक्तिकालीन परिवेश की विस्तार से चर्चा कीजिए।

२) भक्तिकाल के उद्‌भव और विकास का विवरण सविस्तर दीजिए।

३) भक्तिकाल के विकास में विभिन्न सम्प्रदायों और आचार्यो के योगदान का वर्णन कीजिए।

४) भक्तिकाल के प्रसार के कारण क्या है? आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के मतों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

५) आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिए गए भक्तिकाल के उद्‌भव और विकास के संबंध में प्रस्तुत विचारों को सविस्तार लीखिए।

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) नारद भक्ति सूत्र में भक्ति का अर्थ किस प्रकार स्पष्ट किया है?

२) भक्ति का प्रसार किस प्रदेश से हुआ?

३) भक्ति आंदोलन का विकास कौनसी सदी से माना जाता है?

४) अलवार संतो की संख्या कितनी थी?

५) अलवार भक्तों द्वारा गाये गये गीतों को नाथ मुनियों ने किस नाम से संपादित किया?

६) नयनार संत संख्या में प्रमुखतः .... माने जाते है?

७) नाथ मुनि कितने माने जाते है?

८) शंकराचार्य किस संप्रदाय से थे?

munotes.in

९) रामानुजाचार्यजी ने कौनसे संप्रदाय का आरंभ किया ?

१०)रूद्र संप्रदाय के प्रणैता कौन थे ?

११) निम्बार्क सम्प्रदाय की स्थापना का श्रेय किस आचार्य को है ?

१२) "अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारहआना वैसा ही होता जैसा आज है।" भक्ति काल से संबंधित यह मत किस विद्वान का है ?

६.९ संदर्भ पुस्तकें

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल
२) हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
३) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
४) भक्ति साहित्य में विश्वबंधुत्व की भावना - सं. डॉ. अनिल सिंह

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-७

संत काव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा :

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ संतशब्द का अर्थ व व्युत्पत्ति

७.३ संत मत व संत परम्परा

७.४ प्रमुख संत कवि

७.५ संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

७.६ सारांश

७.७ बोध प्रश्न या दीर्घोत्तरी प्रश्न

७.८ लघुत्तरीय प्रश्न

७.९ संदर्भ पुस्तकें

७.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी संत काव्य (ज्ञान मार्गीय शाखा) का अध्ययन करेंगे। इसके अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी :

- संत शब्द का अर्थ जान सकेंगे।
- संत काव्य परम्परा का अध्ययन कर सकेंगे।
- संत काव्य परम्परा के प्रमुख कवियों के विषय में जान सकेंगे।
- संत काव्यधारा की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

७.१ प्रस्तावना

यह इकाई ज्ञानमार्गीय धारा से संबंधित है जिसे संत काव्य धारा भी कहा जाता है। संत काव्य धारा के कवियों ने लोक-चेतना, लोक-धर्म को ध्येय मानकर काव्य कृति की। तत्कालीन समय की सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ विपरीत होते हुए भी संत कवियों ने बेधड़क समाज की सभी कुरीतियों, कुण्ठाओं से ग्रसित जन-जन को जागृत करने का मौलिक कार्य किया। और सिर्फ कवि की भूमिका न निभाकर समाज सुधारक की भूमिका निभाई। यही कारण है कि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है।

munotes.in

७.२ संत शब्द का अर्थ व व्युत्पति

संत शब्द का शाब्दिक अर्थ है विरक्त निष्काम जो भोग विषयादि से दूर हो। संत शब्द की उत्पत्ति संत शब्द से हुई है जिसका अर्थ अस्तित्व है जिसे श्री मद् भागवत गीता में 'ॐ तत्सत' कहा गया है इसके अंतर्गत संत का अर्थ सद्‌भाव, साधुभाव या उच्चकर्म करने वाले के लिए प्रयोग हुआ है।

श्री प्रभाकर माचवेजी ने आज के समय में साधारण जन मानस के विचार में संत शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। "संत शब्द से आजकल स्त्री - पुरूषादि - परिवार - गृहस्थी छोड़कर दुनिया से विरक्त मनुष्य की कल्पना सामने आती है। जिसने दुनिया से पीठ फेर ली है, बदन में राख मली है, जटाएँ बढ़ा ली है, ऐसे मनुष्य को संत साधु वैरागी कहने की प्रथा प्रचलित है।"[१]

इस प्रकार हम कह सकते है कि संत शब्द का प्रयोग हम उन विशेष व्यक्तियों के लिए करते है जो अपना जीवन स्वयं हेतु न मानकर सामाजिक हित में व्यतीत करते है। सत्य, न्याय, अहिंसा, सदाचार आदि अनेक अच्छाईयों को जीवन मूल्य मानकर समाज के और जन जन के लिए प्रेरणा स्त्रोत बन जाते हैं।

संत शब्द की व्युत्पत्ति से संबंधित विचार पितांबरदत्त बड़श्वाल जी ने व्यक्त करते हुए कहा कि 'संत शब्द की संभवतः दो प्रकार की व्युत्पत्ति हो सकती है या तो उसे पाली भाषा के उस शांत शब्द से निकला हुआ मान सकते है। जिसका अर्थ निवृत्ति मार्गी व वैरागी होता है। अथवा यह उस संत शब्द का बहुवचन हो सकता है जिसका प्रयोग हिन्दी में एकवचन जैसा होता है और जिसका अभिप्राय एक मात्र सत्य में विश्वास करने वाला अथवा उसका पूर्णतः अनुभव कर लेने वाला व्यक्ति समझा जाता है।'[२]

७.३ संत मत एवं संत परम्परा

कालक्रम की दृष्टि से भक्तिकाल का प्रारंभ १३ वीं शताब्दी से माना जाता है जिसे साहित्य का मध्यकाल भी कहा जाता है। मध्यकालीन समाज व्यवस्था में सामंतवाद, रूढिवादिता, जटिल जातिवाद व्यवस्था और उच्चवर्ग और निम्न वर्ग के बीच बढ़ती अथांग दूरीयाँ सामाजिक असमानता और व्यवस्था से सने समाज की चित्र प्रस्तुत करता है। ऐसी परिस्थिति में भक्ति आंदोलन विद्वानों की दृष्टि में एक क्रांतिकारी घटना है। सामाजिक परिवेश को देखते हुए भक्ति आंदोलन की शुरुवात ही निर्गुण काव्य परंपरा से मानी जाती है। निर्गुण काव्य परम्परा में ईश्वर की प्राप्ति का प्रमुख मार्ग ज्ञान और प्रेम को माना गया। ज्ञान मार्गी काव्य संत काव्य कहलाया और प्रेम मार्गी काव्य सूफी काव्य कहलाया।

भक्ति आंदोलन के प्रवाह में वर्ग, वर्ण, नस्ल धर्म और लिंग के मतभेदों को भुलाकर मानव मात्र एक समान की अवधारणा को बल मिला। संत साहित्य मानवता का पुर्नउत्थान है जिसमें मनुष्य द्वारा प्रेषित द्वेष, वैमनस्य, असमानता और र्दुभावनाओं को कोई स्थान नहीं है। संतो के संबंध में डॉ. वासुदेव सिंह कहते है - "संतवाणी केवल सामायिक परिस्थितियों की

प्रतिक्रिया मात्र नहीं है। यह गंभीर चिंतन और अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। इसी कारण यह काव्य आज भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर उपादेय और प्रासंगिक है।"

संत साहित्य जन-जन का साहित्य है। संतो ने जो रचनाओं के माध्यम से उपदेश देकर जन जागृति का प्रयास किया और इस प्रयास में अथाह सफलता भी हासिल की संत साहित्य का, महत्व और इसकी उपयोगिता सिर्फ साहित्य क्षेत्र तक ही संकुचित न बनी रहकर सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र को भी झकझोर कर रख देती है।

संतो ने केवल एक ही मार्ग का अवलोकन किया वह मार्ग है जन कल्याण का मार्ग इस सुदृढ मार्ग में मंगल-कामना का भाव, प्रताड़ित मानवीय चित्रण, शोषित सामाजिक चित्रण के साथ-साथ अध्यात्मिक भावनाओं और सदाचरण की स्पष्ट व्याख्या को प्रति रूपित कर आत्मानुभूति की प्रमाणिकता का प्रत्यक्ष रुप परिलक्षित होता है इस विषय में डॉ. नगेन्द्र लिखते है- "धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं का अंधानुसरण न कर इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोध, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि की निंदा, सदाचारादि गुणों की प्रतिष्ठा, शास्त्रीय ज्ञान की अनिवार्यता के निषेध, आत्मानुभूति की प्रमाणिकता आदि पर बल दिया। संत काव्य साधना में तत्पर एवं सर्वजन में मंगल कामना करने वाले भक्तो के सरल ह्रदयों की सहज अनुभूति का चित्रण मात्र है।"[3]

इस प्रकार संत साहित्य समाज के प्रति समर्पित सजग साहित्य है। इसका विराट स्वरूप तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त वर्णाश्रम व्यवस्था, ऊँच-नीच भेदभाव की भावना, अमानवीय वर्ग वैशम्य आदि अनेक कुप्रचलनाओं को अधीन करने के लिए बैचेन थी। संत कवियों ने धार्मिकता के आधार पर व्याप्त वाह्रयाडम्बरो का, पाखंडो का व्यंगात्मक तौर पर प्रहार कर उध्वस्त किया, धर्मगुरुओं के साम्राज्य हिलाकर प्रेम की भावना का उद्घोष किया वही लोक संस्कृति का जय घोष कर अभिजात्य संस्कृति को निराधार किया और समाज में फैले असंतोष के वातावरण में नव स्फूर्ति और दृढ़ विश्वास का प्रसार हर एक जन के मन में स्थापित किया।

७.४ प्रमुख संत कवि

संत काव्यधारा प्रमुखतः १३ वीं शताब्दीं से १६ वी शताब्दी तक माना जाता है। संतो का प्रमुख क्षेत्र उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत तक विस्तृत है। संत परम्परा प्रमुख रूप से जयदेव से सुरु होकर संत लालदास तक मानी जाती है।

हिन्दी संतकाव्य का प्रारंभ निर्गुण काव्य धारा से होता है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नामदेव और कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को निर्गुण ज्ञानाश्रयी धारा कि संज्ञा प्रदान की है। संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि है।

संत कबीरदास :

संत काव्य परंपरा में महात्मा कबीर का स्थान अग्रणीय है। ये समस्त संत कवियों में सर्वाधिक प्रतिभाशाली और मौलिक थे। संत कबीरदासजी ने स्वामी रामानंद से शिक्षा दीक्षा ग्रहण

munotes.in

की। स्वामी रामानंदजी ने 'भक्तिकाल' नामक ग्रंथ में सभी शिष्यों का उल्लेख किया है उनमें कबीर दासजी को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। कबीरजी की जन्म व मरण की तिथि के संबंध में पर्याप्त मतभेद है। विद्वानों ने १४५५ (सन १९३०) साल कवि का जन्म मानते है। यह जाति से जुलाहे थे और काशी इनका निवास स्थान था। कबीर पढ़े लिखे नहीं थे। इस संदर्भ में उन्होंने कहा है, "भारी कागद छुयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ।" उनके शिष्यों ने उनकी वाणी को लिपिबद्ध किया। बीजक कबीर दासजी की सप्रसिद्ध कृति है बीजक तीन भागों में विभक्त है साखी, सबद, रमैणी कबीर की रचनाओं में सर्वाधिक संख्या साखियो की है, साखियों में कबीर ने अनुभूत ज्ञान को व्यक्त किया है, कबीरदासजी की मृत्यु १५७५ वि. सन १६३२ में हुई मानी जाती है।

स्वामी रामानंद :

श्री रामानंदजी के श्री जन्म और मृत्युतिथि के संबंध में कोई जानकारी नहीं है। इनके द्वारा रचित ग्रंथ भक्तमाल में इनके जन्म स्थान का जिक्र मिलता है। ग्रंथ के अनुसार इनका जन्म प्रयाग मे काव्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में हुआ था इनके गुरु का नाम राघवानंद था, इनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में हुई। स्वामीजी रामानुज संप्रदाय के शिष्य थे। रामानंदजी द्वारा ही राम के द्वार सभी जन सामान्य के लिए खुल गये। इन्होंने काशी में रामावत सम्प्रदाय की स्थापना की। रामानंदजी के १२ शिष्य थे उनमें कबीर, रैदास, पीपा, सेन आदि का नाम प्रमुख उल्लेखनीय है।

नामदेव :

संत नामदेव का स्थान प्रमुख रूप से महाराष्ट्र राज्य है। इनका जन्म सातारा जिले में कराड़ के पास नरसीबामणी गाँव में १२७० में हुआ। इनके पिता का नाम दामा शेठ और माँ का नाम जोनाबाई था। संत नामदेव ने उत्तरी भारत में पर्यटनकर भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। इनके गुरु का नाम संत विसोवा खेवर था। संत नामदेव ने मराठी और हिन्दी दोनो भाषाओं में भजन गान करते थे।

दादूदयाल :

दादू दयाल का जन्म १५४४ ई. मे अहमदाबाद में हुआ माना जाता है। और मृत्यू सन १६३० ई. में. मानी जाती है। इनके जाति और नाम के विषय में कई अवधारणाएँ प्रचलित है। दादुपंथ के लोग मानते है ये किसी ब्राह्मण को साबरमती नदी में बहते हुए मिले। अन्य जनश्रुति के अनुसार इन्हें मुसलमान माना गया और मूल नाम दाऊद माना गया।

कहा जाता है दयालु स्वभाव के कारण इन्हें दादु दयाल कहा जाने लगा। इन पर कबीर दासजी का प्रभाव अधिक रहा। इनके द्वारा रचित ग्रंथ 'अंग वधू' है। इनके पंथ को परमब्रह्म संप्रदाय कहा जाता है। इनके शिष्यों की संख्या थी।

रैदास या रविदास :

मध्ययुगीन संतो में संत रविदास का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। विद्वान भगवत स्वरूप मिश्र ने गहन अध्ययन के आधार पर इनका जन्म १३९८ ई. और मृत्यु १४४२ ई. इन्होंने स्वामी रामानंद से दीक्षा ली माना जाता है कि ये मीराबाई के गुरु थे। रविदास की वाणी शीर्षक नाम से इनके पद प्रकाशित हुए। गुरु ग्रंथ साहब में इनके ४० पदों का संकलन मिलता है।

गुरुनानक :

इन्हे सिख संप्रदाय में देव उपाधि दी जाती है। गुरुनानक देव का जन्म १४६९ ई. मे तलवण्डी में हुआ था। इनके पिता का नाम कालूचंद्र और माता का नाम तृप्ता था। इनके दो पुत्र थे लक्ष्मीचंद्र और श्री चंद्र। इनके पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित है व अन्य रचनाएँ इस प्रकार है। रहिरास, सोहिला, असा दीवार, जपुजी।

जयदेव :

जयदेव १३ शताब्दी के प्रसिद्ध कवि है। इनके जन्म तिथि और मृत्यु तिथि विषयक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें उड़ीसा राज्य के निवासी मानते है। कुछ विद्वानों का कहना है कि ये बंगाल के थे। जयदेव राजा लक्ष्मण सेन के राज कवि थे। कबीरदासजी ने अपने कई पदों में जयदेव का नाम आदर से लिया है, गुरु ग्रंथ साहब में जयदेव के दो पद संकलित है।

अन्य कवि व उनकी रचनाएँ :

कवि	**रचनाएँ**
हरिदास निरंजनी	ब्रह्म स्तुती, अष्टपदी, जोग ग्रंथ हंस प्रबोध ग्रंथ, निरपश्रमूल, पूजा योग ग्रंथ समाधि योग ग्रंथ
मलूकदास	ज्ञानबोध, रतनखान, भक्त वच्छावली भक्ति विवेक, ज्ञान परोधि, बारह खड़ी, अवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रवुचरित, विभव सुखसागर, स्फूट पद
सुंदरदास धर्मदास	ज्ञान समुद्र, सुंदर विलास कबीर की रचनाओं का बीजक में संकलन धर्मदास द्वार हुआ
सींगा	सींगाजी का दृढ़ उपदेश, सींगाजी का आत्मध्यान, सींगाजी का दोष बोध, सींगाजी का नरद, सींगाजी का शरद, सींगाजी की वाणी सींगाजी की वाणावली, सींगाजी का सातवाद, सींगाजी की पंद्रह तिथि सींगाजी का बारह मासा, सींगाजी के भजन।
गुरु अमरदास	सुखमनी, बादन अखरी, बारहमसा
गुरु गोविन्द सिंह	चण्डीशतक (अनुवाद)
रज्जब	छप्पय सब्बंगी
धरणीदास	ओमप्रकाश सत्य प्रकाश

अन्य संतकवि :

शेख फरीद, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु तेज बहादुर, धरणीदास बावरी साहिबा, लालदास, बाबा लालदास, संत पीपा, संत सेन, संत धन्ना, संत सदंना, संत बेबी, जन्मनाथ, आनंद धन पलदूदास आदि।

७.५ संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

संत काव्य सामाजिक चेतना का काव्य है, समाज सुधार का काव्य है। संतो की प्रमुख प्रेरणा, ज्ञान और भक्ति का योग है जो रहस्यवाद और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को सुदृढ़ करता है। संत काव्य धारा की विस्तृतता केवल काव्यानंद के लिए नहीं है। यह समाज को राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आचरण का ज्ञान देती है। इस प्रकार चिन्तन वादी विचारधारा का अनुसरण करते हुए सभी संत कवियों के ने अपनी अपनी शैली में महाज्ञान वादी विचारों को साहित्य में पिरोया और समाज को अंधकार रूपी विचारो से सदाचार रूपी प्रकाश में लेकर आये। संत काव्यधार के अध्ययन से हम निम्नलिखित प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकते है।

समाज सुधार की भावना :

मध्य भक्तिकालीन परिवेश के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय की सामाजिक जीवन व्यवस्था, धार्मिक प्रयोग वदिता किस प्रकार से लोकजीवन में प्रचलित था। समाज में भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रयत्न और प्रारंभ संत कवियो द्वारा हुआ यह उन्होने जन जीवन में मानसिक परिवर्तन, मानवतावाद, सदाचार, दलितोद्धार, दार्शनिकता का निरुपण, पूजा अर्चना आदि क्षेत्रो में जन-भाषा का प्रयोग कर समाज सुधार भावना को प्रोत्साहित किया संत वह महापुरुष थे जिन्होने लोक कल्याण के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उनका सामाजिक धार्मिक ज्ञान, उनके कर्म और भक्ति और साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत है जो आज भी साहित्य रूपी भंडार से, जीवन और भक्ति का ज्ञान हमे दे रहा है।

मूर्ति पूजा का विरोध :

ज्ञानाक्षयी काव्यधारा रूढियों आडंबरो, अंधविश्वासों का डटकर विरोध किया है। निर्गुण विचारधारा में मूर्तिपूजा और धर्म की आड़ में हो रही हिंसा और अन्याय का विरोध कर सदाचार और समानता की भावना को जन जन के सम्मुख प्रस्तुत किया, व्रत, रोजा, तीर्थ, विधि विधान को अवांछनीय मानकर वास्तविक धर्म को आचरण में लाने की बात कही। संतवादी काव्य ने राजा से रंक और ब्राह्मण से शुद्र तक सभी को समाज में एक स्तर का मानकर समानता स्थापित करने का प्रयास किया। विभिन्न संतो ने अपनी वाणी में इस प्रकार धार्मिक आडम्बर और मूर्ति पूजा का विरोध किया है।

गुरु नानक देव :

१) "पूजि सिला तीरथ बनवास, भरमत डोलत भये उडाया।"
मनि मैले सूचा किड होई, साचि मिलै पावै पति सोई।

२) कबीरदासजी
पत्थर पूजै हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते वह चाकी भली, पीस खाय संसार।

३) मूँड मुडाए हरि मिलै, सब कोई लेहि मुँडाय
बार बार के मूँड़ते, भेड़ वैकुंठ न जाय।।

माया के प्रति सचेतता :

संत कवियों ने माया को आत्मा से परमात्मा से मिलने के रास्ते में सबसे बड़ा गतिरोध माना। माया आत्मा को मलीन करती है। सदाचार के पद को भ्रष्ट कर देती है। कबीरदासजी तो

माया को महाठगिनी मानते हुए कहते है - "माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देळ संत रविदास माया से बचने का एक ही उपाय सुझाते हुए राम नाम की भक्ति का उपदेश देते है।"

'रे मन राम नाम संभारि।
माया के भ्रमि कहाँ मूल्यों, जाहिगौ कर झारि।'

जाति प्रथा का विरोध :

मध्य कालीन भारतीय समाज वर्ग-भेद की भावना से त्रस्त था। जाति और जन्म के आधार पर समाज कई भागों में बँट गया था। समाज को इस भयंकर समस्या से उभारने का कार्य संत कवियो द्वारा हुआ। संत कबीर का निर्भिक और अक्खड़ स्वभाव हमेशा सदाचार और सत्य के आगे सक्षम रूप लिए खड़ा रहा। उन्होने संसार के सभी मनुष्यों की उत्पति एक ही ज्योति से मानी और जाति प्रथा का डटकर विरोध करते हुए कहा है।

एकै पवन एक ही पानी, करी रसोई न्यारी जानी।
मानी तूँ माटी ले पोती, लागी कहाँ कहाँ धूँ छोती।।

अंधविश्वास व वाह्याडंबर का विरोध :

मध्यकालीन समाज की धार्मिक अवस्था अंधविश्वास और वाह्याडंबरों से परिपूर्ण थी। वैदिक धर्म में यज्ञ अनुष्ठान प्रचूर मात्रा में होते थे यह कर्म काण्ड केवल ब्राह्मण वर्ग द्वारा कराये जाते थे। सामान्य जनता को बल, उत्साह, एश्वर्य और मोक्ष का लालच देकर मन माना धन दक्षिणा के रुप में लिया जाता था। पाप और पुण्य की व्याख्या कर जन सामान्य को मुर्ख बनाया जाता था।

संत कवियों ने इस प्रकार के सभी कर्मकाण्ड यज्ञ, तीर्थ जप-तप, माला फेरना, मूर्ति पूजा, व्रत, प्रवास सेवा आदि का विरोध कर जन जन को समझाते हुए कहा -

"क्या जप क्या तप संयमी क्या व्रत क्या इस्नान।
जब लग जुक्ति न जानियै गाव भक्ति भगवान।।"

"रोजा धरै निवाजु गुंजारै, कलमा मिस्त न होई।
सत्तर काबा घर ही भीतर जे करि जानै कोई।।"

संत काव्य में मूर्ति पूजा का डटकर विरोध हुआ है -

"हम भी पाहन पुजते, होते रन के रोझ।
सतगुरु की कृपा भई, डारया सिर थै बोझ।"

इसी प्रकार संत कवियों का मानना है कि सिर के केश निकालने से कोई साधू पंडित नहीं बनता है और न ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

"कैसौ कहा बिगाडिया जे मूड़े सौ बार।
मन कौ न काहे मूड़िए, जामै विषय विकार।"

भक्ति निरुपण :

संत कवियों का मार्ग कर्मभूमि या और उद्देश्य सामाजिक एकता और जन -जन के ह्रदय में प्रेम और क्षृद्रा का तत्व एक दूसरे के प्रति हो इसी आधार पर संत कवियों में अनुभूति पक्ष की प्रधानता रही है। संत कवियों का ज्ञान और निर्गुण ब्रह्म अवतार वाद और मूर्तिपूजा अस्वीकार करता है। संतो की भक्ति परब्रह्म परमेश्वर क भक्ति है। संतो की भक्ति आत्मा से परमात्मा का मिलन मार्ग है जो आध्यात्मिक दिशा को सुनिश्चित करता है। साथ ही क्योंकि भक्ति ह्रदय की युति है। जो ईश्वर का सामीप्य प्राप्त कर आनंद शांति, मोक्ष की और उन्मुख होती इसीलिए संत कवियों ने निर्गुण भक्ति को निष्कामना भक्ति माना और इस प्रकार शब्दों में प्रतिबद्ध किया है।

"अकश कहानी प्रेम की कछू कही न जाय।
गूंगे केरी सरकरा, खाए और मुसकाय।।"

सदगुरु की महिमा :

संत कवियों ने परब्रह्म ईश्वर के मार्ग के साक्षात्कार के लिए सद्गुरु का होना आवश्यक माना है। संत कवियों का मानना है यदि गुरु की कृपा हो तो शिष्य संसार के बंधनों से मुक्ति पा सकता है। संत कवियों ने गुरु को ज्ञान का अपार सागर माना और एरु ज्ञान की मूर्ति है। कृपा के सागर और गुरु स्वयं परब्रह्म परमेश्वर है। गुरु शिष्य को उपदेश के द्वारा हर शंका का निरासन करता है, और जीवन आनंद की शाश्वती गुरु की कृपा से ही होती है इसीलिए गुरु को हमेशा स्मरण में रखना चाहिए। संत कवियों ने गुरु की महिमा का गान इस प्रकार किया है -

"परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारे गुरुदेव।
घट घट उपदेश दे, सुन्दर पावै पद।।"

अंतकरण में विचारों की शुद्धि करने वाले गुरु ही है। भ्रम, दुःखों का नाश कर जीवन में ज्ञान रूपी प्रकाश गुरु से ही मिलता है।

"गुरु तिन ज्ञान नहीं, गुरु बिन ध्यान नहीं
गुरु बिन आत्मा विचार न लहतु है।"

"गुरु बिन बाट नहीं, कौडा बिन हाट नाहिं।
सुंदर प्रकट लोक वेद थौ कहतु है।"

नारी के प्रति दृष्टिकोण :

सभी संत वैवाहिक जीवन में बंधे रहे। नारी के प्रति संतकाव्य वैचारिक दृष्टिकोण अपनाता है। प्रतिव्रता नारी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते है और नारी को मायावीनी मान कनक और कामिनि को मोक्ष के रास्ते का सबसे बड़ा बंधन मानते है। कबीर कहते है।

"नारी की झाई परत, अंधा होत भुजंग।
कबिरा जिन की कहा गति नित नारी संग।।"

"पतिवरता मैलीभली काली कचील कुरुप।
पतिवरता के रुप पै वारी कोटि स्वरूप।।"

munotes.in

संत काव्य में राम :

संत कवियों के राम साकार मुर्ति नहीं निराकार ब्रह्म रुप है। लेकिन ईश्वर के नाम की महत्ता को संत कवि स्वीकार करते है। तुलसीदास के राम सकार मूर्ति रूप है लेकिन कबीर के राम अन्तर आत्मा में निहित परब्रह्म है दोनो राम एक जैसे, नहीं है। लेकिन उपासक के मन को आनंद और शांति दोनों राम बराबर देते है। कबीर के राम निर्गुण राम कि अनुभूति राम नाम के ध्यान मात्र से हो जाती है। कबीर के राम भाव गम्य है। वे श्री राम दशरथ के पुत्र है यह भी स्वीकार नहीं करते -

"दशरथ सुत तिहु लोक बखाना
राम नाम का मर हम आना।।"

अवतार वाद और बहुदेव वाद का विरोध:

संत कवि अवतार वाद और बहुदेव वाद का विरोध करते है क्योंकि इनकी भक्ति भावना ईश्वर के स्वरूप को स्वीकार नहीं करती तो अवतार को कैसे मान सकती है। संत कवि एकेश्वरवाद पर विश्वास करते है। ईश्वर परब्रह्म है और हर एक प्राणी की आत्मा में निहित है। उसके स्मरण मात्र से प्राणि का कल्याण हो सकता है। इस संबंध में महत्वपूर्ण लेख हमे कबीर पुर्नपाठ / पुर्नमूल्यांकन संत परमानंद श्रीवास्तव में मिलता है जो इस प्रकार है - "उन्होंने समस्त व्रतो, उपवासों और तीर्थो को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकार भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान सम्मान की व्यवस्था कर जाने को उन्होंने बेकार परिश्रम समजा। उन्होंने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति लगत को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है और कोई मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन, व्रत भी नहीं, मुहर्रम भी नहीं, पूजा भी नहीं, नमाज भी नहीं हज भी नहीं, तीर्थ भी नहीं।"

"सहजो सुमरिन कीजिये हिरदै माहि छिपाई।
होठ होठ सूं ना हिलै सकै नहीं कोई पाई।।"

"मो को कहाँ ढूँढ़े बदे मै तो तैरे पास में।
ना मैं देवन, ना मैं मस्जिद, न कावे कैलास में।।"

प्रेम का महत्व :

प्रेम का महत्व सूफी मत में अधिक परिलक्षित होता हैं । संत कवियों ने परमात्मा को प्रियतम और स्वयं को प्रियतमा के रूप में प्रस्तुत कर प्रेम की महिमा का गान किया । क्योंकि संत कवियों ने शास्त्रानुमत ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की सराहना की प्रेम से ही मानव मानव को जान सकता है उसका आदर करता है । प्रेम से सदाचार और सद्भावना समाज में अपनी सर्वोपरि जगह बनाती है ।

"जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम ।
ते नर इस संसार में, उपजि बये बेकाम ।।"

रहस्यवादी हस्तियाँ :

ज्ञानमार्गी संत कवि अपने अथाह ज्ञान से निराकार ईश्वर का अनुकरण कर आत्मा से परमात्मा के मिलन का अद्‌भुत प्रदर्शन किया और इसी भाव को रहस्यवादी कहा गया है । रहस्यवाद के पहले चरण में आत्मा परमात्मा की और आकर्षित होती है । दूसरे चरण में यह आकर्षण बढ़ता है और तीसरे चरण में आत्मा परमात्मा के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है । रहस्यवाद को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रकार शब्द बद्ध किया है । "आत्मा परमात्मा का जो अभेद है तथा जो ब्रह्मोन्मुखी प्रवृत्ति है, साधन के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, काव्य में उसे ही रहस्यवाद कहते हैं ।" आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है तो निष्कर्षतः आत्मा परमात्मा एक ही है उनके बीच मोह, माया, विकार का नाश होते ही आत्मा परमात्मा का मिलन हो जाता है । इस संबंध में रैदास कहते हैं ।

"सब में हरि है, हरि में सब है, हरि अपनी जिन जाना ।
साखी नहीं और कोई दूसरा जानन हार सयाना ।।"

"जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्यौ गियानी ।।"

अद्वैतवाद :-

समाज चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय संतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । सांसारिक जीवन का एक-एक तत्त्व स्वयं जीवन क्षण भंगुर करता है । सदाचार के पद को भ्रष्ट कर देता है । सब में मानव फिर भी सर्वोत्कृष्ट ही संत ज्ञान का अपार भंडार है वे अपने ज्ञान की शक्ति से मानव और समाज का समुचित विकास की पूर्णता की कामना करता है । संतो की साधना में ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग की पूर्णता के साथ राज योग, हठयोग, मंत्रयोग का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग हुआ है । इस प्रकार सभी संतों ने मध्यवर्ती सहज मार्ग को अपनाया और विश्व कल्याण की भावना को शिरोधार्य रखा इसीलिए शंकराचार्य के अद्वैतवाद का सिद्धांत संतो ने सहृदय से स्वीकार कर आज साहित्य की अमूल्य देणगी बन गई । जिसमें आत्मा और परमात्मा के मध्य केवल एक माया का आवरण है जिसे ईश्वर की उपासना, आराधना से हटाया जा सकता है ।

"पावक रूपी सांइयां, सब घटा रहा समाय ।
चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझ बुझ जाय ।।"

दार्शनिक दृष्टि :-

संपूर्ण हिन्दी संत साहित्य दार्शनिक काव्य है । सभी संत सारग्राही ये उन्होंने शुद्ध दार्शनिक चिन्तन के विचारों की आत्मानुभूति के स्तर पर आत्मसात किया और सभी संतों का एक ही मत था । सद्‌गुरु के मिलने से ही मानव का उद्धार होता है उसे मुक्ति प्राप्त होती है । संतो का दर्शन शास्त्रीय दृष्टिकोण एक मात्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है यह विचार वेदों, उपनिषदों और दार्शनिक विचारों के अनुरूप ही है । कबीर कहते हैं ।

"कहँ कबीर विचार करि, जिन कोऊ खोजे दूरि ।
ध्यान धरौ मन शुद्धि करि, राम रह्या मरि पूरि ।।" (कबीर बीज--)

कला पक्ष :-

सभी संत कवि अधिकांशतः निम्न वर्ग से संबद्ध थे, पांडित्य, प्रगाढ़ ज्ञान, संस्कृत भाषा या काव्य की शिक्षा, दीक्षा के कोई अवसर इन्हें प्राप्त नहीं हुए । सभी संत कवियों का भाव वादी दृष्टिकोण था । इनका प्रयोजन साहित्य रचना न होकर नव समाज रचना या इसीलिए इनका ध्यान कला पक्ष की ओर बंधित नहीं हुआ । भाषा और व्याकरण इनके साहित्य में लाचार कभी नहीं हुई, कभी सहजता से कभी कुशलता से जैसा चाहा वैसे भाषा का प्रयोग किया ।

भाषा :-

संत कवियों ने अपनी बोलचाल की भाषा का प्रयोग काव्य कला के लिए किया जो लोक जीवन की सादगी समेटे हुए थी । क्योंकि संत काव्य समाज सुधार का काव्य है । भाषा भी जन जन को परिचित हो ऐसी थी । संत कवियों ने ब्रज, अवधि, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अरबी, फारसी, उर्दु, सिंधी, निमाडी आदि शब्दावली का प्रयोग किया । कबीर पढ़े लिखे नहीं थे इसीलिए उनकी भाषा का निर्णय करना बहुत कठिन कार्य है उनकी भाषा में अक्खड़ता है, विद्वान इसे गँवारू भाषा कहते हैं । लेकिन सत्य यही है कि संतकवियों की भाषा जनभाषा और जनशक्ति है जिसमें नीहित भाव आज भी लोक व्यवहारिक जीवन को जागृत करती है ।

"का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच ।
काम जो आवे कामरी, का लै करै कमाच ।।"

७.६ सारांश

संत काव्य परम्परा भक्ति भावना से प्रेरित काव्य है लेकिन संत काव्य की आसक्ति ईष्ट की ओर न होकर समाज के प्रति थी। क्योंकि तत्कालीन समय का समाज धर्म, जाति, विपृश्यता से जूझ रहा था। समाज को आवश्यकता थी। मार्गदर्शक की और सहिष्णुता की संत कवि मार्गदर्शक के रूप में सामने आये। अपनी शैली में काव्य रचना कर समाज को हितार्थ और जन-जन के पुरूषार्थ, स्वाभिमान आदि आवश्यकताओं पर भर दिया। संतो की भाषा लोक-भाषा थी इसका उद्देश्य यही था कि संतो की वाणी जन-जन को समझे और समाज उन्हें सुनकर उसका अनुसरण करे उसे उन विचारों को अपनाये।

७.७ बोध प्रश्न या दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) संत शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए संत परम्परा का परिचय दीजिए।
२) संत काव्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

७.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) संत शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है ?
२) दादू दयाल का संबंध किस राज्य से है ?

munotes.in

३) स्वामी रामानंदजी ने कौनसे संप्रदाय की स्थापना की ?
४) 'रोहिदास' कौनसे संत कवि की रचना है ?
५) संत नामदेव ने हिन्दी के साथ अन्य कौनसी भाषा में भजन गान करते थे ?

७.९ संदर्भ पुस्तकें

१) संत काव्य संग्रह - परशुराम चतुर्वेदी
२) संत काव्य - डॉ. प्रवेश विरमाणी
३) हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य - डॉ. प्रभाकर माचवे
४) हिन्दी काव्यधारा - राहुल सांकृत्यायन
५) मध्यकालीन हिन्दी काव्यभाषा - रामस्वरूप चतुर्वेदी

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-८

सूफी काव्य : परम्परा एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा :

८.० इकाई का उद्देश्य
८.१ प्रस्तावना
८.२ सूफी शब्द का अर्थ
८.३ सूफी मत एवं संप्रदाय
 ८.३.१ चिश्ती संप्रदाय
 ८.३.२ कादिरी सम्प्रदाय
 ८.३.३ सुहरावर्दी सम्प्रदाय
 ८.३.४ नक्श बंदी सम्प्रदाय
८.४ सूफी कवि
८.५ सूफी काव्य की विशेषताएँ
८.६ सारांश
८.७ बोध प्रश्न
८.८ लघुत्तरीय प्रश्न
८.९ संदर्भ पुस्तकें

८.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत सूफी काव्यधारा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन पश्चात् विद्यार्थी

- सूफी शब्द का अर्थ समझ सकेंगे।
- सूफी मत की अवधारणा को विस्तृत जान सकेंगे।
- विभिन्न सूफी सम्प्रदायों का अध्ययन कर सकेंगे।
- सूफी काव्य की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

८.१ प्रस्तावना

इस इकाई में हम सूफी काव्य का अध्ययन कर रहे हैं जिसे प्रेम मार्गी काव्य धारा भी कहा जाता है। और सूफीयों को प्रेम की पीर के गायक कहा जाता है जिसके द्वारा मानव के बाहरी आवरण पर नहीं मन और कर्म की शुद्धता पर बल देती है उन्हें पवित्र करने का कार्य

munotes.in

सूफीकाव्य करता है। आत्मा का साक्षात्कार परमात्मा से करा देता है यही कारण है कि सूफी काव्य मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रति सजग दृष्टि रखता है।

८.२ सूफी शब्द का अर्थ

विद्वानों के अनुसार सूफी शब्द की उत्पत्ति अनेक शब्दों से मानी गयी हैं । यह शब्द है सुफ्फा, सुफ, सफ, सफा - 'सफा' का शाब्दिक अर्थ है पवित्र । सभी सूफी कवि मन, कर्म, वचन से पवित्र थे और आचरण की शुद्धता उनमें व्याप्त थी इसीलिए सफा शब्द का रूपान्तर सूफी में कर इन कवियों को सूफी कहा गया । इस संबंध में हुजेरीजी ने कहा हैं - मूलतः सफा शब्द से ही सूफी शब्द बना है - जो लोग पवित्र थे - वे 'सूफी' कहलाये ।[१]

१. **सुफ्फा :-** तीर्थ क्षेत्र मदीना में मस्जिद के सामने सफ्फा नामक चबुतरा था वहाँ हजरत मुहम्मदजी अधिकांश समय परमात्मा में लीन रह व्यतीत करते थे । उनके साथ अन्य संत भी अपना समय परमात्मा की आराधना करते हुए वही व्यतीत करते थे । इस प्रकार सुफ्फा चबुतरे पर बैठने वाले संत सूफी कहलाये।

२. **सफ :-** 'सफ' का शाब्दिक अर्थ है प्रथम अर्थात सबसे आगे या अपने कर्म और सदाचार से अपना एक अलग स्थान बनानेवाले समाज में विशिष्ट स्थान पर जो हैं उन्हें सफ अथवा सूफी कहा गया।

३. **सोफिया :-** सोफिया शब्द का अर्थ होता है 'ज्ञान' सभी कवियों ने अपने ज्ञान और तपस्या से जो मुकाम हासिल किया और समाज को नयी दिशा दी इसीलिए इन्हें सूफी कहा गया ।

४. **सुफाह :-** गियामुल लुगात नामक ग्रंथ में सुफाह शब्द से सूफी शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है जिसमें कहा गया है कि जाहीलिया काल में एक ऐसी प्रजाति जिसका वास्तव्य अरब देश में था जो सांसारिकता से अलग मक्का के देवालय में सेवा-भाव में लगे हुए थे ।[२]

सोफिस्ता :-

यह ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है वैराग्यवादी अर्थात जिसने सांसारिकता से वैराग्य ले लिया है और आध्यात्म और परमात्मा की तरफ उन्मुख हुआ हो । इसी कारणवश सोफिस्ता सूफी कहलाये ।

सूफ :-

अनेक विद्वानो ने सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से मानी है जिसका अर्थ है 'ऊन'। इस धारणा के अनुसार मोटे ऊन के कपड़े पहनकर परमात्मा की भक्ति में लीन रहने वाले सूफी कहलाये । सूफ शब्द के संबंध में विचारक परशुराम चतुर्वेदी जी ने लिखा है - 'सूफ एवं सूफी के बीच सीधा शब्द साम्य दिखता है ----- ऐसे लोग अपने इन वस्त्रों के पहनावे और व्यवहार द्वारा अपना सादा जीवन तथा स्वेच्छा दारिद्र्य भी प्रदर्शित करते थे । ये लोग परमेश्वर की उपलब्धि को ही अपना एक मात्र ध्येय मानते थे।'

जायसी ग्रंथावली में सूफी मत की व्याख्या आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रकार दी है - "आरंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे, जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले

चलते थे, दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे । ऊन के कंबल लपेटे रहते थे । कुछ दिनों तक तो इस्लाम की साधारण धर्म शिक्षा के पालन में विशेष त्याग और आग्रह के अतिरिक्त उनमें कोई नई बात या विलक्षणता नहीं दिखाई पड़ती थी । पर ज्यों ज्यों ये साधना के मानसिक पक्ष की ओर अधिक प्रवृत्त होते गए, त्यों त्यों इस्लाम के बाह्य विधानों से उदासीन होते गए । फिर तो धीरे धीरे अंतःकरण की पवित्रता और हृदय के प्रेम को मुख्य कहने लगे और बाहरी बातों को आडंबर।"

निम्न लिखित सभी शब्दों के अर्थ और विद्वानों की मान्यता सूफ शब्द से ही सूफी शब्द की व्युत्पत्ति मानते है । इन विद्वानों में अवूनअल सर्राज, लुई मासियो, अलबरूनी, ब्राउन, नोएल्दके, अलकलावाघी, मारगोलिय, आरबरी, निकल्सन, इब्जरकदुन अनेक पाश्चात्य विद्वान और मुस्लिम आलिद भी सूफ (ऊन) शब्द से सहमत है। इस विषय में अल सर्राज ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है - 'ऊन का उपयोग सन्त, साधक व पैगम्बर लोग करते आये है। विभिन्न हसीदों और विवरणों से भी यह तथ्य सिद्ध हो चुका है। ऊनी लिबास धारण करनेवाले को दृष्टि में और ईश्वर के चिन्तन में एकान्तिक जीवन व्यतीत करनेवाले साधको को दृष्टि में रखकर यदि उन्हें सूफी कहा गया तो इसमें कोई असंगति नहीं मालूम होती।' अल सर्राज और अन्य अधिकांश विद्वानों का यही मत है उस समय के संतो ने चमक-धमक और अन्य साज-सजावट को छोड़ ऊनी वस्त्र धारण किए और सदाचार - सादगी युक्त जीवन जिया।

८.३ सूफी मत एवं सम्प्रदाय

सूफी मत के उद्‌भव के विषय में सूफी शब्द की भाँति ही अनेक विभिन्न विचार विद्वानों ने व्यक्त किये है । सूफी मत प्रमुखतः प्रेम की भावना को उद्‌बोधित करता है। सूफी कवियों ने सदियों से चली आ रही रूढ़ियों और परम्पराओं का डटकर विरोध किया और स्वछंद विचारों को अनुग्रह कर अनेक कट्‌टरपंथियों के दुश्मन बने यही कारण है कि सूफीयों के सिद्धांत किसी विशिष्ट सम्प्रदाय या पूर्वाग्रह के लिए न होकर मानवता वादी दृष्टिकोण के लिए समर्पित था । जो उदारता, सहानुभूति और समाज में एकता प्रतिस्थापित करने में कारगर सिद्ध हुआ।

भारत में सूफी मत के आगमन का संबंध इस्लाम धर्म के साथ जोड़ा जाता है । क्योंकि सूफी सम्प्रदाय जब उदयोन्मुख था तब अधिकांश सूफी कवि इस्लामिक थे । लेकिन विद्वानों के मतानुसार भारत में पहले इस्लाम धर्म आया और बाद में सूफी मत का आविर्भाव हुआ । सूफी मत के उद्‌भव के विषय में कुछ विद्वानों के मतानुसार सूफीमत का आविर्भाव मानीमत, नव अफलातूनी मत, जरतुस्मत, बुद्धमत एवं भारतीय वेदांत का परिणाम है यद्यपि अनेक मुस्लिम लेखको ने इसका विरोध किया है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि सूफीमत के प्रमुख प्रचारको ने इन सभी मान्यताओं का समावेश कर लिया था, फलतः इसका स्वरूप कुछ न कुछ समन्वयात्मक हो गया था । उनकी समन्वयात्मकता ने जितना प्रभाव भारत पर डाला उतना मुस्लिम शासकों की बलपूर्वक धर्मान्तरित करने की नीति भी नहीं डाला।

निकन्सन ने सूफीमत के अन्तर्गत विभिन्न मतों का उल्लेख किया है :-

१. सूफी पर वे क्रियाएँ निष्पन्न होती है जिन्हें केवल ईश्वर जानता है, सूफी सदैव ईश्वर के साथ रहता है ।
२. सूफीमत पूर्णतः अनुशासित मत है ।

३. सूफी किसी पर नियंत्रण नही रखता । वह स्वयं भी किसी से नियंत्रित नहीं होता ।

४. सूफी मत एक ऐसी प्रणाली नहीं है, जो विधि - विधानों अथवा ज्ञान विज्ञान पर निर्भर हो । वह केवल नैतिकता को आधार मानता है ।

५. सूफीमत का अर्थ है - उदारता और स्वतंत्रता । इस मत में स्व का दमन नहीं होता ।

५. सूफियो का कहना है :- ईश्वर तुम्हारा अहम नष्ट करता है और तुम्हें अपने में बसाता है ।

६. सूफी जिस वक्त बोलता है तो उसका कथन वास्तविकता को प्रकट करता है अर्थात वह कोई ऐसी बात नहीं करता जो स्वयं उसमें न हो और जब वह मौन होता है तो जो कहता है सब सत्य कहता है और जब चुप होता है तो वह चिन्तन में डूबा रहता हैं ।

७. तसब्बुफ की हकीकत तो बन्दे के अहं का नाश चाहती है अर्थात तसब्बुफ समस्त भोग – विलासों को समाप्त करने का नाम हैं ।

८. सूफीमत मनुष्य और ईश्वर के मध्य किसी को सहन नहीं करता ।

इस प्रकार सभी मुद्दो को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि सूफीमत का आविर्भाव किसी एक भाव - विचार की उपज नहीं है । उस पर विभिन्न दर्शनों और विचारधाराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है । सूफीयों का मूल स्तंभ इस्लाम, इस्लाम की कट्टरता और शामी परम्पराओं बौद्ध धर्म एवं भारतीय वेदान्त का प्रभाव, नव अफलातुनी मत का प्रभाव, नास्तिक मत का प्रभाव, मानीमत व अद्वैतवाद का प्रभाव रहा हैं ।

सूफीयों का उद्देश्य केवल इन्द्रियों को वश में कर जीवन को सुचारू बनाना नहीं था बल्कि परमेश्वर की निकटता पाना भी था । सूफी ईश्वर भक्ति में स्वयं इतना लीन हो जाता है कि स्वयं में और चारों तरफ केवल ईश्वर का अनुभव करता है । सूफी मत की उन्नति और प्रचार के संदर्भ में यज्ञ दत्त शर्मा ने कहा है - "सूफी धर्म का प्रचार भारत में पूर्णतया शान्ति और अहिंसा के सिद्धांतो पर चलकर हुआ । यह इस्लाम का वह रूप नहीं था जो तलवार की धार पर चलकर या फिर रक्त की सरिता में बहकर भारत भूमि में आया है । प्रेम, आत्मीयता, सरलता और सचरित्रता के सहारे यह विचारधारा भारत में फैली और इससे इस्लाम के प्रसार में जोर मिला। यह स्थायी योग था जिसने जनता के दिलों में घर किया किसी के भय या आतंक के कारण इसका प्रसार नहीं हुआ ।"

भारत में सूफी मत के निम्नलिखित चार सम्प्रदाय अधिक प्रचलित है :-

८.३.१ चिश्ती सम्प्रदाय :

भारत में चिश्ती सम्प्रदाय सूफीयों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा 'इसहाक शामी' माने जाते है ।

कहा जाता है कि अबू इसहाक सामी एशिया माइनर से आकर चिश्त (खुरासान) में रहने लगे...., इसीलिए इस सम्प्रदाय को लोग चिश्ती कहने लगे ।[१]

लेकिन अधिकांश विद्वान ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती को चिश्ती सम्प्रदाय का प्रणेता मानते है । यह सन् ११९० में भारत आये तभी से भारत में चिश्ती सम्प्रदाय का प्रवेश और प्रचार प्रसार हुआ ।

munotes.in

इस सम्प्रदाय का साधक दिन रात इल्लाल्ला का उच्चारण करता था । अल्पमात्रा में भोजन कर ४० दिनों तक एक कमरे में बंद रहता था । यही उसकी साधना पूर्ति मानी जाती थी । वैसे तो इस्लाम धर्म में संगीत निशिद्ध है लेकिन चिश्ती सम्प्रदाय में संगीत प्रमुख माना गया इस सम्प्रदाय के सूफी रंगीन वस्त्र धारण करते थे और लम्बे केश रखते थे । भारत में इस सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र राजस्थान के राजा का अजमेर शहर था । भारत में यह सम्प्रदाय अत्यधिक प्रचलित रहा इस संबंध में युसुफ हुसैन ने कहा है :-

"भारत में चिश्ती सम्प्रदाय की असाधारण सफलता का मुख्य कारण यह था कि इस सम्प्रदाय के संत भारत की लोक कथाओं और रीतियों को आत्मसात करने की कला जानते थे।" भारत में शेखु सलीम चिश्ती इस सम्प्रदाय के प्रमुख संत माने जाते है । आगे चलकर इस सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय भी हुए । इनके नाम थे फरीदी औलिया और साबिरी काफी फले - फुले ।[२]

८.३.२ कादिरी सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक अब्दुल कादिर अल-जीलाली माने जाते है जो प्रतिभा सम्पन्न और सरल स्वभाव, शालीन व्यक्तित्व के धनी थे । कादिरी सम्प्रदाय का प्रमुख लक्षण प्रेम और भाव की चरम सीमा थी । इस्लाम का प्रचार प्रसार भी इसी सम्प्रदाय द्वारा माना जाता है ।

भारत में इस सम्प्रदाय का उत्थान मुहम्मद गौस द्वारा हुआ माना जाता है इनका प्रमुख केन्द्र सिन्ध था । कादिरी सम्प्रदाय में गुलाब के फूल को बहुत महत्त्व दिया गया है इस फूल को पवित्र माना जाता हैं, साथ ही पैगम्बर का प्रतीक भी माना जाता है । इस सम्प्रदाय को माननेवाले हरे रंग की पगड़ी पहनते थे उनके वस्त्रों में गेरूआ रंग अवश्य होता था । इस सम्प्रदाय के दो उप-सम्प्रदाय रहे - (१) रजाकिया, (२) बहालिया और इस सम्प्रदाय के प्रमुख संत शेख मीर मुहम्मद मियाँ रहे ।

८.३.३ सुहरावर्दी सम्प्रदाय :

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी माने जाते है । भारत में सुहरावर्दी सम्प्रदाय का प्रवेश और प्रचार-प्रसार शिहाबुद्दीन के शिष्यों द्वारा हुआ जो राजस्थान के नागोर नामक नगर में बसे ।

शिहाबुद्दीन ने 'अवारिफूल - मुआरिफ' नामक पुस्तक लिखी । इनके प्रमुख शिष्य जो भारत आये शेख हमीदुद्दीन इन्होंने दो पुस्तके लिखी 'तवलिउश्शम्स लवाइह' ये संगीत प्रेमी थे उनके दूसरे शिष्य बहाउद्दीन जकारिया थे । भारत में इस सम्प्रदाय की प्रगति व प्रचलन का क्षेय जकारिया को ही जाता है । पन्द्रहवीं शताब्दी तक इस सम्प्रदाय ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में अच्छा प्रचार किया । इस सम्प्रदाय वालो ने कई राजाओ को भी अपने धर्म में दीक्षित किया । हैदराबाद का वर्तमान राजवंश भी इस सम्प्रदाय की परम्परा में है । 'मृगावती' के रचयिता 'कुतुबन' इसी सम्प्रदाय के थे ।

इस सम्प्रदाय में नमाज और रोजा रखने पर बल दिया जाता है । गुरू की आज्ञा से पापों का प्रायश्चित करने को इस सम्प्रदाय वाले मुरीद होना कहते है। इस सम्प्रदाय के संत रंगीन कपड़े पहनते थे । रंगीन कपड़े पहनने का उद्देश्य यही था कि परमात्मा ने कई प्रकार के जीव जन्तु बनाये हैं ।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के उप सम्प्रदाय भी आगे चलकर बने जिसमें प्रमुख है :- जलाली, मखदूमी, मीरनशाही, इस्लामइल शाही, दौलत शाही आदि ।

आगे चलकर यह सम्प्रदाय दो भागों में बँट गया । पहला बाशरा और दुसरा बेशारा ।

८.३.४ नक्शबंदी सम्प्रदाय :

चौथा प्रमुख सम्प्रदाय 'नक्शबंदी सम्प्रदाय' है । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा उबैदुल्ला और ख्वाजा बहाउद्दीन माने जाते है ।

भारत में इस सम्प्रदाय का प्रचार ख्वाजा बाकी बिल्लाह बेरंग द्वारा हुआ माना जाता है । इस सम्प्रदाय के नामकरण के विषय में कहा जाता है कि ख्वाजा बहाउद्दीन आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्ध रखनेवाले नक्शे बनाते थे और उन नक्शों मे रंग भरा करते थे इसीलिए यह सम्प्रदाय नक्शबंदी सम्प्रदाय कहलाया ।[३]

इस सम्प्रदाय को मनानेवाले इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे । भारत में इसका प्रचार - प्रसार अहमद फारूकी ने किया । सूफी सम्प्रदायों में नक्शबंदी सम्प्रदाय अत्यंत निर्बल और प्रभाव हीन माना जाता है । जनसाधारण की रुचि इसकी ओर अधिक आकर्षित नहीं हुई । क्योंकि इसके नियम क्लिष्ट और जटिल थे जो एक वर्ग विशेष द्वारा ही अनुग्रहित किये गये।

इस सम्प्रदाय में अफीम का नशा करना, बड़े बाल रखना, नुकीले पत्थरों पर चलना आदि जटिलताओं को ईश्वर की आराधना माना जाता था । इस सम्प्रदाय का यह भी प्रचलन था कि कोई भी अपना बलिदान कर दूसरो का जीवन बढ़ा सकता है ।

सूफी कवि भले ही किसी भी सम्प्रदाय से क्यों न हो परंतु प्रेम उनके साहित्य का और साधना का अभिन्न अंग रहा है । प्रेम सूफी कवियों के अनुभूति के लिए अनुभूति है, आलम्बन है, परमात्मा और ईश्वर एक पहुँचने का मार्ग है ।

सूफी मत में आचरण और चिन्तन दोनों की प्रधानता बराबरी से रही । भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफीयों का भी आगमन हुआ । इसका समय १२वी सदी के अंतिम वर्ष माने जाते है । अनेक सूफी अपने एक विशिष्ट सम्प्रदाय के साथ भारत आये और अपने मत का प्रचार प्रसार किया ।

विद्वानों का कथन है कि अकबर भी वैचारिकतः एक सूफी था । आइने अकबरी में अबुल फजल ने अपने अपने समय के चौदह सूफी संप्रदायों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है :- "चिश्ती, सुहरावर्दी, हबीजी, तफूरी, करर्वी, सकती, जुनेदी, काजरूनी, तूसी, फिरदौसी, जैदी, इयादी, अधमी और हुबेरी ।"

प्रत्येक सूफी किसी न किसी सम्प्रदाय से संबंधित था । भारत देश में प्रमुखतः चार सम्प्रदाय प्रचलित हुए जो इस प्रकार है (१) चिश्ती, (२) कादिरी, (३) सुहरावर्दी, (४) नक्शबंदी इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त सत्तारी और मदारी सम्प्रदाय भी प्रचलित रहे लेकिन इन चार सम्प्रदायों की अपेक्षा कम ।

सूफीयो ने मानवीय दृष्टिकोण को सर्वोपरि रखा । ईश्वर की अभिव्यक्ति भी मानव में ही है और पूर्णता भी इन्हीं सब विचारों से मनुष्य के चार भागों की परिणिति स्वीकार की है ।

नफ्स :- मनुष्य के शरीर में स्थित जड़ तत्व मनुष्य को आलसी बनाते है उसे मोह-माया में जकड़कर रखते है उसे नफ्स कहते हैं ।

रूह :- अर्थात आत्मा और कल्ब अर्थात ह्रदय, आत्मा और ह्रदय जिसके द्वारा साधना की जाती है लेकिन सूफीयों ने रूह और कल्ब का भेद स्पष्ट नहीं किया है । अक्ल जिसका अर्थ है बुद्धि जो चार प्रमुख भागों में चौथा भाग है इस विषय पर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपना मत इन शब्दो में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

नफ्स अथवा जड़ आत्मा, उसे कार्य मे बाधा पहुँचाता है और उसे पाप की ओर ले जाने की चेष्टा करता है, किन्तु रूह अथवा अजड़ आत्मा की ईश्वरीय शक्ति उसके कल्ब अथवा ह्रदय के स्वच्छ दर्पण में परमेश्वर को प्रतिबिम्बित कर देती है और उसका अपने प्रियतम के साथ मिलन हो जाता है ।

सूफी के अनुसार चार जगत है - (१) आलमे जगत - जिसका अर्थ है, भौतिक जगत (२) आलमे मलकूत जिसे चित्र जगत कहते हैं, (३) आलमे जबरुत - जिसका अर्थ है आनंदमय जगत, (४) आलमे लाहत जिसे सत्य जगत या ब्रह्म जगत कहते है इस प्रकार आत्मा, ह्रदय और इन चारो जगत के बीच एक साध्य परिदर्शित होता है । जो साधना के सात सोपानो के रूप में सूफीयों ने प्रस्तुत किये है :- अनुपात, आत्म-संयम, वैराग्य, दारिद्र्य, धैर्य, ईश्वर-विश्वास तथा संतोष इन सभी सोपानों को पार कर साधक इनका अधिकारी बन जाता है। सूफीयों ने साधक की चार अवस्थाएँ मानी है –

१) शरीयत,
२) तरीकत,
३) हकीकत,
४) मारकत

१) शरीयत : इसका संबंध कर्मकान्ड से है, इसके अंतर्गत धर्म ग्रंथो के विधि निषद्, सम्यक् पालन होता है ।

२) तरीकत : इसके अंतर्गत ईश्वर का ध्यान और ह्रदय की शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है जो उपासना कांड के अंतर्गत है ।

३) हकीकत : हकीकत से अभिप्राय सत्य मार्ग का अवलंबन है जो भक्ति और उपासना मार्ग को सुदृढ़ करती है यह ज्ञानकांड कहलाता हैं ।

४) मारफत : जिसका अर्थ है साधना जो कठिन उपवास और मौन व्रत से ईश्वर को प्राप्त करना या साधक को आत्मा परमात्मा में लीन हो जान ।

यह वर्णन तो मानव या साधक के रूप मे है । सूफीयों ने ईश्वर और जगत विषयी पाँच प्रकार के मत प्रस्तुत किये हैं ।

१) ईश्वर जगत में है लेकिन उससे कहीं ज्यादा उच्च है ।
२) ईश्वर और जगत सम परिणाम स्वरूप है ।

३) जगत में ईश्वर सर्वोपरि है जगत ईश्वर से अलग नहीं है ।
४) ईश्वर और जगत पृथक पृथक वस्तुएं है ईश्वर जगत से बाहर हैं ।
५) ईश्वर जगत में लीन नहीं है और जगत से बाहर भी नहीं हैं ।

इस प्रकार ईश्वर जगत के भीतर भी है और बाहर भी है और दोनों में लीन भी हैं । इस प्रकार से सूफी साधक जीव जगत और ईश्वर को ब्रह्म स्वरूप मानते हैं । इन सभी अवस्थाओं पर विचार और गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि सूफीयों का मूल लक्ष्य प्रेम है और वे विभिन्न सिद्धांतो, सम्प्रदायों का आश्रय प्रेम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लेते है इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्लने लिखा है "अतः मूर्तामूर्त सबको उस ब्रह्म का व्यक्ताव्यक्त रूप मानने वाले सूफी यदि उस ब्रह्म की भावना अनंत सौंदर्य और अनंत गुणों से सम्पन्न प्रियतम के रूप में करे तो उनके सिद्धांत में कोई विरोध नहीं आ सकता... सूफी लोग ब्रह्मानंद का वर्णन लौकिक प्रेमानंद के रूप में करते हैं ।"

८.४ सूफी कवि

जैसे कि हम जानते है सूफी काव्य धारा साहित्य को अनेक कवियों ने सजाया संवारा लेकिन सूफी काव्यधारा के प्रथम कवि कौन है इस विषय पर विद्वानो में मत भेद है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल कवि कुतुबन को सूफी काव्य का प्रथम कवि मानते हैं । हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के अनुसार ईश्वरदास सूफी काव्य धारा के सर्वप्रथम कवि है । डॉ. नगेन्द्र ने असाइत को प्रथम सूफी कवि, डॉ. रामकुमार वर्माजी ने मुल्ला दाऊद को सूफी काव्यधारा का सर्वप्रथम कवि माना है। सर्व सम्मति भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है कि चंदायन के रचनाकार मुल्ला दाऊद सूफी काव्य के प्रथम कवि है । सूफी काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्य धारा के प्रचलित कवि और महत्वपूर्ण कवि माने जाते है । उनके द्वारा रचित पद्मावत सूफी काव्यधारा का महत्वपूर्ण काव्य माना जाता है । इसी कारणास्तव जायसी को आधार मान सूफी कवियों को दो भागों में विभाजित किया है ।

i) **जायसी पूर्व प्रेमाख्यानक काव्य**
ii) **जायसी उत्तर प्रेमाख्यानक काव्य**

जायसी पूर्व प्रेमाख्यानक काव्य के प्रमुख कवि है :-

१) मुल्ला दाउद :-

कई विद्वानो ने मुल्ला दाउद को सूफी काव्य धारा का प्रथम कवि माना है । इनकी प्रमुख रचना चन्दायन प्रेमाख्यानक काव्य धारा का दूसरा प्रमुख काव्य है । डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इस ग्रंथ को 'लोर कहा' या लोर कथा माना है लेकिन यह ग्रंथ चन्दायन नाम से प्रचलित है इस ग्रंथ की रचना १३७९ में की गई ।

२) असाइत :-

असाइत कवि की प्रमुख रचना हंसावली है । जिसकी रचना १३७० ई. में हुई थी । यह रचना प्रेमाख्यानक रचनावली में सबसे प्राचीन है इसमें राजस्थान की प्राचीन भाषा का प्रयोग हुआ है ।

३) दामोदर कवि :-

इनके द्वारा लिखित प्रमुख रचना 'लखम सेन पद्मावती कथा' है जो सन १४५९ ई. में रची गई । इसमें काव्यगत दृष्टि से चौपाई, दोहा सोरठा के प्रयोग के साथ राजस्थानी हिन्दी भाषा में सम्पूर्ण ग्रंथ लिखा गया है ।

४. कल्लोल कवि :

इनकी प्रमुख रचना 'ढोला मारू रा दूहा' है । जो १४३० ई. में लिखा गया । यह सम्पूर्ण ग्रंथ दोहो में लिखा गया है। इस ग्रंथ की भाषा राजस्थानी है ।

५. ईश्वरदास :

ईश्वरदासजी ने 'सत्यवती कथा' नामक ग्रंथ की रचना १५०१ ई. में की । इसकी भाषा अवधी है और छंद - दोहा और चौपाई ।

६. कुतुबन :

इनकी प्रमुख रचना मृगावती है, इसका रचनाकाल १५०३ ई. है, यह ग्रंथ भी अवधी भाषा में लिखा गया है। कडवक शैली के साथ दोहा चौपाई में सम्पूर्ण ग्रंथ लिखा गया हैं ।

७. गणपति चंद्र :

इन्होंने 'मधावानल कामकन्दला' रचना सन् १५२७ ई. में लिखी यह प्रेमाख्यानक काव्य है । राजस्थानी भाषा के साथ दोहों का प्रयोग हुआ है ।

८. मलिक मुहम्मद जायसी :

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्यधारा के प्रमुख कवि है । इनकी प्रमुख रचना है 'पद्मावत' । इसका रचना काल १५४० ई. माना जाता है । यह एक रूपक काव्य हैं । इसके पात्र प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं । जायसी की अन्य रचनाएं इस प्रकार है – अखरावट, आखरी कलम, चित्र रेखा, कहरनामा, मसलनामा आदि ।

इसके अतिरिक्त सूफी काव्यधारा के अन्य कवि व रचनाएँ इस प्रकार है :-

कवि	**रचनाएँ**
नन्ददास	रूपमंजरी
उसमान	चित्रावली
शेखनवी	ज्ञानदीप
कासीम शाह	हंस जवाहिर
नूर मोहम्मद	अनुराग बांसुरी इंद्रावती
जान कवि	कथारूप मंजरी
पुहकर कवि	रसरतन
ख्वाजा अहमद	नुरजहाँ
शेख रहीम	प्रेमरस
कवि नसीर	प्रेमदर्पण
न्यामत खाँ 'जान'	कनकावति, कामलता, मधुकर, मालती, कथा - रत्नावती, छीता

munotes.in

८.५ सूफी काव्यधारा की विशेषताएँ

भारतीय समाज धार्मिक कर्मकांडो में जकड़ा हुआ था । वहीं हिन्दु और मुस्लिम धर्म के अलग नियम समाज को दो राहे पर ला रहे थे..., ... सामाजिक सामन्जस्य टूटने की कगार पर था । उस समय निर्गुण भावना ने अंतः साधना पर बल दिया हिन्दु और मुस्लिम बंधु में बेर भावना को कम कर समाज में सामन्जस्य और शुद्ध प्रेम की परिकल्पना को प्रधानता दी ।

सूफी काव्यधारा की विशेषताएँ इस प्रकार है :-

१. प्रेमाख्यानक काव्य :-

इस काव्यधारा को प्रेमाश्रयी काव्यधारा भी कहा जाता है । क्योंकि इस काव्यधारा का मूल प्रेम है जिसे श्रृंगार भी कहा जाता है । अधिकांश सभी सूफी कवियों ने लोक प्रेमकथाओं को अपने काव्य में प्रमुख माना । प्रेम के माध्यम से ही ईश्वर से मिलन का मार्ग मिलता है, वही सूफी कवियो ने भारतीय और विदेशी प्रेम पद्धतियों का वर्णन भी किया है और दोनो पद्धतियों को मिलाकर प्रेम का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । विदेशी प्रेम पद्धति के अंतर्गत फारसी प्रेम में नायक की प्रेम गति अधिक तीव्र हैं वहीं भारतीय प्रेम पद्धति में नायिक अधिक प्रेम विव्हल दिखाई देता है। सूफी कवियों ने लौकिक और अलौकिक दोनों प्रेम साधनाओं का वर्णन किया है वही प्रेम की संयोग और वियोग दो अवस्थाओं में वियोगावस्था का वर्णन अधिक दृष्टिगत होता है ।

२) लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम व्यंजना :

सूफी काव्य धारा में प्रेम कथाओ का वर्णन है और इन्हीं प्रेम कथाओं में अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई हैं । जैसे जायसी कृत पद्मावत में रानी पद्मावती को परमात्मा का प्रतीक माना गया है और रत्न सेन को पद्मावती के प्रति प्रेम लालसा आत्मा से परमात्मा के मिलन की अभिलाषा माना गया है । पद्मावत में एक नहीं कई ऐसे प्रसंग है जो हमें यह सोचने पर बाध्य करते हैं कि पद्मावती परमात्मा का प्रतीक है इसके लिए अन्योक्ति और समासोक्ति का प्रयोग किया गया है अलौकिक तत्व की ओर गहरा संकेत इन पंक्तियों में देखा जा सकता है ।

"जब लागि अहै, पिता कर राजू । खेलि लेहु जौ खेलहु आजु
पुनि सासुर हम गौनब कालि । कित हम कित यह सरवर पालि ।"

३. सूफी काव्य में रहस्यवाद :

वैसे तो भारत देश में भक्ति का स्वरूप रहस्यमयी नहीं था । लेकिन सूफी काव्यधारा में रहस्यात्मक प्रवृत्ति का विस्तार से वर्णन हुआ और यह वर्णन रहस्य के दोनो भेद साधनात्मक और भावनात्मक रीति से हुआ है । इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं ---

"योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है । यह अनेक अप्राकृतिक और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार कराने की आशा देता है । तंत्र और रसायन साधनात्मक रहस्यवाद की ही श्रेणियाँ है, जैसे भूत-प्रेत की सत्ता मानकर चलने वाली भावना स्थूल रहस्यवाद के अंतर्गत होगी। अद्वैतवाद ब्रह्मवाद को लेकर चलने वाली भावना से सूक्ष्म और उच्च कोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है ।"

सूफी काव्यधारा में रहस्यात्मक माधुर्य, व्यापक स्तर पर दिखाई देता है । खासकर सूफी प्रेमाख्यानक काव्य में इन रूढियों को विस्तार से देखा जा सकता है । सूफीयों के रहस्यवाद विरह की व्यंजना से बँधा रहा इस भावना का निर्गुण संतो के साथ-साथ हठयोगियों, रसायनियों, तांत्रिकों पर भी प्रभाव दिखाई देता है ।

४. मसनवी शैली का प्रयोग :

सूफी काव्यधारा के अधिकांश कवि मुसलमान थे लेकिन कट्टरपंथी नहीं थे । सूफी मत का इतना प्रचार - प्रसार होने का कारण उन्होंने हिन्दुओं में प्रचलित प्रेमकथा को अपने काव्य का विषय बनाया । जैसे जायसी द्वारा रचित पद्मावत की कथा राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की कहानी एक ऐतिहासिक प्रेमकथा है इसे जायसी ने मसनवी शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है । सबसे पहले ईश्वर वंदन उसके पश्चात अपने ईष्ट हजरत मुहम्मद को नमन । तत्पश्चात मुहम्मद साहब के मित्रों की प्रशंसा और इसके बाद गुरु की महिमा का गान कर अपने अनुदित विषय का वर्णन करना । इस प्रकार से अपनी खास मसनवी शैली का प्रयोग सूफी कवियों ने अपने काव्य में किया है जो अन्यत्र देखने को नही मिलता ।

५. कथानक रूढ़ियाँ :

सूफी प्रेमाख्यान की रचना का स्वरूप प्रबंध काव्य रहा है । इनमें जो कथा वर्णन है वह मसनवी शैली में होते हुए भी भारतीय कथाओं से प्रेरित है । अधिकांश सूफी कवियों ने लोक जीवन में प्रचलित कथाओं को अपने काव्य का मूल विषय बनाया और इसके द्वारा समाज में सहिष्णुता और मानवीय प्रेम की भावना को प्रफुल्लित करन चाहा । इनके कथानक राजा-महाराजा की प्रेम कहानियों से जुड़े अवश्य थे लेकिन फारसी शैली में ढ़ले हुए थे । भारतीय कथानक और उसे विदेशी (फारसी) शैली में अभिप्रेत करने की कला साहित्य में केवल सूफी कवियों के पास ही थी ।

कथाकाव्य के लक्षणों के अनुसार कथा के आरंभ में गुरु की वंदन और रचयिता का परिचय होता है उसके उपरांत कथा का प्रयोजन स्पष्ट किया जाता हैं तत्पश्चात रचना का प्रतिपाद्य और सुखकर अंत का उल्लेख होता है । काव्य कथा में धार्मिक नैतिक तत्त्वों के समावेश के साथ उस देश की संस्कृति लोक शैली को अंगीकार कर सम्पूर्ण कथा उसी वातावरण में रंग जाती है ।

इन सभी आधारस्तंभों पर सूफी काव्य मूल चेतना के आधार से कथानक को गति देने के लिए कथानक रूढ़ियों की परम्परा से भारतीय कथा में व्यक्त होती रही ।

६. चरित्र चित्रण :

सूफी काव्य पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखा जाए तो अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य है क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध पात्र सूफी काव्य की शोभा बढ़ाते है । सूफी प्रेमाख्यान में पात्रों की परिस्थितिनुसार उन्हें तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है इस प्रकार है :- मानवीय पात्र तथा अमानवीय पात्र, मुख्य पात्र, गौण पात्र व अनावश्यक पात्र, ऐतिहासिक पात्र व काल्पनिक पात्र ।

मानवीय पात्रों में काव्य में प्रस्तुत नायक-नायिका का वर्णन और उसके साथ उनके तत्कालीन परिवेश का चित्रण भी दृष्टिगत होता है । इसके अतिरिक्त अमानवीय पात्रों में कोई भी जानवर, पक्षी, राक्षस आदि आते हैं । जो मानवीय पात्र की परिस्थिति काव्य में और अधिक मजबूत बनाने का कार्य करते है, जैसे पद्मावत में हीरामन तोते का प्रमुखता से वर्णन है ।

सूफी काव्य प्रेमाख्यानक काव्य है इसमें, गौण पात्र की भूमिका नायिका के पिता उसके संरक्षक निभाते हैं । ये अधिकांश नायक या नायिका के विरोधी दर्शाये गये है जैसे पद्मावत में पद्मावती के पिता द्वारा रत्नसेन को मारने का फरमान जाहिर करना आदि ।

ऐतिहासिक पात्र व काल्पनिक पात्रों में कथा विधान के अंतर्गत देवी - देवता, परी आदि वर्णन प्रमुखतः आते है, जैसे रत्नसेन का पद्मावती को शिवमंदिर में देखते ही मूर्छित हो जाने पर पार्वती अप्सरा का रूप धारण कर आती है ।

इस प्रकार सूफी काव्य में चरित्र कथा की माँग को पूरा करते हैं । जो ऐतिहासिक तौर पर कहीं उल्लेखित नहीं है, ऐसे काल्पनिक पात्रों के द्वारा भी कथा और काव्य को रोचकता के साथ रोमांचकारी भी बनाया गया है ।

७. लोक अवधारणा व लोक संस्कृति :

सूफी कवियों की रचना में प्रेम को प्रधानता दी गई है । अधिकांश कवि मुस्लिम धर्म के अनुयायी थे परंतु तत्कालीन परिस्थिति और लोक धर्म से परिचित थे । उनके काव्य में उस समय जन मानस में प्रचलित अंध विश्वास, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र आदि उल्लेख के साथ हिन्दु धर्म में प्रचलित मान्यता, तीर्थ, व्रत, उत्सव, पर्व आदि का विवरण है । सूफी कवि हिन्दु धर्म व संस्कृति की सम्पूर्ण जानकारी रखते थे । इसी जानकारी के फल स्वरूप इन्होंने पौराणिक ज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद, बारह मासा आदि वर्णन से काव्य की सौंदर्यता के साथ-साथ कथा को तत्नुरूप प्रदान किया ।

८. खंडन-मंडन का अभाव :

सूफी कवि किसी विशेष सम्प्रदाय में जकड़े नहीं उन्होंने सूफी मत का प्रचार – प्रसार किया । इस कार्य के लिए उन्होंने प्रेमकथाओं का आश्रय लिया और किसी धर्म संप्रदाय के विरोध में कोई बात नहीं की इसके विपरीत काव्य में हिन्दु लोकाचार को प्रस्तुत कर ये कवि हिन्दुओं में भी लोकप्रिय हुए । सूफी कवियों ने धर्म - संप्रदाय मजहब और रीति से ऊपर उठकर प्रेम तत्त्व की प्रधानता को अपनाया और काव्यरूप में परिणत किया ।

९. विरहात्मक वर्णन की अधिकता :

यह तो हम जानते ही है कि सूफीकाव्य प्रेमाख्यानक काव्य है और काव्य रूप की दृष्टि से प्रेम को श्रृंगार कहा गया है और श्रृंगार के दो भेद बताये गये है । पहला संयोग और दूसरा वियोग । सूफी काव्य संयोग की अपेक्षा वियोग वर्णन की अधिकता व्यक्त करता है । उन्होंने नायक-नायिका को परमात्मा और (आत्मा) (साधक) के रूप में प्रस्तुत किया है इसीलिए सूफी कवियों की साधना में आत्मा परमात्मा के दर्शन हेतु या आत्मा परमात्मा से बिछड़कर उसके वियोग में तड़प रही है । संसार का हर एक प्राणी उसकी खोज में है उसे पाना चाहता है । संसार

की हर एक वस्तु वह चंद्र हो या सूर्य, जल हो या अग्नि उसके मिलन हेतु आतुर है विरहाग्नि में जल रही हैं ।

१०. काव्यशैली :

सूफी काव्य में विषयानुरूप और समयानुरूप शैलियों का प्रयोग किया गया हैं । मुख्यतः प्रकृति वर्णन, नारी सौंदर्य, विरह वेदना आदि प्रसंगो में अभिधापरक शैली का प्रयोग हुआ है । वही लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना कर ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों की प्रतीकात्मक भूमिका को प्रस्तुत कर प्रतीकात्मक शैली की बहुलता सूफी काव्य में दिखती है । वहीं सूफी जन - मानस के कवि थे उनके काव्य में लौकिकता, पारलौकिकता अभिव्यक्त हुई है इसीलिए काव्य में अन्योक्ति, समासोक्ति के माध्यम से यह वर्णन हुआ है ।

११. काव्यगत सौंदर्य :

काव्यगत सौंदर्य की दृष्टि से सूफीकाव्य बहुआयामी सिद्ध हुआ है । काव्यगत दृष्टि से हम सूफी कवियों के काव्य की भाषा अलंकार और छंद विधान का अध्ययन करेंगे ।

भाषा :-

अधिकांश सूफी कवि पूर्वी देश के निवासी होने के कारण सूफी काव्य में अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है । सूफी कवियों की भाषा के विषय में पं. परशुराम चतुर्वेदीजी ने लिखा है :- "सूफी प्रेम - गाथा के कवियो का भाषा पर परिपूर्ण अधिकार सर्वत्र नहीं लक्षित होता । जायसी, जान कवि, उसमान और नूर महम्मद इस विषय में अधिक सफल जान पड़ते हैं । जायसी द्वारा किया गया शुद्ध और मुहावरेदार अवधी का प्रयोग तथा नूर मुहम्मद का संस्कृत शब्द भंडार पर अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।"

अलंकार :-

सूफी काव्य में अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है वही अवधि भाषा के कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी सूफी काव्य में देखी जा सकती है ।

छंद :-

छंद प्रयोग की दृष्टिसे विदेशी शैली को न अपनाकर भारतीय काव्यशास्त्रीय छंद को ही अपनाया है । चौपाई छंद का प्रयोग प्रमुखता से किया है । दोहा छंद का भी प्रयोग बहुलता से हुआ है। विद्वानो ने दोहा और चौपाई छंदो का उगम पूर्वी प्रदेशों से ही माना है । इसके अतिरिक्त जिस छंद का वर्णन हुआ है वह है अर्द्धालियों का प्रयोग जायसी और अन्य अवधी भाषी कवियों ने किया है अन्य सूफी कवियों ने सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया तथा झूलना छंद का प्रयोग काव्य में प्रमुखता से किया है ।

८.६ सारांश

इस इकाई में हमने सूफी काव्य का विस्तार से अध्ययन की सूफी शब्द का व्युत्पत्ति, अर्थ, स्वरूप, सम्प्रदाय, प्रमुख कवि उनकी रचनाओं को जानने के साथ साथ सूफी काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है कि किस प्रकार सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानक काव्य रचना कर हिन्दु मुस्लिमों के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास किया । राज्याश्रित और धर्माश्रित

रचनाओं को त्याज्य कर लोकाथित काव्य रचनाओं को महत्व दिया सिद्धांतवाद, मत वाद, सम्प्रदाय वाद को छोड़ मानव मन की पीर के कवि बने।

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी सूफी संप्रदाय को जान सके और सूफी कवियों की उदार प्रवृत्ति जिसके द्वारा मानव मन में प्रेम का निर्माण हुआ। जाति धर्म के भेद को भुलाकर प्रेम तत्व की महानता का पाठ समाज को पढ़ाया। सूफी कवियों की सरसता तत्कालीन समय की विषम परिस्थितियों में भी जन-जन को आकर्षित करने में सफल हुई।

८.७ बोध प्रश्न

१) सूफी शब्द के विभिन्न अर्थो पर विचार करते हुए सूफी शब्द के मूल अर्थ स्पष्ट कीजिए।
२) सूफी मत एवं सूफी सिद्धातों का उल्लेख कीजिए।
३) सूफी शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

८.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) सूफी शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है ?
२) सूफी मत में प्रमुखतः कितने सम्प्रदायों का वर्णन है ?
३) सुहरा वर्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है ?
४) 'इसहाक शामी' ने किस संप्रदाय की स्थापना की ?
५) सूफी कवियों को प्रमुखतः कितने भागों में विभाजित किया गया है ?
६) सूफी काव्य का दूसरा नाम क्या है ?

८.९ संदर्भ पुस्तकें

१) सूफी काव्य संग्रह - संपादक - परशुराम चतुर्वेदी
२) हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान - परशुराम चतुर्वेदी
३) सूफीवाद कुछ महत्वपूर्ण लेख - एन.आर. फारूकी

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई - ९ राम भक्तिकाव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ

इकाई - १० कृष्ण भक्तिकाव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ

इकाई - ११ भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता

लेखक - डॉ. बालाजी गायकवाड

munotes.in

इकाई-९

राम भक्ति काव्य

इकाई की रूपरेखा :

९.० इकाई का उद्देश्य
९.१ प्रस्तावना
९.२ राम भक्तिकाव्य के प्रमुख कवि
९.३ राम भक्तिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
९.४ सारांश
९.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
९.६ लघुत्तरीय प्रश्न
९.७ संदर्भ पुस्तकें

९.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी समझ सकेंगे :

- राम भक्तिकाव्य की अवधारणा
- राम भक्तिकाव्य के प्रमुख कवि
- राम भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

९.१ प्रस्तावना :

भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा में राम भक्ति की लंबी परंपरा रही है । वेदों में कुछ स्थानों पर 'राम' शब्द का प्रयोग हुआ है । 'राम' के जीवन से संबंधित पहला महाकाव्य 'वाल्मीकी रामायण' को स्वीकार किया जाता है । इस प्रेरणा से ही राम काव्य की परंपरा शुरू हुई । वाल्मीकी रामायण ने केवल देश में ही नहीं बल्कि विदेश को भी प्रभावित किया है, और राम साहित्य रचा जाने लगा । वाल्मीकी की रामायण के राम मर्यादा पुरुषोत्तम राम थे उसमें अवतारवाद नहीं था । 'उपनिषद' में राम को अवतार रूप में स्वीकार कर लिया गया तथा पुराणों में भी राम काव्य दृश्य के प्रसंग दिखाई देते हैं । डॉ. सोनटक्के जी के अनुसार "अगस्त - सुतीक्षण-संवाद संहिता में राम के अनेक अलौकिक गुणों का समावेश कर उन्हें विशेष महत्त्व दिया गया । अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण, युशुण्डि रामायण, हनुं संहिता, राघवोल्लास, आदि ग्रंथों में रामकथा की धार्मिक एवं दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गई । वराह, अग्नि, लिंग, वामन, ब्रह्म, गरुड़, स्कंल पद्मावैवर्त आदि पुराणों में रामकथा के अनेक प्रसंग

दृष्टिगोचर होते हैं। बौद्ध, जैन ग्रंथों में भी राम कथा का प्रयोग हुआ है । धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य में भी राम की सुदीर्घ परंपरा रही है ।"

राम काव्य का उद्भव वाल्मीकी रामायण से शुरू हुआ है । पश्चात रामभक्ति रामानंद द्वारा विकसित होकर तुलसी के 'रामचरितमानस' के द्वारा हिंदी भक्ति साहित्य में प्रवाहित हुई । तुलसीपूर्व विष्णुदास, अग्रदास, ईश्वर दास आदि ने राम कथा लिखी है किंतु राम काव्य के मुख्य प्रवर्तक तुलसीदास ही रहे हैं ।

१.२ राम भक्ति काव्य के प्रमुख कवि

भक्ति कालीन हिंदी सगुण भक्ति काव्य के अंतर्गत राम भक्ति काव्य के प्रमुख प्रवर्तक तुलसीदास जयंती की प्रतिष्ठा रामानंद द्वारा हुई । रामानंद की भक्ति और विचारधारा से तुलसीदास प्रभावित थे । राम भक्ति काव्य विकास में कई कवियों ने अपना योगदान दिया है और उनमें प्रमुख है - अग्रदास, ईश्वरदास, जन जसवंत नाभादास, केशवदास, प्राणचंद चौहाण आदि है ।

यहां सभी का संक्षेप में परिचय देना समीचीन होगा ।

राम भक्ति साहित्य के प्रवर्तक महाकवि तुलसीदास

तुलसीदास का जन्म संबंध में अधिकांश विद्वानों में मतभेद है । अंतः साक्ष्य के आधार पर उनकी जन्मतिथि सं १५८९ (सन १५३२) अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है ।

इनका जन्म स्थान राजापुर बताया जाता है । जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था । इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था । इनका बचपन विपन्न अवस्था में गुजर चुका था माता-पिता के द्वारा छोड़ दिए जाने पर बाबा नरहरिदास ने इनका पालन पोषण किया और ज्ञान भक्ति की शिक्षा भी दी । विवाह पश्चात उन्हें संतान प्राप्ति हुई थी किंतु अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हुई । पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्ति थी । एक बार पत्नी द्वारा भर्त्सना किए जाने पर - "लाज न आई आपको दौरे आएहु साथ" मिली तब वे दांपत्य जीवन से विमुख होकर प्रभु प्रेम की ओर उन्मुख हुए । उन्होंने कई जगह की यात्रा की । अंततः काशी में ही अपना स्थाई निवास बनाया । इसी अवस्था में साहित्य सर्जना आरंभ हुई । इनके गुरु नरहरी माने जाते हैं । इनके गुरु ने ही राम कथा सुनाकर राम शक्ति की ओर प्रवृत्त किया था । उनकी मृत्यु अत्यंत पीड़ादायी अवस्था में हुई ।

तुलसीदास रचित ग्रंथों की संख्या बारह मानी जाती है वह क्रमानुसार इस प्रकार है - "वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, जानकी मंगल, रामचरितमानस, पार्वती मंगल, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, दोहावली, बरवै रामायण और कवितावली आदि ।"

'वैराग्य संदीपनी' में संत महिमा का वर्णन किया गया है । जानकी मंगल में राम जानकी विवाह वर्णन है । 'रामचरितमानस' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र अनुकूल प्रसंगों का

विवेचन किया गया है । 'पार्वती मंगल' पार्वती के जन्म और विवाह उत्सव का वर्णन है । 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की बाल लीला एवं गोपियों का विरह वर्णन है । 'विनय पत्रिका' में राम के प्रति कवि का विनय भाव अभिव्यक्त है । 'कवितावली' कवित्त शैली में लिखा गया संग्रह है।

तुलसीदास के लेखन पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव दिखाई देता है तुलसीदास कालीन समय का सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से। ह्रासोन्मुख था । तुलसी ने अपने युगीन राजनीतिक स्थिति का विवेचन इस प्रकार किया है -

'गोंड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल ।।'

तुलसीदास ने तत्कालीन शासक अधिकारी के लिए लिखा है -
'जासुराज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।'

तुलसीदास ने समकालीन समाज में उच्च वर्ग में स्थित विलासिता, जाती - पाती की प्रथा, अधिक कठोर हो रही थी ।

मुस्लिम शासकों के अत्याचार बढ़ रहे थे । आर्थिक विपन्नता थी । तुलसीदास ने स्वयं कहा है -

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी ।।'

तुलसीदास ने एक अच्छे समाज एवं राष्ट्र निर्माण के लिए वर्ण व्यवस्था को जरूरी माना है -

'बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद लोग ।
तल हि सदा पावहि सुख, जहिं भय शोक न रोग ।'

तुलसी ने अपनी रचनाओं के लिए लोक भाषा को चुना । पूर्वी व पश्चिमी अवधी पर समान अधिकार था । कहीं - कहीं ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है । इनकी भाषा संस्कृत के पंडित होने के कारण संस्कृत की कोमल कांत पदावली की सुमधुर झंकार है । उन्होंने अपनी रचना शैली में महाकाव्य, मुक्तक, गीति इन तीनों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है । तुलसी ने अपनी रचनाओं में करुण, हास्य, वीर, भयानक, बीभत्स आदि रसों का परिपाक मिलता है । उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह, व्यतिरेक, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग भी किया है । तुलसीदास के साहित्य में समन्वय भावना दृष्टिगोचर होती है । इस ओर संकेत करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - "उनका सारा काव्य समन्वय की विरह चेष्टा है । लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्त्वज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण्य और चंडाल का समन्वय, पंडित और पांडित्य का समन्वय - रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है ।" अतः तुलसी जन चेतना वादी नायक थे ।

स्वामी रामानंद

स्वामी रामानंद जी का जन्म १४०० से १४७० ई. माना गया है । इनका जन्म काशी में हुआ था और उन्होंने वैष्णव संप्रदाय के आचार्य राघवानंद से दीक्षा ग्रहण की थी । वर्णाश्रम में आस्था रखनेवाले रामानंद जी भक्ति मार्ग में उन्होंने सभी को समान मानते हुए वर्ग के भक्तों को अपना शिष्यत्व प्रदान किया । उनके शिष्यों में कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि थे । स्वामी रामानंद जी संस्कृत के पंडित थे । इन्होंने 'वैष्णो माताब्द भास्कर' और 'श्रीरामार्जुन पद्धति' यह प्रमुख ग्रंथ लिखे हैं । रामानंद जी की भक्ति का प्रभाव राम भक्ति काव्य परंपरा पर लक्षित होता है । गोस्वामी तुलसीदास जी भी इनकी विचारधारा से प्रभावित थे । रामानंद जी का हिंदी में हनुमान की स्तुति का पद इस प्रकार है -

"आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्टदलन रघुनाथ कला की ।
जाके बल भरते महि काँपे । रोग सोग जाकी सियान ज्यांपै ।
अंजनीसुत महाबल दायक । साधु संत पर सदा सहायक ।।
गाढ़ परै कवि सुमरों तोहि । होहु दयाल देहु जस मोंहि ।।"

स्वामी अग्रदास

स्वामी रामानंद शिष्य की परंपरा के राम भक्ति कवि स्वामी अग्रदास थे । इन्होंने कृष्णदास पयहारी से दीक्षा लेकर शिष्यत्व प्रदान किया था । इन्हीं अग्रदास के शिष्य 'भक्तमाल' इस रचना के रचयिता नाभादास जी थे । कृष्ण दास पयहारी ने जयपूर के समीप गलता नामक स्थान में अपनी गद्दी स्थापित की थी । अग्रदास जी गलता गद्दी पर १५६६ ई.में विद्यमान थे । इनके प्रमुख ग्रंथ 'ध्यान मंजरी', 'अष्टयाम', 'हितोपदेश उपखाणाँ बावनी', 'रामभजन मंजरी', 'उपासना-बावनी', 'कुंडलिया' आदि है । इनकी पद रचनाओं को पढ़ने के बाद पता चलता है कि इन्हें शास्त्रीय साहित्य का ज्ञान था ।

उनके पद का एक उदाहरण दृष्टव्य है -
पहरे राम तुम्हारे सोवत में मतिमंद अंध नहीं जोवत ।।
अपमारग मारग महिजान्यो । इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो ।।
औरनि के बलअनंत प्रकार । अगरदास के रामअधार ।।

अग्रदास जी ने अग्रअली नाम से स्वयं को जानकी सखी मानकर काव्य रचनाएँ की है । इनकी 'रामाष्टाध्याय' में सीता वल्लभ राम की दैनिक लीलाओं का चित्रण है ।

नाभादास

यह तुलसीदास कालीन राम भक्त कवि थे । सं. १६५७ समय माना गया है । नाभादास अग्रदास के शिष्य थे । इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तमाल' सं. १६४२ में लिखा गया और प्रियदास जी ने उसकी टीका लिखी । इनकी 'अष्टाध्याय' की रचना रसिक भावना को लेकर हुई है; जिसमें राम की लीलाओं का वर्णन किया गया है ।

ईश्वरदास

ईश्वरदासजी का जन्म १४८० ई. माना जाता है । इनकी प्रसिद्ध कृति 'सत्यवती कथा' है इसका रचनाकाल १५०१ ई. माना गया है । रामकथा से संबंधित इनकी 'भरत मिलाप' और 'अंगद पैज' यह दो रचनाएं प्रचलित है । 'भरत मिलाप' में राम के वन गमन के उपरांत भरत और राम मिलन के करुण कोमल प्रसंग को इस काव्य में प्रबंध किया गया है । ईश्वरदास की दूसरी रचना अंगद पेज में रावण की सभा में अंगद के पैर जमा कर बैठ जाने का वीर रस पूर्ण वर्णन मिलता है ।

केशवदास

केशवदास का जन्म १५५५ ई. में और मृत्यु १६१७ ई. माना जाता है । इनके द्वारा लिखे गए प्रमुख ग्रंथ 'कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंहचरित, विज्ञानगीता, रतन बावनी और जहांगीर जसचंद्रिका आदि है । इनमें से 'रामचंद्रिका' १६०१ ई. में राम काव्य परंपरा अंतर्गत प्रमुख कृति मानी जाती है ।

इनके कवियों के अतिरिक्त राम काव्य लेखन वाले अन्य कवि प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक', सेनापति कृत 'कवित्त रत्नाकर', कपूरचंद्र कृत 'रामायण' आदि रचना उल्लेखनीय है।

९.३ राम भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियां

munotes.in

दक्षिण भारत के रामानुजाचार्य ने श्री वैष्णव संप्रदाय की स्थापना की थी । जिसमें नारायण के रूप में विष्णु की उपासना का विधान था । राम भक्ति के मुख्य प्रवर्तक रामानुजाचार्य माने जाते हैं । इन्होंने राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की उपासना का विधान किया है । रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद जी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्वामी रामानंद को राम कथा काव्य का हिंदी कवि माना है । जब मुगलों तथा यवनों का आक्रमण भारत पर प्रारंभ हो गए थे । यहां की धार्मिकता पर इसका प्रभाव रहा । उसी समय रामानंद दक्षिण भारत की भक्ति को उत्तर भारत में ले आए थे।

"भक्ति उपजी द्रवदी लाए रामानंद"

रामानंद के पश्चात भक्ति को दो धाराओं में विभाजित किया । एक सगुण तथा दूसरी निर्गुण धारा । सगुण शाखा के अंतर्गत राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य तथा निर्गुण काव्य में प्रेम मार्गी शाखा और ज्ञानमार्गी शाखा इस तरह हिंदी भक्ति साहित्य का विभाजन किया गया है ।

तुलसी ने राम भक्ति को निश्चित दिशा की ओर उन्मुक्त कर दिया था । राम भक्ति शाखा के अनेक कवि हुए हैं किंतु राम भक्ति काव्य धारा का साहित्यिक महत्त्व महाकाव्यकार 'रामचरितमानस' के कवि तुलसीदास के कारण ही है । भक्त शिरोमणि कवि तुलसीदास का मूल प्रतिपाद्य आदर्श और मर्यादा रहा है ।

समाज के प्रति पूर्ण निष्ठा का भाव इनमें सर्वत्र है इसी प्रकार समन्वय भावना, भक्ति भावना, अछूतोद्धार, सनातन मूल्यों प्रतिष्ठा, आदि प्रवृत्तियों से इनकी कृति भरी हुई है ।

राम भक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार है ।

राम का स्वरूप

रामानंद के अनुयायी विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं । राम-काव्य परंपरा के कवियों के राम महर्षि वाल्मीकि के राम से सर्वथा भिन्न हैं । राम भक्त कवियों ने राम को भगवान विष्णु का अवतार के रूप में स्वीकार कर ब्रह्म स्वरूप माना है । राम पाप का नाश करने हेतु और धर्म उद्धार के लिए युग में अवतरित हुए हैं । राम भक्त कवियों के अनुसार श्री राम दया के सागर, पतित-पावन, महान दानशील, विनयशील, मर्यादापुरूषोत्तम और लोकरक्षक हैं । भक्ति भावना से उन्हें सहज ही प्राप्त किया जा सकता है । देवी-देवताएँ भी उनके चरणों की वंदना करते हैं । राम भक्त कवियों का मानना है कि पृथ्वी को दुष्टों से मुक्त करने व संत जनों का उद्धार करने के लिए ही उन्होंने धरा पर अवतार लिया है । इन कवियों का अवतारवाद में विश्वास होने के कारण उपास्य देव परब्रह्म स्वरूप 'राम' को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया है । तुलसी के अरण्यकांड में उपास्य देव राम की स्तुति इस प्रकार की है -

"जेही श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक विरज अज कहिं गावही ।
करि ध्यान-ग्यान विराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ।।"

राम शिव, शक्ति व सौंदर्य का समन्वित रूप है । सौंदर्य में वे त्रिभुवन के लजावन हारे हैं । शक्ति से वे दुष्टों का नाश कर वे भक्तों की रक्षा करते हैं, तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं । वे आदर्श के प्रतिष्ठापक है । तुलसी ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम एवं शक्ति, शील और सौंदर्य के निधान स्वरूप का सुंदर चित्रण राम चरित मानस में किया है । इस भक्ति भावना को लेकर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं - "राजनीति की जटिल परिस्थितियों में धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकती है, यह राम काव्य ने स्पष्ट किया है ।" यही कारण हो सकता है । भगवान राम सीता के नाम पर प्रेम का चित्रण नहीं हुआ केवल मात्र भक्ति को ही प्राथमिकता दी गई है । कालांतर में राम भक्ति परंपरा में रसिकता का उदय हुआ । और उसमें सखी संप्रदाय की स्थापना हुई, परंतु यह सब कृष्ण भक्ति साहित्य के अनुकरण पर ही हुआ है ।

समन्वय की भावना :-

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने ठीक ही कहा है कि 'तुलसी का काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है' । राम भक्ति काव्य में गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, पांडित्य और पांडित्य का समन्वय आदि का समन्वय दिखाई देता है । तुलसी आदि राम भक्त कवियों ने समाज भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार और प्रसार किया है । राम काव्य में एक विराट समन्वय की भावना है इसमें न केवल राम की उपासना है बल्कि यह काव्य हिंदू धर्म के विभिन्न संप्रदायों का समन्वय करने का सफल प्रयास करता है । महाकवि तुलसीदास ने सेतुबंध के अवसर पर श्री राम द्वारा शिवजी की पूजा करवाई है -

"शिव द्रोही मम दास कहावा ।
सो नर मोहि सपनेहु नहीं भावा ।।"

साथ ही शिव जी द्वारा राम की प्रशंसा कराई है । गणेश आदि देवताओं की भी स्तुति की गई है । ज्ञान, कर्म और भक्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच भी समन्वय स्थापित किया है । सगुण और निर्गुणवाद में एकरूपता बताई गई है ।

राम काव्य में लोकमंगल की भावना :-

राम भक्ति काव्य साहित्य में लोक रक्षक, मर्यादा पुरुषोत्तम तथा आदर्श के संस्थापक के रूप में राम प्रमुख हैं लोक कल्याण की भावना की दृष्टि से यह राम साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।"

राम भक्त कवियों ने गृह जीवन की उपेक्षा नही की है । उन्होंने राम और सीता के माध्यम से जीवन स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास किया है । राम काव्य का आदर्श पक्ष अत्यंत उच्च है । भक्त कवियों का मानना है कि अत्याचारियों का नाश करके आदर्श समाज की स्थापना करना ही राम काव्य की विशेषता है । तुलसीदास रचित रामचरितमानस में राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श लोक और सेवक तथा राजा है, सीता आदर्श पत्नी है, भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं, कौशल्या आदर्श माता है, और हनुमान आदर्श सेवक है । यह सभी पात्रों को आदर्श रूप में जनता के सामने प्रस्तुत किया है । इस प्रकार तुलसीदास ने रामचरितमानस में आदर्श गृहस्थ, समाज एवं राज्य की कल्पना की है । आदर्श की प्रतिष्ठा के कारण तुलसी लोकनायक कवि बने हुए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है ।

भक्ति का स्वरूप

राम भक्त कवियों ने भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है । वे जीवन का परम लक्ष्य भक्ति को मानते हैं । कवियों के अनुसार जीवन में सभी प्रकार की सफलता पाने के लिए भक्ति ही सुलभ मार्ग हैं । राम भक्त कवियों द्वारा भक्ति के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । राम काव्य परंपरा की सबसे प्रमुख विशेषता इनकी भक्ति भावना है । तुलसीदास की भक्ति भावना में शील - शक्ति और सौंदर्य की प्रतिष्ठा है । भागवत संप्रदाय द्वारा स्थापित राम लोकरंजनकारी रूप का गान है, जो आगे चलकर मानव ह्रदय के संपूर्ण कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके । तुलसी ने अपने उपास्य की परिकल्पना करते हुए लिखा है -

अंतरजामिहु ते बड़ जामी है राम जो नाम लिए तें ।
पैज परै है प्रहलादहु का प्रगटे प्रभु बाहन ते न हिए ते ।।

उनका ईश्वर अखिल विश्व में कल्याणकारी है ।

राम भक्ति काव्य के कवियों की रचनाओं में नवधा भक्ति के उदाहरण मिलते हैं, परंतु मुख्यतः इनकी रचनाओं में दास्य भक्ति का परिपाक हुआ है । वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं । वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान राम को महान बतलाते हैं । राम-कवि भक्त और भगवान में सेवक सेव्य भाव स्वीकार करते हैं । तुलसीदास जी कहते हैं -

'सेवक-सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि ।'

दास्य भक्ति की प्रधानता होने पर भी अन्य प्रकार की भक्ति इनके काव्य में मिलती है । जैसे सीता में माधुर्य भाव की भक्ति है, सुग्रीव में सख्य भाव की भक्ति है, दशरथ, कौशल्या आदि में वात्सल्य भाव की भक्ति देखी जा सकती है । तुलसीदास जी की अधिकांश रचनाओं में दास्य भक्ति की प्रधानता है लेकिन 'वैराग्य संदीपनी' में शांत भाव की भक्ति की प्रधानता है । राम भक्त कवियों का भक्ति संबंधी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार है इन कवियों ने राम भक्ति के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं की भी स्तुति की है । राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है । तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना वे कहते हैं -

'भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा ।'
तथा
'सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।।'

यह भक्त कवि विशिष्ट द्वैतवाद से प्रभावित हैं । तुलसीदास ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग के रूप में स्वीकार करते हैं । इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल रहा है । अधिकांश स्थानों पर राम कवियों ने अपनी दीनता प्रकट करते हुए उनकी अनुकंपा चाही है । उनकी दीनता का भाव इन पंक्तियों में मिलती है -

"राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो
राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो ।।"

वे स्वयं को दास व राम को अपना स्वामी स्वीकार करते हैं । यह दास्य - भक्ति की सुदंरतम व्याख्या करते हैं । तुलसी दास निर्गुण सत्ता को स्वीकारते हुए दशरथ सुत नंदन कौशल्या सुत कह कर वे राम के सगुण रूप को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं -

'सगुन अगुन दुई ब्रह्म सरूपा
अकथअनादि अगाधिखरो अरूपा ।'

तुलसी की भक्ति भावना का विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है, उसकी सर्वांग पूर्णता जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है ।"

युगीन समस्याओं का चित्रण :-

राम काव्य परंपरा में यद्यपि श्री राम की भक्ति की गई है किन्तु इसके साथ-साथ उनके काव्य में युगीन समस्याओं का चित्रण भी हुआ है । उन समस्याओं के भयंकर परिणाम बताकर पाठकों को उन्हें दूर करने के लिए उकसाया भी गया है । उन समस्याओं में से कुछ समस्याएं आज भी प्रासंगिक हैं ; जैसे तत्कालिन हिंदू समाज उपासना पद्धतियों में उलझा हुआ था । संत कवि व सूफी कवि निर्गुण भक्ति पर बल दे रहे थे जबकि राम कवि व कृष्ण कवि सगुण भक्ति के पक्ष में थे । ऐसे में तुलसीदास जी ने इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा -

"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।"

राम काव्य में तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक स्थिति का चित्रण हुआ है । तुलसीदास ने कवितावली में उस समय की बदहाल आर्थिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है ।

प्रकृति - चित्रण

राम भक्त कवियों ने प्रकृति - चित्रण में भी पर्याप्त मात्रा में रुचि रही है । इस काल के कवियों ने प्रकृति के आलंबन एवं उद्दीपन, दोनों रूपों का वर्णन किया है । कहीं - कहीं प्रकृति को दूती व उपदेशक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है । राम वन गमन प्रसंग में सभी राम भक्त कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है, परंतु इन कवियों का प्रकृति - चित्रण उतना सरस नहीं है, जितना रीतिकालीन कवियों का है ।

आदर्श पात्रों का चरित्र चित्रण :-

राम काव्य परंपरा के कवियों ने रामकथा से जुड़े पात्रों का चरित्र चित्रण किया है। उन्होंने मुख्य रूप से श्री राम के चरित्र का चित्रण किया है। इन कवियों के राम ईश्वर के अवतार हैं जो वह सर्वगुण संपन्न व सर्वशक्तिमान हैं। वह शिव, शक्ति व सौंदर्य का समन्वित रूप हैं। राम काव्य में सत, रज, तम तीनों गुणों की अभिव्यक्ति हुई है। वह दया के सागर, पतित-पावन, दान शील व महान विनयशील हैं। देवी - देवता भी उनके चरणों की वंदना करते हैं। पृथ्वी को दुष्टों से रहित करने व संत जनों का उद्धार करने के लिए ही उन्होंने अवतार लिया है। राम की रावण पर विजय अर्थात सत् की तम पर विजय हैं। राम भक्त कवि उन्हें लोकरक्षक व मर्यादा पुरुषोत्तम मानते हैं। राम काव्य के पात्र आचार और लोक मर्यादा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। राम का चरित्र महान एवं अनुकरणीय है।

राम के अतिरिक्त लक्ष्मण, भरत, सीता, हनुमान आदि अन्य पात्रों के चरित्रों पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। इन सभी पात्रों में रजोगुण हैं तमोगुण में पात्रों की अभिव्यक्ति हुई है। रजोगुणी पात्रों में लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव आदि तथा तमोगुणी पात्रों में रावण आदि प्रस्तुत किए गए हैं।

तुलसीदास ने पार्वती, सीता, कौशल्या गार्गी, अनुसूया आदि के अतिरिक्त राक्षस परिवार की सुलोचना, मंदोदरी, त्रिजटा नामक आदर्श स्त्रियों की भी सृष्टि की है।

आदर्श स्थिति यह है कि -

'मुखिया मुख सों चाहिए खान-पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।'

इन सभी पात्रों के माध्यम से राम कवियों ने समाज के सामने कुछ आदर्श प्रस्तुत किए हैं, जैसे राम अकेले ही आदर्श भाई, आदर्श पुत्र व आदर्श राजा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। परंतु उनकी छवि एक आदर्श पति के रुप में लाख तर्क देने पर भी एक तर्कशील व्यक्ति के मन में नहीं उभर पाती। उनका व्यक्तित्व नारी समानता और पति-पत्नी के पारस्परिक विश्वास के सिद्धांतों पर खरा नहीं उतरता।

munotes.in

भरत आदर्श भाई का, सीता आदर्श नारी व आदर्श पत्नी का, हनुमान आदर्श सेवक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। पिता के रूप में दशरथ पुत्र के रूप में राम का चरित्र अनुकरणीय है। यही कारण है कि राम काव्य पढ़कर पाठक एक आदर्श नागरिक बनने का संकल्प लेते हैं। भाई-भाई के संबंधों के आदर्श के रूप में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसे भाईयों की कल्पना करके तुलसीदास ने मानस को आदर्श परिवार व आदर्श गृहस्थ की कल्पना पूरी कर दी है। राम के शब्दों में वे कहते हैं -

'भरतहिं होई न राजमद, विधि हरिहर पद पाई।
कबहुं कि काजी सी करनि, क्षीर सिन्धु बिन साई।।'

काव्य शैली -

सगुण राम भक्ति परंपरा के कवि या तो स्वयं विद्वान थे अथवा विद्वानो की संगति से साहित्य के धर्मों के संबंधों में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इनके द्वारा अलंकार शास्त्र की अवहेलना हुई है। इनका अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। यही कारण है कि राम काव्य में सभी प्रकार के काव्य की रचनाएं मिलती हैं। इसमें प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों का प्रयोग किया गया है। 'रामचरितमानस' महाकाव्य में, पार्वती मंगल व जानकी मंगल में खंडकाव्य, कवितावली व दोहावली में मुक्तक, विनय पत्रिका में प्रबंध मुक्त का मिश्रण, रामललानहछु में गीतिकाव्य के प्रायः सभी तत्व विद्यमान है।

रूपोपासना -

सगुण भक्ति पद्धति में रूपोपासना का विशिष्ट स्थान है। आदि शंकराचार्य ने नाम और रुप को माया जन्म माना है। शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्म को अरुप और अनाम कहा गया है, परंतु सगुण साधना में भगवान के नाम और रूप आनंद की अक्षय निधि है। नाम और रूप ही भक्ति का आरंभ माना गया है। राम भक्तों को भगवान का नाम और रुप इतना विमुक्त कर लेता है कि, लौकिक छवि उस में बाधक नहीं बन सकती। आरंभ में सगुण उपासक नाम रुप युक्त मूर्ति के समक्ष आकर उपासना करता है, परंतु निरंतर भावना, चिंतन एवं गुण कीर्तन से वह अपने आराध्य में ऐसा समाविष्ट हो जाता है कि, उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता ही नहीं रहती।

गुरु की महिमा -

राम भक्त शाखा में निर्गुण संत कवियों के समान सगुण कवियों ने भी गुरु की महिमा का गुणगान है। राम भक्ति के अनुरुप गुरु ब्रह्मा का प्रतिनिधि है। महाकवि तुलसीदास के मतानुसार गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति असंभव है और ज्ञान के अभाव में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

राम राज्य की संकल्पना -

तुलसी ने रामराज्य की परिकल्पना करते हुए 'मानस' लिखा है। 'रामचरितमानस' हमें रामराज्य का आदर्श रुप प्रदान करता है। पारिवारिक जीवन के दृष्टिकोण से राम एक आदर्श मातृ-पितृ भक्त पुत्र, गुरु सेवा परायण शिष्य, एक पत्नीव्रत पति, अन्यतम स्नेह करने वाले तथा संरक्षक है। राम काव्य में नारी के सतीत्व तथा पतिव्रत धर्म को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।

अरण्यकांड में सती अनुसूया, सीता को उपदेश देती है। - 'नारी की सच्ची पहचान आपत्तिकाल में ही होती है, पति के रोगी, धनहीन, नेत्रहीन, बधिर, क्रोधी, दीन आदि अवस्था को प्राप्त होने पर उसका धर्म है कि तब भी वह उसका अपमान ना करें बल्कि धर्म अनुसार उसकी सेवा करें' अतिथि की पूजा, विनम्र भाव, चित्त कोमल, स्वाभिमानी, प्रसन्न होना, स्नेह भाव रखना, परोपकारी भाव आदि को लिया जा सकता है।

सभी स्वधर्म का पालन निष्ठा पूर्वक कर रहे थे। इसी कारण न कोई दिन था, न दुःखी था, न ही दरिद्र, न हीं कुलक्षण सभी गुणज्ञ, ज्ञानी, कृतज्ञ, सदाचारी, निष्कपट और पंडित थे। तभी यह संसार अकाल, मृत्यू, रोग आदि महा दुःखों से भी लोकमुक्त था। तुलसी लिखते हैं -

"दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहींकाहु नव्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीति, चलहि स्वधर्मनिरत श्रुति नीति
अल्प मृत्यु नहिं कवेनउपीरा, सब सुंदर सब बिरज सरीरा।"

वस्तुतः संपूर्ण राम काव्य में परंपरा उक्त आदर्शो को प्रस्तुत करते हुए ऐसे समाज के निर्माण की कल्पना प्रस्तुत करती है जिसमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होता आदि प्रस्तुत किया गया है।

रस :

राम भक्ति साहित्य में राम कथा अत्यंत व्यापक है। उसमें जीवन की विविधताओं का सहज सन्निवेश है। उसमें सभी रसों का समावेश हैं, किंतु सेवक सेव्य भाव की भक्ति होने के कारण निर्वेदजन्य शांत रस की प्रधानता है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम है और भक्त कवि भी मर्यादा वादी हैं। यहाँ रामभक्त कवि मर्यादा वादी होने के कारण श्रृंगार रस का चित्रण सीमित हुआ है। महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस में सभी रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। उनके काव्य में श्रृंगार और शांत रस के साथ-साथ वीर रस का भी प्रभावी निरुपण हुआ है। विभिन्न युद्ध दृश्य चित्रण में वीर रस के साथ ही रोद्र, भयानक और कहीं-कहीं बीभत्स रस की निष्पति हुई है। नारद मोह के प्रसंग में हास्य रस का प्रसंग चित्रित हुआ है। अनेक स्थलों पर अद्भुत रस का निरुपण हुआ है।

छंद -

राम काव्य में रचना भेद, भाषा भेद, विचार भेद, अलंकार भेद के साथ-साथ छंद भेद भी पाया जाता है। वीर गाथाओं के छप्पय, संत काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चौपाई और इनके अतिरिक्त कुडंलियाँ, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। राम काव्य में मुख्यतः दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है। तुलसीदास जी ने इनका प्रयोग अधिकार पूर्वक किया है।

अलंकार -

तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। राम भक्त कवि पंडित होने हेतु उन्होंने अलंकार शास्त्र की अवहेलना नहीं की है। जहाँ इन कवियों ने विविध छंदो का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है वहाँ अलंकार के प्रयोग में अत्यंत विदग्धता प्रदर्शित की हैं। कवि केशव ने बड़ी मात्रा में शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। तुलसी काव्य में सभी अलंकार मिलते हैं। उत्प्रेक्षा, रुपक और उपमा का प्रयोग रामचरितमानस में अधिक है।

भाषा -

रामकाव्य में मुख्यत: अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का श्रृंगार बनी है। रामानंद ने जन भाषा की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए संस्कृत भाषा को त्यागकर जन भाषा को अपनाया। कवि केशव ने अपनी रचना 'रामचंद्रिका' मे ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। उनके पश्चात रसिक संप्रदाय के कवियों ने 'ब्रजभाषा' का प्रयोग किया है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। रामचरितमानस की 'अवधी' प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। राम काव्य में भोजपुरी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, संस्कृत, अरबी और फारसी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने भाषा का परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है।

उपसंहार -

राम भक्ति शाखा के कवियों ने समय परिस्थिति और काल के अनुरूप अपना काव्य सृजन किया है। राम भक्ति काव्य हिंदी काव्य का गौरवपूर्ण काव्य है। इन कवियों ने धर्म और समाज के क्षेत्र में अपने व्यापक एवं समन्वय वादी दृष्टिकोण, महापुरुषों के आदर्श चरित्र एवं भक्ति के सच्चे रूप को स्थापित करते हुए उत्कृष्ट काव्य सृजन का परिचय दिया है। कविता इनकी साध्य नहीं साधन है। इनका साध्य रामभक्त हैं। अपने साध्य तक पहुँचने के लिए इन कवियों ने जिस साधन को स्वीकार किया है, उसे इतना समर्थ और पूर्ण बना दिया है, उसका मानस जनमानस हो गया। इस काव्य में मानव जीवन की विविधताओं का सहज, स्वाभाविक और प्रभावी चित्रण हुआ है। इन कवियों ने काव्यत्व, लोकरंजन, धर्म, रक्षा, लोकहित एवं समाज के उत्थान में योग दिया है। तो दूसरी ओर काव्य को उदात्त, उत्कृष्ट एवं लोक मंगलकारी रूप प्रदान करने का स्तुत्य कार्य किया है।

१.४ सारांश

राम भक्तिकाव्य अपनी गरिमा, मर्यादा और उदात्तमयता के कारण हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। जो समाज को सुआचरण सिखाता है। जीवन शैली को सही दिशा में ले जाने का कार्य करता है। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' ऐसी अमूल्य निधि है जो हर एक घर में विद्यमान है, पूजनीय है।

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. राम भक्तिकाव्य में राम किसके अवतार है ?

२. राम भक्त कवियों ने किस भाव की भक्ति की है ?

३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

अ) राम भक्त कवि तुलसीदास

४. राम काव्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

५. राम काव्य की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

१.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) 'रामचरितमानस' कौनसे प्रकार का काव्य है?

२) हिन्दु धर्म के अतिरिक्त अन्य कौनसे धर्म मे राम कथा का प्रयोग हुआ है?

३) 'सत्यवती कथा' के कवि कौन है?

४) स्वामी अग्रदास किस धारा के कवि है?

५) राम राज्य की संकल्पना तुलसीदास ने कौनसे काव्य में की है?

६) राम भक्तिकाव्य के प्रमुख कवि कौन है?

१.६ संदर्भ पुस्तकें

१) उत्तर हिन्दी राम काव्यधारा - उमेश चंद्र मधुकर

२) भक्तिकाव्य से साक्षात्कार - कृष्णदत्त पालीवाल

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-१०

कृष्ण भक्तिकाव्य : परम्परा एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा :

१०.० इकाई का उद्देश्य
१०.१ प्रस्तावना
१०.२ कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि
१०.३ कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृत्तियां
१०.४ सारांश
१०.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
१०.६ लघुत्तरीय प्रश्न
१०.७ संदर्भ पुस्तकें

१०.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी समझ सकेंगे :

- कृष्णकाव्य की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- कृष्ण भक्त कवियों के विषय में जान सकेंगे।
- कृष्ण भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।

१०.१ प्रस्तावना

भक्ति कालीन सगुण भक्ति धारा में कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण भक्ति को अत्याधिक महत्त्व दिया गया है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख एक श्रोता ऋषि के रूप में हुआ है। छांदोग्योपनिषद में कृष्ण का उल्लेख देवकी पुत्र के रूप में हुआ है। महाभारत में कृष्ण का चरित्र विस्तृत रूप में चित्रित हुआ है। इस संदर्भ में डॉ. भंडारकर ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक ऋषि कृष्ण का महाभारत के कृष्ण से कोई संबंध नहीं है।

महाभारत में जिस कृष्ण का वर्णन किया गया है वह कृष्ण सामान्य मानव रूप है। पश्चात कृष्ण नारायण, विष्णु और परब्रह्मा आदि अनेक रूपों में प्रतिष्ठित हुए। कृष्ण चरित्र के संदर्भ में डॉ. विजयेंद्र स्नातक लिखते हैं वस्तुतः धर्म स्थापना कौन के अवतार का प्रमुख और एकमात्र होते हैं।

"वस्तुतः धर्म स्थापन उनके अवतार का प्रमुख और एकमात्र उद्देश्य है यदि गीता के आधार पर कृष्ण चरित्र का आंकलन किया जाए, तो उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का पूरी तरह उद्घाटन होता है। वेद - वेदांगज्ञाता कृष्ण ने व्यावहारिक स्तर पर दर्शन को गीता में पहली बार प्रतिहित किया है जिसके अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस रूप में कृष्ण यहां वर्णित है वह उनके परमदेवत्व का परिचयक रूप है।"

पुराणों में कृष्ण का जो रूप विकसित हुआ है उसके संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण की बाल लीलाओं को क्राइस्ट के बाल चरित्र का अनुकरण कहा है। श्री कृष्ण के पूर्ण अवतार के संदर्भ में पहली बार पुराणों में ही कहा गया है, भागवत पुराण में कृष्ण की महिमा गाई गई है।

पुराणों में कृष्ण को योगश्वर, सच्चिदानंद, अच्युत, अविनाशी आदि कई नाम प्राप्त है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, पदम पुराण आदि में कृष्ण महिमा गान विस्तार से हुआ है। संस्कृत काव्य में कृष्ण लीलाओं का सबसे पहले उल्लेख 'अश्वघोष' के 'ब्रह्म चरित' काव्य में मिलता है। 'हाल' रचित 'गाथा सतसई' में कृष्ण, राधा, गोपी, यशोदा आदि का वर्णन प्राप्त है। नाटक दर्पण, अलंकार, कौस्तुभ, कंदर्व मंजरी, श्रीकृष्णलीला अमृत आदि संस्कृत ग्रंथों में कृष्ण के विविध प्रसंगों का चित्रण हुआ है। 'गीतगोविंद' में कृष्ण श्रृंगार रस का चित्र दिखाई देता है। कृष्ण काव्य के विकास में विभिन्न संप्रदायों का योगदान रहा है। उनमें प्रमुख है - निंबार्क, चैतन्य, राधावल्लभ, आदि संप्रदाय थे। वल्लभ संप्रदाय के सूरदास ने सर्वप्रथम प्रतिमान प्रदान की है। उन्हें ही हिंदी के भक्त साहित्य का प्रणेता माना गया है। कृष्ण भक्ति विकास में संस्कृत - पुराण महाभारत, संप्रदाय आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

१०.२ कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि

भक्ति कालीन सगुण धारा में कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख प्रवर्तक सूरदास जी है। कृष्ण भक्ति साहित्य के विकास में विभिन्न संप्रदायों का सहयोग रहा है उसमें प्रमुखतः निंबार्क, चैतन्य, वल्लभ और राधावल्लभ आदि संप्रदाय प्रमुख है। कृष्ण भक्ति साहित्य के विकास में सूरदास के साथ-साथ अन्य कृष्ण भक्त कवियों का अपना अमूल्य योगदान है जिसमें प्रमुख है सूरदास, नंददास, परमानंद दास, हित हरिवंश, ध्रुवदास, श्री भट्ट, स्वामी हरिदास, गदाधर भट्ट, मीराबाई, रसखान आदि अतः उनका संक्षिप्त परिचय हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य के विकास को समझने में सहायक होगा।

कृष्ण भक्ति साहित्य के प्रणैता सूरदास :

सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि है। सूरदास जी के जन्म को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। सूरदास का जन्म सन् १४७८ ई. माना जाता है। विभिन्न रचनाओं के आधार पर जन्म 'सीही' नामक गाँव में सारस्वत ब्राह्मण जाति में हुआ। उनके पिता के रूप में अकबर दरबारी गायक 'रामदास' का उल्लेख किया जाता है। 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में सूर के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। वह इस प्रकार है -

सूरदास बड़े गायक थे वह जिस घाट पर निवास करते थे और विनय पद गाते थे महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन गीतों को पुस्तक रूप में पुष्टीमार्ग में विकसित किया और कृष्ण लीला

गाने की प्रेरणा दी उन्होंने कृष्ण लीला के सहस्त्राब्दी पद लिखे जिनकी प्रसिद्धि सुनकर देशाधिपति 'अकबर' उनसे मिले सूरदास अंधे थे और वे ईश्वर और गुरु में कोई अंतर नहीं मानते थे। उन्होंने 'परासोली' में अपने प्राण त्याग दिए। सूर की मृत्यु काल के संदर्भ में भी विद्वानों में मतभेद है लेकिन अधिकांश विद्वानों ने मृत्यु सन् १५८३ ई. स्वीकार करते हैं। उनके देहावसान के समय पर विठ्ठलनाथ ने शोकार्त होकर कहा था -

"पुष्टीमारग को जहाज जात हैं सो जाको कछु लेना होय सो लेई।"

सूरदास की शिक्षा को लेकर कोई उल्लेख नहीं मिलता वह गांव से चार कोस दूर रहकर पद रचना में लीन रहते थे और गान विद्या में प्रवीण थे। सूरदास वल्लभाचार्य के संपर्क में आने पर सख्य वात्सल्य और माधुर्य भाव की पद रचना करने लगे। सूरदास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण संबंधी रचित पदों की संख्या सवालाख बताई जाती है।

डॉ. दीनदयाल गुप्ता ने उनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों की सूचना दी है। जिनमें सूरसागर, सुरसारावली, साहित्य लहरी, सूर पच्चीसी, सूर रामायण, सूर साठी, और राधारसकेलि प्रकाशित हो चुकी है। सूरसागर और साहित्य लहरी उनकी प्रमुख कृतियां है। सूरसागर का आधार श्रीमद्भागवत है। भागवत के समान इसमें भी बारह स्कंद है। प्रथम स्कंद में विनयपद, भाया, अविधा, तृष्णा, भक्ति महिमा से भरा हुआ है। सूरसागर के दशम स्कंद के पूर्वार्ध में कृष्णजन्म, बाललीला, और भ्रमरगीत की रचना ४१६० पदों में की है। दशम स्कंद के उत्तरार्ध में जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, रुक्मिणी हरण, शिशुपाल वध, सुभद्रा-अर्जुन विवाह आदि का अंकन १४९ पदों में किया गया है। सूरदास का ग्रंथ सूर सरावली में ब्रज वर्णन, कृष्ण जन्म, पुतना वध, संकट भजन, भ्रमरगीत आदि प्रसंग है।

सूर की भक्ति पद्धति पुष्टिमार्गीय भक्ति है। और इस भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वयं अपने भक्तों का ध्यान रखते हैं। भगवान का अनुग्रह ही भक्तों का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है -

जा पर दिनानाथ ढरै।
सोई कुलीन बडौ सुंदर सोई जा पर कृपा करै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै।।

सूर पहले भक्त बाद में कवि थे। इसीलिए तुलसी के समान सुर में लोक संग्रह की भावना नहीं मिलती हैं। वे वस्तुतः कृष्ण में ही लीन हो चुके थे। सूरदास ने प्रेम और विरह के द्वारा सगुण मार्ग से कृष्ण को साध्य माना है। उनके कृष्ण सखा रूप में भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। विष्णु, हरी, राम आदि सब कृष्ण के ही नाम है। निर्गुण ब्रह्म के यह सगुण नाम है। वात्सल्य वर्णन के प्रथम कवि सूरदास है। सूरदास ने वात्सल्य का कोना - कोना झाँका है।

वात्सल्य के अंतर्गत दशा का वर्णन सूरदास ने किया है। तोतली बोली, माखन चोरी, माँ का बच्चों के लिए लोरी गाना आदि। माँ छोटे कृष्ण को झूठ-मुठ के प्रलोभन दिखाकर दूध पिलाती है, तब कृष्ण माँ को पूछते हैं -

munotes.in

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो"
"मैया कबहिं बढैगी चोटी।
कितिक बार मोहिं दूध पियत भइ, यह आज हूँ है छोटी।"

बलदेव द्वारा छेड़-छाड़ होने पर माँ को शिकायत करते हुए बाल कृष्ण -
"मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो
मोंसों कहत मोल की लिहनों तू ज सुमति कब जायौ।"

वात्सल्य सम्राट सूरदास की महानता पर आचार्य द्विवेदी लिखते हैं - "संसार के साहित्य के बाद कहना तो कठिन है परंतु क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जानना है परंतु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखी हुई बाल - लीला दुर्लभ है।"

सूर के श्रृंगार रस में रति स्थाई भाव का पूर्ण और अलौकिक परिपाक हुआ है। सूर की गोपियों में प्रेम के संस्कार पक्के हैं। 'वे भावना प्रधान हैं नंददास की गोपियों के समान वकील नहीं। वास्तव में सूरदास की राधिका शुरु से आखिर तक सरल बालिका है। सूर ने बड़ी सच्चाई के साथ प्रेमी ह्रदय में रति की उत्पत्ति, प्रिय मिलन की लालसा, प्रिय मिलन का हर्ष, साहस और उन्माद का ऐसा प्रभावोत्पादक चित्रण किया है कि, एकांगीपन खटकता नहीं। राधा और कृष्ण की युगल लीलाओं के वर्णन में सूर ने अपनी समस्त प्रतिभा और सफल काव्य कौशल का उपयोग किया है। यह सारी प्रेम कहानी अध्यात्मिक भूमि पर प्रतिष्ठित है उसमें आत्मा का उज्ज्वल प्रकाश है और सर्वत्र भक्ति रस है। राधा और कृष्ण के अप्रतिम सौंदर्य पर सभी को मंत्र मुग्ध किया हैं। इसमें प्रेम की उत्पत्ति आँखों में होती हैं -

औंचक ही देखति है राधा, नैन विसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बैनी पीठि रुलति झकझोरी
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन-नैन मिलि परी ठगोरी।'

सूरदास ने अपनी रचनाओं के लिए ब्रज भाषा का प्रयोग किया है, जो लोक प्रचलित भाषा थी। कृष्ण साहित्य के कारण ब्रजभाषा अत्यधिक विकसित हुई है उसमें सूर और नंददास का योगदान महत्वपूर्ण है। डॉ. गणपित चंद्र गुप्त कहते हैं - 'सूरदास और नंददास जैसे प्रतिभाशाली कवियों के हाथ में पड़कर ब्रज भाषा चमक उठी, उसका शब्द भंडार तत्सम एव तद्भव शब्दों से परिपूर्ण हो गया तथा उसमें व्यंजकता और प्रवाहशीलता के गुण आ गये। उनके ह्रदय की भाव धारा से अप्लावित होकर उसमें ऐसी मधुरता, कोमलता एवं स्निग्धता आ गई कि वह परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय हो गई। सूरदास ने अपनी रचना में छंदो का बहुमुखी प्रयोग किया है। 'सूरसागर' में कुछ स्थानों पर रोला एवं चौपाई का प्रयोग हुआ है। अलंकारों का भी प्रयोग सूर की रचनाओं में हुआ है। 'साहित्य लहरी', 'सूरसागर' में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है।'

नंददास -

अष्टछाप कवियों में सूर के बाद नंददास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि थे। नंददास का जन्म १५३३ ई. में हुआ था। नंद दास के चाचा आत्माराम थे जो तुलसीदास के पिता थे। तुलसीदास और नंददास ने शैशव काल में ही नरसिंह पंडित से संस्कृत भाषा का ज्ञान अर्जित किया था। नंददास भी तुलसी के साथ काशी चले गए और वहाँ शास्त्रों का अध्ययन किया। गोकुल में विठ्ठलनाथ से दीक्षा ली और इन्हीं दिनों सूर के संपर्क में आने पर सच्चे कृष्ण भक्त बन गए। जीवन के अंतिम दिनों में वे अपने गाँव गोवर्धन आ गए थे। इसी समय उनका १५८३ ई. में देहावसान हुआ। इनके द्वारा रचित ग्रंथो की संख्या पंद्रह बताई गई है। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार है अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बारहखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित, रुकमणी मंगल, भंवर गीत, रास पंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशम स्कंध भाषा, गोवर्धन दास लीला, नंददास - पदावली आदि। इनमें से रास पंचाध्यायी, भ्रमरगीत और सिद्धांत पंचाध्यायी इनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। नंददास के सभी ग्रंथ ब्रज भाषा में लिखे गए है।

गोस्वामी हित हरिवंश -

गोस्वामी हित हरिवंश का जन्म १५५९ ई. में मथुरा समीप दक्षिणबाद गाँव में हुआ। वे राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक थे। पिता का नाम केशवदेव मिश्र और माता का नाम तारावती था। यह जाति के गौड़ ब्राह्मण थे। हित हरिवंश ने केवल ८४ पदों की रचना ब्रज भाषा में अत्यंत सरल रूप में की है।

मीराबाई -

मीराबाई के जीवन वृत्त तथा गुरु के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। अनुसंधान के आधार पर यह निश्चित है कि उनका जन्म १५०४ ई. मेंडता के समीपवर्ती गांव कुड़की में हुआ। राठौड़ वंश की मेड़तिया शाखा के प्रवर्तक राव दूदा थे। उन्हीं के चतुर्थ पुत्र रतन सिंह की पुत्री थी मीरा। राव दूदा भी कृष्ण भक्त थे। मीरा को भी भक्ति के संस्कार उन्हीं से प्राप्त हुए थे। पारिवारिक वातावरण समाज में प्रचलित लोक गीत एवं यदा-कदा राज महलों में आने वाले सिद्ध सन्यासियों या रमते जोगियों के भक्ति में उपदेश ही मीरा की पाठशाला बने। लोकगीतों की मधुरता एवं राजसी कलाप्रियता ने उन्हें अनायास संगीत प्रेमिका बना दिया, तो साधु संगति के प्रभाववश उनका ह्रदय भक्ति एवं वैराग्य की और आकृष्ट हुआ, जिसकी अनुगूंज उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है। मीरा का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ। विवाह के ७ वर्ष पश्चात पति भोजराज का स्वर्गवास हो गया। विधवा हो जाने पर ससुराल में मीरा का भक्ति भाव में लीन रहना पसंद नहीं था। मीरा को कष्ट दिया जाने लगा। मीरा ने ससुराल को त्याग दिया और तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए वह वृंदावन पहुँची। कुछ दिन रहकर द्वारका चली जाती है, वहाँ कीर्तन करते हुए मीरा ने शेष जीवन व्यतीत किया। मीरा की पूर्ण अपूर्ण ग्रंथ संख्या बारह है। वह इस प्रकार है - गीतगोविंद, नरसी जी का मायरा, राग सोरठा का पद, राग गोविंद, सत्यभामाणु रुसणं, मीरा की गरीबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुंडी, चरित, स्फूटपद आदि।

कृष्ण भक्ति साहित्य की मीरा के साहित्य में अनुभूति की तीव्रता अधिक दिखाई देती है। कृष्ण भक्तों ने राधा गोपियों के माध्यम से अपने भक्ति भाव को अभिव्यक्त किया है। किंतु

मीरा कृष्ण को संबोधित करती है वह उसे पति के रूप में देखती है। कृष्ण के अलावा उसके जीवन में अन्य किसी को स्थान नहीं है। वह कृष्ण के वियोग का दरल झेलती रहती है -

'बिरहनी बावरी सी भई।
ऊँची चढ़ी अपने भवन में टेरत हाय दई।
ले अँचरा मुख अँसुवन पोंछत उधरे गात सही।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बिछुरत कछु न कहीं।।'

मीरा की रचनाओं में वीर रस के साथ-साथ शांत रस का भी प्रयोग मिलता है। मीरा के काव्य की भाषा राजस्थानी ब्रज भाषा है। उनके पदों में गुजराती का तथा खड़ी बोली और पंजाबी का भी प्रभाव दिखाई देता है। मीरा ने अपने पदों में छंदो और अलंकारों का भी प्रयोग किया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग उनकी काव्य रचनाओं में मिलता है।

रसखान -

रसखान के जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद है किंतु विद्वानों के अन्वेषण के आधार पर उनका जन्म १५३३ ई. माना जाता है। रसखान ने गोस्वामी विठ्ठलनाथ से दीक्षा ली थी। उनका सन १६१४ में लिखा गया काव्य 'प्रेम वाटिका' उनकी अंतिम कृति है। इसकी रचना के कुछ ही वर्ष बाद १६१८ ई. के आसपास उनका देहावसान हो गया।

रसखान की प्रमुख चार रचनाएँ प्रामाणिक मानी जाती है - सुजान, रसखान, प्रेम वाटिका, दानलीला, अष्टयाम आदि। उनका 'सुजान रसखान' में २७२ कविता, सवैया, दोहे हैं जिसमें भक्ति, प्रेम, राधा, कृष्ण की रूप माधुरी, वंश मोहिनी, एवं कृष्ण लीला संबंधी अन्य सरस प्रसंग है। 'प्रेम वाटिका' के ५३ दोहों में उन्होंने राधा - कृष्ण को प्रेमोद्यान के मालिन - माली मानकर प्रेम के गुढ़ तत्व का सूक्ष्म निरुपण किया है। 'दानलीला' में गोपी -कृष्ण संवाद है। 'अष्टयाम' के २६ दोहों में श्रीकृष्ण के प्रातः जागरण से रात्री शयन पर्यंत उनकी दिनचर्या एवं विभिन्न क्रियाओं का वर्णन है। रसखान की गणना भक्त कवियों में की जाती है। उन्होंने श्री कृष्ण के रूप पर मुग्ध गोपीका, राधा की मनः स्थिति के माध्यम से रसखान ने श्रृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है। उन्होंने श्री कृष्ण के बाल-रूप की माधुरी का वर्णन इस प्रकार किया है -

'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू कैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।'

१०.३ कृष्ण भक्ति काव्य धारा की प्रवृत्तियाँ

कृष्ण भक्ति संबंधी अनेक संप्रदायों का निर्माण इस काल में हुआ जैसे मध्वाचार्य का द्वैतवाद, विष्णु स्वामी का शुद्धाद्वैत, निंबार्क का निंबार्क संप्रदाय, पुष्टि संप्रदाय, चैतन्य गौड़ीय संप्रदाय, स्वामी हित हरिवंश का राधावल्लभ संप्रदाय, स्वामी हरिदास का सखी संप्रदाय आदि कृष्ण भक्ति संबंधित संप्रदाय प्रचलित है। इनमे श्रीकृष्ण का मानवीयकरण किया गया है। हिंदी में

कृष्ण भक्ति काव्य का आरंभ सामान्यतया विद्यापति से माना गया है। विद्यापति के चरित्र में मादक श्रृंगारी क्षेत्र अधिक है, जिसमें भक्ति का अभाव है।

कृष्ण काव्य में प्राण का संचार भरने का श्रेय महाकवि सूरदास जी को जाता है। सूरदास के द्वारा ही कृष्ण काव्य को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियों में कुंभनदास, परमानंद दास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास, सूरदास आदि तथा कवयित्री मीरा ने भी कृष्ण भक्ति शाखा के विकास में योगदान दिया है।

कृष्ण का स्वरूप -

सभी संप्रदाय के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण को ईश्वर का अवतार तथा कृष्ण को सर्वगुण संपन्न, सर्वशक्तिमान व सर्वदाता माना है। इन कवियों ने सर्वधा स्वीकार कर लिया है कि इस सृष्टि में सभी कुछ उनके द्वारा रचित है। उनका कृष्ण सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक है। श्रीमद्भागवत पुराण के कृष्ण भक्ति का मूल आधार होने के कारण कुछ स्थानों पर इन कवियों ने कृष्ण का वर्णन मानव रूप में किया है। तो कुछ स्थानों पर अवतारी रूप में किया है। मानव रूप में श्री कृष्ण नंद-यशोदा के पुत्र, ग्वाल बालकों के सखा तथा गोपियों के प्रेमी के रूप में प्रस्तुत हैं। भक्ति कालीन अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के इसी रूप के आधार पर काव्य रचना की है। बीच -बीच में यह कवि कृष्ण के अवतारी रूप का वर्णन भी करते हैं। ऐसे समय में वे कृष्ण को ब्रह्म मानकर उनका विराट रूप प्रस्तुत करते हैं, और उन्हें तीनों लोकों का स्वामी घोषित करते हैं।

कृष्ण की लीलाओं का वर्णन :

वात्सल्य और श्रृंगार के चित्रण में कृष्ण भक्त कवि अद्वितीय है। कृष्ण भक्त कवियों ने लीलाओं का गान किया है। इन लीलाओं के कारण कृष्ण भक्त कवियों का ध्यान कृष्ण के बाल एवं किशोर जीवन की ओर खींचा गया है। अखंड आनंद में जीवन की अध्यात्मिक परिपूर्णता की अभिव्यंजना करना लीला का मुख्य उद्देश्य रहा है। बाल गोपाल की फसल युक्त लीलाएँ सत्य रूप में लीलाएँ तथा माधुर्य भाव पूर्ण लीलाओं से संपूर्ण मध्ययुगीन कृष्ण काव्य भरा पड़ा है। कवि सूरदास नें कृष्ण के रूप में बालक की विभिन्न चेष्टाओं व क्रियाओं का चित्रण सहज स्वाभाविक ढंग से किया है। वास्तल्य रस कें अंतर्गत जितनी मनोदशाएँ क्रिडा तक उन सबका वर्णन कृष्ण भक्त कवि सूरदास जी ने किया है। सूरदास जी के कुछ उदाहरण दृष्टत्व है।

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो"

"मैया कबहिं बढैगी चोटी।

कितिक बार मोहिं दूध पियत भइ, यह आज हूँ है छोटी।"

सभी कृष्ण कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का सुंदर वर्णन किया है। ब्रज मंडल कृष्ण की लीला भूमि मानी जाती है। वहीं पर उन्होंने विभिन्न प्रकार की लीलाएं व क्रीड़ाएं की है। राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्ण की जिन लीलाओं का वर्णन कृष्ण भक्त कवियों ने किया है वह सब पुराणों पर आधारित है। उन सभी कवियों ने कृष्ण की बाल लीला, किशोर लीला और रास लीला का चित्रण किया है। आचार्य वल्लभाचार्य कहते हैं - 'लीला का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि लीला

ही स्वयं प्रयोजन है।' साथ ही सूरदास ने भी कृष्ण की बाल लीला का अत्यंत मनोहारी वर्णन करते हुए उन्होंने कृष्ण के रूप सौंदर्य एवं उनकी शारीरिक चेष्टाओं व लीलाओं का सरस, मनोरम व स्वाभाविक वर्णन किया है। सूर का प्रेम चित्रण, श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म अध्यात्म भावना, मानसिक विरासत एवं अत्यंत संयम से किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है - "लीलागान में भी सूरदास का प्रिय विषय था प्रेम। माता का प्रेम, पुत्र का प्रेम, गोप-गोपियों का प्रेम, और प्रिया का प्रेम, पति और पत्नी का प्रेम इन बातों से ही सूरसागर भरा है।" कृष्ण लीला भक्ति में विश्वास करते हैं।

विषय - वस्तु की मौलिकता -

यह तथ्य तो सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि कृष्ण काव्य का उपजीव्य ग्रंथ भागवत पुराण है। वल्लभाचार्य ने अपने शिष्यों को यह आदेश भी दिया है क वह भागवत के दशम स्कंध को आधार बनाकर कृष्ण लीला का वर्णन करें। इसीलिए कृष्ण भक्ति काव्य का मूलाधार श्रीमद्भागवत है। यह भी सत्य है कि, कृष्ण कवियों ने भले ही भागवत पुराण को अपने काव्य का आधार बनाया हो लेकिन फिर भी उनकी मौलिकता सर्वत्र देखी जा सकती हैं। भागवत के कृष्ण में ब्रह्मत्व और अलौकिकता का समावेश रहता है। किंतु हिंदी कवियों के कृष्ण में लौकिकता का प्राधान्य है और बहुत कम स्थलों पर अलौकिक वस्तुओं के दर्शन होते हैं। यहाँ कृष्ण बाल रूप में बाल लीलाएँ और युवा रूप में प्रणय लीलाएँ करते हैं। भागवत में राधा का कोई नाम उल्लेख नहीं है कृष्ण के साथ प्रेम करने वाले एक गोपी का वर्णन है। सूरदास तथा अन्य कवियों ने राधा की कल्पना द्वारा प्रणय चित्रण में अलौकिक भव्यता ला दी है। भागवत पुराण के कृष्ण निर्लिप्त हैं और वे गोपियों की प्रार्थना पर ही लीलाओं में भाग लेते हैं। लेकिन कृष्ण भक्ति काव्यों में कृष्ण स्वयं गोपियों की तरफ आकृष्ट होते हैं, और अपनी मनोहरी लीलाओं से उनका ह्रदय जीत लेते हैं। भागवत में कृष्ण की अनुपस्थिति में मदिरोन्मत बलराम गोपियों के साथ अभद्रसा व्यवहार करने लगते हैं। किंतु हिंदी भक्त काव्य में गोपियों के प्रेम की अनन्यता, दृढ़ता और एकनिष्ठता अचल रहती है। भागवत पुराण में सगुण पर निर्गुण की विजय का चित्रण किया गया है, जबकि कृष्ण काव्य में निर्गुण पर सगुण की विजय दर्शायी गई है। भागवत पुराण में कृष्ण को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है लेकिन कृष्ण काव्य में कृष्ण को एक सामान्य मानव के रूप में चित्रित किया गया है। अतः हम देखते हैं कि कृष्ण काव्य में सर्वत्र मौलिकता के दर्शन होते हैं।

भक्ति भावना -

भक्ति भावना की दृष्टि से कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास, कुंभनदास तथा मीराबाई का नाम उल्लेखनीय है। सूरदास जी ने वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ग्रहण कर लेने के पूर्व प्रथम रूप में भक्ति भावना की अभिव्यंजना की है।

'नाथ जू अब कै मोहि उबारो
पतित में विख्यात पतित हों पावन नाम तिहारों।।'

भक्ति भावना कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। कृष्ण कवियों ने यह भक्ति अनेक रूपों में अभिव्यक्त की है। वात्सल्य, सख्य, माधुर्य दास्य एवं दाम्पत्य भाव की भक्ति का प्राधान्य इस काव्य में मिलता है।

वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं एवं माँ यशोदा के ह्रदय की सुंदर झाँकी मिलती है। जब श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया जाता है तो वात्सल्य भाव जागृत होता है। लगभग सभी कृष्ण कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया है परंतु जैसा वर्णन सूरदास ने किया है वैसा वर्णन अन्य किसी ने नहीं किया इसलिए उन्हें वात्सल्य सम्राट भी कहा जाता है।

सख्य भाव के अंतर्गत कृष्ण और ग्वालों की जीवन संबंधी सरस लीलाएँ हैं। कृष्ण - सुदामा के प्रसंग व कृष्ण-ग्वालों के प्रसंग सख्य भक्ति के अंतर्गत आते हैं। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला प्रमुख है। इन कवियों ने दास्यभाव के विनय पर भी लिखे हैं। माधुर्य भक्ति के कारण इनके काव्य में श्रृंगार रस का सुंदर परिपाक हुआ है।

"जब तै प्रीति श्याम स्याम सौं किन्ही
ता दिन तै मेरे इन नैननि नैकहुँ नींद न लीन्ही।"

माधुर्य भाव को लेकर डॉ. गणपति चंद्रगुप्त ने लिखा है - 'माधुर्य भाव की उपासना को अपनाते हुए भी इन कवियों ने मीरा और सूरदास जैसे कुछ कवियों को छोड़कर अपने आराध्य के प्रति प्रत्यक्ष रूप में आत्म निवेदन एवं प्रणय निवेदन बहुत कम किया है वे प्रायः गोपियों के माध्यम से ही अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।' कहीं -कहीं दास्य भक्ति भी मिलती है। सूरदास जी ने एक स्थान पर कहाँ है -

"प्रभु हों सब पतितन को टीको
और पतित सब दिवस चारी के हों तो जन्मत ही को।"

कृष्ण काव्य में दाम्पत्य रति, वात्सल्य रति और भगवद् विषयक रति तीनो 'रति' भाव के प्रधान रूप उपलब्ध होते हैं। मीराबाई ने दांपत्य भाव की भक्ति की है। मीराबाई कृष्ण को अपने प्रेमी ही नहीं, अपितु पति के रूप में भी स्मरण करती है। वे मानती है कि वे जन्म-जन्म से ही कृष्ण की प्रेयसी रही हैं। वे प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन व उपालंभ के रूप में प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति करते हुए वह कहती है–

'देखो सईयाँ हरि मन काठ कियो
आवन कह गयो अजहूँ न आयो, करि करि गयो
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी कैसे करि मैं जियो
वचन तुम्हार तुमहीं बिसरै, मन मेरो हर लियो
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फारत हियो।'

भक्ति काव्य में नवधा भक्ति के विभिन्न अंगों का भी इसमें विधान मिलता है। कृष्ण भक्ति काव्य ही प्रेम प्रधान भक्ति में स्वकीया और परकीया दोनों प्रेमभावों को अपनाया गया है। 'कृष्ण भक्ति के सभी संप्रदायों में कांता भाव की भक्ति को अत्यंत महत्त्व है। निंबार्क संप्रदाय में स्वकीया भाव पर बल दिया है और चैतन्य संप्रदाय में परकीया प्रेम में माधुर्य भाव की चरम परिणति मानी गई है। आगे चलकर वल्लभ संप्रदाय में परकीया भाव की भक्ति का प्रचलन हो

गया। राधावल्लभ संप्रदाय में परकीया भाव की स्वीकृति है। मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों के भक्ति की निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन महत्वपूर्ण विशेषता है।'

वात्सल्य रस का चित्रण -

वात्सल्य रस के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं एवं माँ यशोदा के ह्रदय की सुंदर झाँकी मिलती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने सूरदास के वात्सल्य वर्णन की सराहना करते हुए कहा है कि, "यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृह्रदय का ऐसा स्वाभाविक सरल और ह्रदय ग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है।" श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन वात्सल्य भाव जागृत हो जाता है। बालकृष्ण की चेष्टाओं का सूक्ष्म और सजीव चित्रण जैसा सूरदास ने किया है वैसा वर्णन अन्य किसी ने नहीं किया इसीलिए उन्हें वात्सल्य सम्राट भी कहा जाता है।

वात्सल्य और श्रृंगार के चित्रण में कृष्ण भक्त कवि सूरदास का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं - 'सूरदास वात्सल्य का कोना कोना झाँक आए हैं।' मातृह्रदय की वेदना को जितनी गहराई से कवि सूरदास समझ सके हैं उतना कोई और नहीं समझ सका है। उन्होंने कृष्ण के बचपन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियाँ भी ऐसी चित्रित की है, मानो वे स्वयं वहाँ उपस्थित हों। शुक्ल आगे कहते हैं कि 'वात्सल्य का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखो से किया उतना किसी और कवि ने नहीं।' सूरदास जी ने कृष्ण की बाल छवि के रमणीय चित्रों के अतिरिक्त श्री कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं एवं विभिन्न क्रिडाओं के भी अत्यंत स्वाभाविक एवं मनो मुग्धकारी चित्र चित्रित किए हैं -

'मैया कबहूँ बढ़ेगी चोटि ?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।'
'मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मों सों कहत मोल की लीहनों तू जसुमति कब जायो।'
'मैया, मैं नहीं माखन खायो'

सूर का वात्सल्य केवल वर्णन मात्र नहीं है। जिन-जिन स्थानों पर वात्सल्य भाव प्रकट हो सकता था, उन सब घटनाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की गयी हैं। माँ यशोदा अपने शिशु को पालने में सुलाने के लिए झुला झूलाती और लोरिया गाती हैं -

'जसोदा हरी पालनै झुलावें।
हलरावै दुलराई मल्हावै, जोई-जोई कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै न आनि सुलावै।
तू काहे नहिं बेगहि आवै, तोरो कान्ह बुलावे।'

कृष्ण का शैशव रूप घटने लगता है तो माँ की अभिलाषाएं भी बढ़ने लगती हैं। उसे लगता है कि कब उसका शिशु उसका आँचल पकड़कर डोलेगा।, वे लिखते है -

'जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटुरूवनि रेगें, कब धरनी पग द्वैक धरै।'
'चलत देख जसुमति सुख पावै
ठुमकि-ठुमकि पग धरती रेंगत, जननी देखि दिखानै।'

सूरदास ने वात्सल्य संयोग पक्ष के साथ-साथ वात्सल्य वियोग पक्ष का भी सुंदर वर्णन किया है। जब कंस का बुलावा लेकर अक्रूर आते हैं तो कृष्ण व बलराम को मथुरा जाना पड़ता है। इस अवसर पर सूरदास ने वियोग का ह्रदय स्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। यशोदा बार-बार विनंती करती हैं कि कोई उनके गोपाल को जाने से रोक ले।

'जसोदा बार-बार यौं भाखें।
है कोई ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै।'

जब उधौ कान्हा का संदेश लेकर आते है, तो माँ यशोदा का ह्रदय अपने पुत्र के वियोग में रो देता है, वह देवकी को संदेश भिजवाती हैं।

'संदेशों देवकी सों कहियाँ।
हों तो धाय तिहारे सुत को कृपा करत ही रह्यो।।'

सूरदास ने कृष्ण की बाल लीला का अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है। उन्होंने कृष्ण के रूप सौंदर्य एवं उनकी शारीरिक चेष्टाओं व लीलाओं का सरस, मनोरम व स्वाभाविक वर्णन किया है।

प्रकृति वर्णन -

कृष्ण भक्ति साहित्य भावात्मक काव्य है इस काव्य में प्रकृति के मनोरम और अनुकूल भयानक और प्रतिकूल रूपों के चित्रण में कृष्ण भक्त कवियों ने अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। 'सूरदास का काव्य ब्रज प्रदेश की सुरम्य रमणीक स्थल है प्रकृति का रमणीक स्थल है। इसमें ब्रज की प्रकृति सुंदरी का मनोहरी नर्तन पद-पद पर दिखाई पड़ता है। उसकी रूप माधुरी स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ती है और उसका आनंदोल्लासपूर्ण मधुर कलरव प्रत्येक पद में गुंजायमान हो रहा है। सूरदास ने प्रकृति की रमणीक झांकी अंकित करते हुए उसके छह ऋतुओं में परिवर्तित होने वाले दिव्य सौंदर्य का अच्छा निरुपण किया है।'

कृष्ण कवियों ने ब्रजमंडल के प्राकृतिक सौंदर्य को अपने काव्य में स्थान दिया है। इन्होंने गोकुल, गोवर्धन, यमुना-तट आदि का सुंदर वर्णन किया है। प्रकृति का कोई भी सौंदर्य उनकी आँखों से नहीं छूटा। उसका अभूतपूर्व चित्रण इक कवियों ने किया है। भक्ति कालीन कवियों के प्रकृति चित्रण को लेकर डॉ. ब्रजेश्वरवर्मा लिखते हैं - 'दृश्य मान जगत का कोई भी सौंदर्य उनकी आँखों से छूट नहीं सका पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, जलाशय, वन, प्रांत, यमुना नदी तथा कुंज भवन की संपूर्ण शोभा इन कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में निःशेष कर दी है।' सूरदास ने प्रभात कालीन प्रकृति की रम्य एवं मनोहर झांकिया अंकित की है -

"जागिये ब्रजराज कुंवर कमल कुसुम फुले।
कुमुद वृंद संकुचित भृगलता भूले।।"

कृष्ण कवियों ने प्रकृति वर्णन में भी पर्याप्त रुचि ली है। इन कवियों ने प्रकृति के आलम्बनगत व उद्दीपनगत, दोनों रूपों का वर्णन किया है। कहीं-कहीं पर प्रकृति को दूती रूप व उपदेशक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। वियोग पक्ष में इन्होंने प्रकृति का उद्दीपनगत वर्णन किया है। विरहावस्था में प्रकृति विरहाग्नि को और भड़का देती हैं। इस विषय में सूरदास जी लिखते हैं -

'मधुवन तुम कत रहत हरे
विरह वियोग स्याम सुंदर के, ठाड़े क्यों न जरें।'

भक्ति रस -

संपूर्ण कृष्ण काव्य में एक ही रस है जिसे हम भक्ति रस कहते हैं। वैसे अनेक विद्वान भक्ति को रस नहीं मानते लेकिन भक्ति रस ही एक ऐसा रस है जो हमें कृष्ण कवियों की रचनाओं में सर्वत्र दिखाई देता है। वैसे इस काव्य में मुख्यतः श्रृंगार, वात्सल्य व शांत रस का परिपाक हुआ है। वीर रस, भयानक व अद्भुत रस बहुत कम मिलते हैं। सूरदास, नंददास, मीराबाई, रसखान आदि कवियों ने श्रृंगार रस के दोनों रूपों का सफलतापूर्वक अपने काव्य में प्रयोग किया है। मीराबाई की विरह वेदना के कारण उनका वियोग श्रृंगार संपूर्ण हिंदी साहित्य में बेजोड़ है।

रीति-तत्वों का समावेश -

कृष्णभक्ति साहित्य आनन्द और उल्लास का साहित्य है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में शृंगार वर्णन के साथ-साथ रीति तत्त्व का भी समावेश किया है। कृष्ण काव्य धारा के कुछ कवियों की रचनाओं में रीति-तत्वों का समावेश मिलता है। इस संदर्भ में सूरदास व नंददास का नाम उल्लेखनीय है। इन दोनों कवियों ने अपनी रचनाओं में नायक-नायिका भेद का वर्णन किया है। सूरदास जी की साहित्य लहरी में नायक-नायिका भेद का वर्णन है। साहित्य लहरी में सूरदास ने स्वयं को चन्दबरदाई का वंशज कहा है। नंददास की रूपमंजरी, रसमंजरी रचनाओं में नायक-नायिका भेद का वर्णन है। इन रचनाओं में नंददास ने नायिकाओं के नौ भेद तथा नायकों के चार भेद बताए हैं।

सूरदास के समय में विट्ठल जी ने श्रृंगार रस में उन्हीं के जैसा रीति परक ग्रंथ लिखा। उस समय चैतन्य-संप्रदाय में भक्ति को काव्यशास्त्र का सांगोपांग रूप देने के लिए भक्ति रसामृत सिंधु और उज्जवल नीलमणि की रचना हो चुकी थी। नंददास की रसमंजरी में नायिका भेद हाव-भाव, हेला, रति आदि का विस्तृत विवेचन है। रूपमंजरी में वयः संधि तथा प्रथम समागम आदि दशाओं का वर्णन है। अष्टछाप के अन्य कवियों में भी नायिका भेद के उदाहरण देखे जा सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इन कवियों ने अपने काव्य में रीति तत्वों का समावेश आवश्यक रूप में किया है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण -

कृष्ण भक्ति काव्य के कृष्ण महाभारत के नीतिकुशल, व्यवहारवादी योद्धा कृष्ण ना होकर वे बाल-गोपाल तथा सांवले, सलोने कृष्ण है। कृष्ण के साथ अन्य पात्र है - नंद-यशोदा, गोप-गोपी, जो कृष्ण के प्रति वात्सल्य और सख्य रूप में प्रेम को दर्शाते हैं। कृष्ण काव्य के पात्र प्रतिकात्मक है। राधा माधुर्य भाव की भक्ति का उच्चतम प्रतीक है। श्री कृष्ण परमात्मा है और गोपियाँ जीव आत्माएँ हैं वे निरंतर प्रेम से व्याकुल होकर पर्मानंदधाम कृष्ण में लीन होने के लिए व्याकुल रहती है।

प्रेम की अलौकिकता -

कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में प्रेम की आलौकिकता पर अधिक बल दिया है। उन्होंने ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का महत्व, आत्मचिंतन की अपेक्षा आत्मसमर्पण का महत्व इसमें स्थापित किया है। जिनका श्रृंगार रस चित्रण मधुर रस की कोटि में आता है तथा मधुर रस की स्थापना कृष्ण और राधा के प्रेम का उन्मुक्त चित्रण करने के लिए ही की गई है। कृष्ण भक्त कवियों ने रति जैसे प्रसंगों का भी वर्णन किया है। इस प्रकार के प्रसंगों में अध्यात्मिकता ढूँढ़ना व्यर्थ है। इस भक्ति परंपरा में श्रृंगार वर्णन के कई कारण मौजूद थे। एक तो मंदिरों का वातावरण विलास प्रधान होता गया। दूसरा अधिकारी वर्ग का दृष्टिकोण भी विलास उन्मुख हो गया था। इस प्रकार कृष्ण भक्ति साहित्य पर चैतन्य, हित हरिवंश, हरिदास तथा राधास्वामी संप्रदायों का गहरा प्रभाव रहा है।

काव्य रूप -

कृष्ण भक्ति काव्य में मुख्य रूप से मुक्तक का प्रयोग किया गया है। इन कवियों ने कृष्ण के जिस अंश को अपने काव्य के लिए चुना वह सर्वथा मुक्तक के उपयुक्त था। संपूर्ण कृष्ण काव्य में प्रबंध रचना बहुत कम पाई गई है। फिर भी कृष्ण के जीवन के किसी अंश की क्रमबद्ध कल्पना अवश्य मिलती है। सूरदास के काव्य में ब्रजभाषा द्वारा कृष्ण की संपूर्ण कथा देने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण की संपूर्ण कथा देने का प्रयास 'ब्रज विलास' में ब्रज रत्नदास ने किया है। कवि नंददास के भंवर गीत, रुक्मिणी मंगल और रास पंचाध्यायी आदि में कथात्मकता दिखाई देती है। इस दृष्टि से ही वृंदावन का साहित्य उल्लेखनीय है। इस काव्य पर गद्य का भी प्रभाव रहा है। वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता इसके प्रमाण है।

गीती तत्व -

कृष्ण भक्ति काव्य में कवियों ने मुख्य रूप से गीती शैली का प्रयोग किया है। इस काव्य में गीति शैली के सभी तत्व प्राप्त होते हैं। भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता तथा भाषा की कोमलता आदि तत्व विद्यमान है। इन कवियों को वैयक्तिकता के लिए कोई विशेष क्षेत्र नहीं था फिर भी इन्होंने गोपियों के माध्यम से वैयक्तिकता का कलात्मक रूप में समावेश कर लिया है।

कृष्ण भक्त कवियों में अनेक अभिव्यंजना शैलियों के दर्शन होते हैं। भाव व्यंजना की शैलियाँ सूरसागर में मिलती है। वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित अष्टछाप में सूरदास ही प्रमुखतः ते जहाँ भक्ति का एक अंग कीर्तन की परंपरा विद्यमान थी। सूरदास का सूरसागर प्रकारांतर में संगीत सागर भी है जहाँ प्रत्येक पद में एक निश्चत लय-सुर और नाद का विधान किया गया है।

कृष्ण भक्त कवियों में संगीतात्मकता का प्रभाव दिखाई देता है। सामवेद से लेकर आज तक संगीत का आरोह-अवरोह, सप्त सुरों का संगम, तथा लय, गीति, तान व आलाप आदि शास्त्रीय वस्तु होकर भी लोकानुरुप बदलती हुई, मध्यकालीन भक्ति साहित्य में सवेग प्रवाहित होती रही। संगीतात्मकता की यह प्रवृत्ति कृष्ण काव्य के पुष्टिमार्गीय कवियों में स्पष्ट देखी जाती है। संगीतात्मकता ने भाषाई सौंदर्य अत्याधिक विकसित हुआ है। सूर की संगीतात्मकता को लेकर डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं - 'सूर की कविता में संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मंदाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभव कर रहें हैं।' सूरदास की संगीतात्मकता के प्रति आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी लिखते हैं - 'आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन कर उठी, जिनमें सबसे ऊँची और सुरीली मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की थी।' सूरदास की अनेक पदों में संगीतात्मकता दिखाई देती है -

"ललन हौं या छवि उपर वारी।
बाल गोपाल लगौं इन नैननि रोग बलाई तुम्हारी।
लाटि लटकनि मोहन मसि बिंदु का
तिलक माल सुखकारी"

इस प्रकार गीतितत्व के अतिरिक्त कृष्ण भक्त कवियों का साहित्य शब्द शक्ति, अलंकार, काव्य गुण आदि सभी काव्य गुणों से संपन्न है।

ब्रज भाषा तथा अन्य भाषाओं का प्रयोग -

कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य रचना के लिए तत्कालीन वृंदावन में प्रचलित ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। समस्त कृष्ण भक्ति साहित्य ब्रज भाषा में विकसित हुआ है। श्री कृष्ण लीला के लिए भक्त कवियों ने ब्रजभाषा जैसी मधुर और सरल भाषा की आवश्यकता महसूस की। सूरदास व नंददास जैसे कवियों ने भाषा के रूप को इतना निखार दिया कि कुछ समय बाद यह समस्त उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बनी और यह आधुनिक काल तक साहित्य की भाषा बनी रही है। सूरदास और नंददास के भाषायी योगदान के लिए डॉ. गणपति चंद्रगुप्त कहते हैं - 'सूरदास और नंददास जैसे प्रतिभाशाली कवियों के हाथ में पड़कर ब्रजभाषा चमक उठी उसका शब्द भंडार तत्सम एवं तद्भव शब्दों में परिपूर्ण हो गया।' ब्रजभाषा समस्त उत्तरी भारत में साहित्य की भाषा के रूप में स्वीकृत की गई है। ब्रजभाषा ने बंगाल की भाषा को भी प्रभावित किया। सूर तथा रीतिकालीन देव, बिहारी आदि कवियों ने इस भाषा को जो सौंदर्य दिया है, वह समस्त हिंदी साहित्य में आज भी अद्वितीय है। यह आधुनिक काल तक साहित्य की भाषा बनी रही। ब्रज भाषा के अतिरिक्त कवियों ने अपनी-अपनी मातृ भाषाओं में भी कृष्ण काव्य की रचना की है। विद्यापति ने मैथिली भाषा में अपने भाव प्रकट किए है -

'सप्ति हे कतहु न देखि मधाई
कांप शरीर धीन नहि मानस, अवधि निअर मेल आई
माधव मास तिथि भयो माधव अवधि कहए पिआ गेल।'

मीरा ने राजस्थानी भाषा में अपने भाव प्रकट किए।

'रमैया बिन नींद न आवै

नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच हुलावै।'

अलंकार -

कृष्ण भक्ति काव्य में अलंकारों का अनूठा परिचय दिया गया है। कृष्ण भक्ति साहित्य में अलंकारों का सबसे अधिक प्रयोग सूरदास की रचनाओं में हुआ है और उनके पश्चात नंददास की रचनाओं में अत्याधिक प्रयोग हुआ है। सूरसागर में रूपक, उपमा, रूपकातिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इस काल के अन्य कवियों ने भी विभिन्न अलंकारों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। अलंकारों के दृष्टिकोण से इन कवियों ने शब्दालंकार और अर्थालंकार, दोनों प्रकार के अलंकारों का भी प्रयोग किया है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा यमक, श्लेष, अनुप्रास, वक्रोक्ति आदि इनके प्रिय अलंकार रहे हैं। अलंकार की दृष्टि से कृष्ण भक्ति काव्य संपन्न रहा है।

छंद -

कृष्णा भक्ति साहित्य की रचनाएँ प्रमुखतः पदों में की गई है। विभिन्न छंदो का उत्कृष्ट चित्रण इन कवियों ने किया है। इनमें दोहा और रोला चौपाई आदि छंदों का प्रयोग बहुत ही कलात्मक रूप में किया गया है। सूरदास ने कवित्त, चौपाई, कुंडलियाँ, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग किया है। तथा नंददास ने रूपमंजरी एवं रसमंजरी में दोहा, चौपाई का प्रयोग किया है। चौपाई, सवैया, कवित्त गीतिका आदि इनके प्रिय छंद है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि सभी कृष्ण कवियों ने गीति शैली को अपनाया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इनकी रचनाओं में गीतात्मकता, संगीतात्मकता, रागात्मकता आदि प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। इन कवियों ने अने पदों में विभिन्न राग-रागनियों का प्रयोग किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य परंपरा ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। कृष्ण भक्ति साहित्य आनंद और उल्लास का साहित्य है, इसमें सर्वत्र ब्रज रस की प्रधानता है जो अद्भुत और विलक्षण है। शुद्ध कलात्मक दृष्टि से यह साहित्य अनुपम है। भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण काल बनाने में कृष्ण काव्य परंपरा का विशेष योगदान है।

१०.४ सारांश

कृष्ण काव्य सरस काव्य के रूप में पाठक के मन को मोह लेता है। श्री कृष्ण के रूप का वर्णन बाल लीलाओं का वर्णन और अनेक छबियाँ जो पाठक के मन में कृष्ण के प्रति प्रेम और अनुराग की भावना जागृत कर देता है। सूरदासजी जैसे महान कवि जो दृष्टिहीन होते हुए भी श्री कृष्ण की बाललीलाओं का सचित्र वर्णन करते है और सभी का मन मोह लेते है। यही कारण है कि भक्तिकालीन काव्य में कृष्ण भक्ति काव्य अपनी सुंदर शैली से सर्वत्र छटा बिखेरे हुए है।

१०.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कृष्ण भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ लिखिए।

२) कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ पर प्रकाश डालिए।

३) निम्नलिखित पर टिपण्णी लिखिए।

अ) कवि सूरदास

१०.६ लघुत्तरी प्रश्न

१) अष्टछाप के संस्थापक कौन है ?

२) कृष्ण भक्तिकाव्यधारा के प्रमुख कवि कौन है ?

३) चर्तुर्भुजदास कौनसी काव्यधारा के कवि है ?

४) 'भक्तन को कहा सीकरी काम' किस कवि ने कहा है ?

५) 'साहित्य लहरी में सूरदास के कौनसे पद संकलित है ?'

६) 'दानलीला' और 'ध्रुवचरित' किस कवि की रचना है ?

७) श्री वल्लभाचार्यजी द्वारा लिखित सुबोधिनी टीका किस आधार पर लिखित है ?

१०.७ संदर्भ पुस्तके

१) हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव - डॉ. शशि अग्रवाल

२) भक्ति काव्य यात्रा - रामस्वरूप चतुर्वेदी

३) हिन्दी भक्तिकाव्य - रामरतन भटनागर

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-११

भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा :

११.० इकाई का उद्देश्य
११.१ प्रस्तावना
११.२ प्रासंगिक शब्द का अर्थ व स्वरूप
११.३ भक्तिकालीन कवियों के काव्य में सामाजिक परिप्रेक्ष्य
११.४ प्रेम की प्रमुखता
११.५ हिंदू-मुस्लिम एकता
११.६ नशा-पान का विरोध
११.७ सारांश
११.८ लघुत्तरीय प्रश्न
११.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न
११.१० संदर्भ ग्रंथ

११.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी : -

- 'प्रासंगिक' शब्द का अर्थ समझ सकेंगे।
- भक्तिकाल के कवियों ने अपनी वाणी के द्वारा जो लोक जागरण और लोक कल्याण का कार्य किया हे जिसका महत्व आज भी कम नहीं हुआ है क्यों ? यह जान सकेंगे।
- प्रेम सर्वोपरी है प्रेम की महत्ता को समझ सकेंगे।
- समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता का विरोध कर किस प्रकार अपनी लेखनी के माध्यम हिन्दु-मुस्लिम एकता पर भर दिया यह जान सकेंगे।
- नशा जो समाज के विनाश का कारण तब भी था और आज भी है। भक्तिकालीन कवियोंने नशे को किस प्रकार बहिष्कृत किया है यह उनके काव्य में परिलक्षित हुआ है यह जान सकेंगे।

munotes.in

११.१ प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय समाज में समाज को परिवर्तित करने तथा समाज में सुधार लाने के लिए, सामाजिक समन्वय तथा मानवता के प्रसार में संत-भक्त कवियों का बहुमुल्य योगदान रहा है। सामाजिक विकृतियों, कुरूपताओं, विषमताओं को दूर करने के लिए उन्होंने निःस्वार्थ भाव से मानव एवं जगत् कल्याण के मार्ग पर चलते हुए अपनी वाणी एवं वचनों द्वारा लोगों के अंतःकरण तक पहुँचकर मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए निरंतर आग्रही रहे है। मध्यकालीन भारतीय समाज में समाज को एक नई सही राह दिखाने वाले प्रहरी के समान संतो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संदर्भ नें डॉ. सहजवानी ने कहा है - "परोपकार करना, पर सेवा में जीवन अर्पित करना, आचरण की पवित्रता का सहज होकर पालन करना, मानव जीवनका दोष मुक्त करके परिष्कृत बनाने का प्रयास करना, यह संतो की संगत से संभव है, क्योंकि संत समाज के सच्चे प्रहरी होते हैं।" मानवीय पीड़ा की संवेदना को अभिव्यक्त करते हुए कबीर दास कहते है - 'कबीरा सोई पीर है जो जाने पर पीर'। अर्थात वही संत है, जो दूसरे की पीड़ा जानता है। कबीर के समान नरसी मेहता का भी मानना है कि वही वैष्णव है जो दूसरौं के दुःख को जानता है। वे कहते हैं - 'वैष्णव जन ते तैने कहिए, पीर पराई जाने रे'। संत रविदास ने भी ठीक ही कहा है 'रविदास सोई साधु भलो, जउ जानहिं पर पीर'। तुलसीदास के अनुसार दूसरे को दुख देने के समान कोई पाप नहीं है और दूसरे को सुख पहुँचाने के समान कोई पुण्य नहीं है। वे कहते हैं - 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीरा सम नहिं अधमाई'। इस तरह संतो ने मनुष्य की पीड़ा को दूर करने के लिए अपने भक्ति काव्य तथा वाणी के माध्यम से जन जागरण करने का प्रयास किया है।

११.२ प्रासंगिक शब्द का अर्थ व स्वरूप

'प्रासंगिकता' का मूल अर्थ है 'प्रसंग' जिसका अर्थ घटना, स्थिति, परिस्थिति आदि के रूप में लिया जाता है। व्याकरण में यह 'संज्ञा' है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. नगेंद्र के अनुसार 'सार्थक या प्रासंगिक आधुनिक समीक्षा का नवीन शब्द प्रयोग है, परंतु उसका अर्थ यह नहीं कि इसकी धारणा सर्वथा नई है। प्रासंगिकता का संबंध मुख्यतः पुराने साहित्य से होता है और वर्तमान युग के संदर्भ में पुराने साहित्य की सार्थकता या प्रासंगिकता का देखना लक्ष होता है।' पुराना साहित्य जिस समय लिखा गया उस समय के मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, मनुष्य की मानसिकता, समाज के लिए तो उपयुक्त थे ही आज भी वह उपयुक्त है या नहीं यह देखना ही प्रासंगिकता है। विगत युगों का साहित्य क्या आज हमारे मानसिक तत्वों के लिए उपयोगी है? क्या वह साहित्य समाज को आगे ले जाता है? या पीछे ढकेलता है? इन प्रश्नों का उत्तर ही प्रासंगिकता कहलाती है।

११.३ भक्तिकालीन कवियों के काव्य में सामाजिक परिप्रेक्ष्य

भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। भक्तिकाल में उच्च कोटी की काव्य रचनाएँ हुई है। इस काल का साहित्य अपने गुणों से परम शिखर पर पहुँच गया है। अज्ञान और भेदा-भेद को दुर कर ज्ञान रूपी प्रकाश की किरण लाने का कार्य इस काल में

भक्तिसाहित्य ने किया है। संतों ने लोकभाषा में काव्यरचनाओं को अभिव्यक्त करने के कारण जनमानस तक यह साहित्य पहुँचा। लोकमंगल की भावना से ही यह साहित्यरूपी कलश भरा हुआ है। यह काव्य संपूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए उपयुक्त है। समाज में स्थित मानसिक विकारों का निर्मूलन कर एक आदर्श समाज की स्थापना संतो ने की है। संतों ने धर्म, दर्शन, जीव, जगत, ब्रह्म आदि से संबंधित अपने विचार प्रस्तुत किए है। संतों ने भी विभिन्न विषम परिस्थितियों का सामना कर अपना कार्य किया है।

भक्ति काल एक महान जन आंदोलन काल है। मध्य काल में भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी दिशाओं में भक्ति का दीप प्रज्वलित हुआ, उसने अंधःकार के गर्त में समाज के समक्ष नए और उदात्त लक्ष्य प्रस्तुत किए और कोटि-कोटि हारे हुए दीन, दुर्बल जनों को आत्मसम्मान के साथ अपनी खुद की धरती पर खड़े रह सकने का साहस प्रदान किया। भारत के अन्य प्रदेशों में और उनकी भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं में लिखित भक्ति काव्य की अंतर धारा समान है। मानवीय एकता, सामाजिक समरसता और समन्वयता की भावना मध्ययुगीन भक्त कवियों की वाणी अखिल मानवता के प्रति इस दायित्व का बखूबी निर्वहन करती हैं, जो आज भी उपयोगिता पूर्ण लगता है। मध्ययुगीन संत कवि शंकरदेव, नरसी मेहता, अलम्मा प्रभु, संत बसवेश्वर तथा संत कबीर, जायसी, गुरु नानक, तुलसीदास, दादू, मलूक दास और सूरदास आदि, संत कवि ऐसे मानव मूल्य को प्रतिष्ठापित करते है जो सार्वदेशिक और सर्वकालिक है। आज भी इन मूल्यों की आवश्यकता समाज में महसूस हो रही है। इसलिए भक्तिकालीन काव्य आज भी प्रासंगिक लगता है।

मानवता ऐसा विचार और दर्शन है जो मानव मूल्यों और चिंताओं पर केंद्रित है। संसार के समस्त प्रगति का केंद्र बिंदु मनुष्य है मनुष्य के सर्वांगिण विकास में भौतिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक अध्यात्मिक प्रगति अपेक्षित है। व्यक्ति को अपने लिए नहीं बल्कि संपूर्ण समाज के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। मानव के उच्चतर मूल्यों दया, क्षमा, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, अहिंसा, त्याग आदि को मानवतावाद कहा जाता है। मानवतावाद वही है स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों के हित में कार्य करना। मानव अन्य लोगों के दुख दर्द का महसूस करें और उनकी सुखी जीवन के मार्ग में बाधक न बनकर उनके विकास और प्रगति पर बल दे।

शंकरदेव, नरसी मेहता, आलम्मा महाप्रभु, संत बसवेश्वर, संत कबीर, संत रविदास, गुरु नानक, संत तुलसीदास, दादू दयाल, इन महान संतों ने अपने हितों को समाज के हितों के साथ जोड़कर नारी समस्या, जातीयता, हिंदू-मुस्लिम एकता, बाह्याडंबर, मानवतावादी दृष्टि आदि महत्त्वपूर्ण समाजाभिमुख कार्य किए इसलिए यह सच्चे मानवतावादी माने जाते हैं।

भारतीय समाज में स्त्री का स्थान गौन रहा है। वह सदियों से शोषित, पीड़ित रही हैं। सामाजिक रूढि परंपराओं और सामंती युग की क्रूर जंजीरों में जकड़ी हुई थी। उस पर कई प्रकार के निर्बंध लगाए गए थे। उन्हें सती, बाल विवाह, दहेज, घूघंट, पर्दा आदि विभिन्न प्रथाओं का शिकार होना पड़ा था। तत्कालीन भारतीय समाज में संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से स्त्री को सामाजिक समता न्याय बंधन मुक्त करने का प्रयास किया है।

तत्कालीन समय में स्त्रियों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार, एवं विषमतावादी स्थिति को लेकर भी संत कवि चिंतित थे। गुरु नानक जी ने पुरानी धार्मिक एवं सामाजिक विचारधारा को

munotes.in

खत्म कर उसका विरोध करते हुए स्त्री के अधिकार के लिए अपनी आवाज उठाई और प्रखरता से डटकर उसका सामना किया। नानक जी ने समाज के ठेकेदारों को सवाल किया कि, जो स्त्री जिन राजा महाराजाओं को जन्म देती है, वे अगर यदि महान है, सम्मानजनक है, तो उनको जन्म देने वाली स्त्री कैसी बुरी हो सकती है? इस संदर्भ में गुरु नानक जी कहते हैं -

'भड़ि जंमीऐ भंडि निंमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।।
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।।
किऊ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान।।'[५]

श्री गुरु ग्रंथ में स्त्री को संगिनी, माता कहा गया है। गुरु नानक जी ने तत्कालीन स्त्रियों को समता का स्थान देकर उन्हें सम्मानित कर तत्कालीन समय में चल रही विभिन्न सती, बाल विवाह, दहेज, घूंघट, पर्दा आदि प्रथाओं का खंडन करते हुए विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन दिया।

इक्कीसवी सदी में भी महिलाओं की स्थिती वही है जो प्राचीन काल में थी। आज भले ही महिला देश के सर्वोच्च पद र आसीन होने से लेकर हवाई जहाज तक उड़ा रही हों, गणतंत्र दिवस में राजपथ पर सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व महिलाओं द्वारा किया जा रहा हो, देश के महत्त्वपूर्ण विभागों में भी महिलाएँ अधिकारी के रूप में अपनी सेवाएँ दे रही हों, लेकिन इसके बावजूद उनके साथ भेदभाव आज भी बदस्तूर जारी है। हमारे देश का कोई भी प्रदेश क्यों न हो, महिलाओं के साथ होने वाले अत्याचार से अछूता नहीं है। आज हम भले मंगल पर बस्तियां बसाने का ख्वाब देख रहे हों, लेकिन हकीकत यह है कि आज भी इस देश की आधी आबादी को किसी न किसी रूप में हिंसा का शिकार होना पड़ रहा है। ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी, संभ्रात परिवारों की महिलाएँ हो या सामान्य परिवार की, किसी न किसी रूप में महिलाएँ हिंसा का शिकार हो रही है। न तो परिवार में शादी-विवाह आदि में निर्णय लेने का उसे हक दिया जाता है और न ही अपनी पसंद का जीवनसाथी चुनने का उसे अधिकार होता है। यहाँ तक कि घर की सम्पत्ति, जायदाद आदि में भी महिलाओं को मालिकाना हक से वंचित रखने का प्रयास किया जाता है। यहाँ स्त्री मुक्ति का स्वर भी मुखर दिखाई देता है। स्त्री को प्रेम करने की स्वतंत्रता सूरदास की गोपियों की बोली में मुखर रूप से उजागर होती है। जैसे "ऊधौ मन नाहिं दस-बीस", "आयौ घोस बड़ौ व्योपारी", "काहे को गोपीनाथ कहावत" और "निरगुन कौन देस को बासी" आदि।

मीराबाई का काव्य तो सामंती व्यवस्था से स्वतंत्रता की छटपटाहट से कहीं आगे का काव्य ठहरता है। यहाँ मुक्ति का कठोर एवं कटु संघर्ष है, चाहे वह वेश-भूषा, रहन-सहन, मित्रता, प्रेम आदि के फैसले हो उन्होंने लीक से हटकर लिए और मुक्त होकर अपना जीवन जीकर एक अलग अनूठी चाल चली। मीरा कहती है - "राणा जी म्हानै या बदनामी लगे मीठी, कोई निंदों कोई बिंदो मैं चलूंगीं चाल अनूठी" भक्तिकाल में सामाजिक रूढ - परम्पराओं और सामंती युग की क्रूर जंजीरों से मुक्ति का स्वर भी मिलता है।

११.४ प्रेम की प्रमुखता

भक्ति कालीन भारतीय संत साहित्य में प्रेम की महत्ता को तत्कालीन संत कवि अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। इस काल में प्रेम जैसा मूल्य अधिक विस्तार पाता है। प्रेम कई स्वरूपों में निखरता है जितनी गहराई से इसे नापेंगे उतना ही यह निखरता जाता है:
"ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै - सी निकाई।"

सूफी कवियप्का प्रेम सर्वोत्तम मूल्य है। यहाँ प्रेम अलौकिक होकर भी लौकिक भूमि पर खड़ा है। लौकिक प्रेम होने पर भी उसमे स्वार्थ, अहंकार, कामवासना नहीं बल्कि प्रणय - भावना, मधुरता, साहस, शौर्य, संघर्ष, बलिदान आदि मानवीय - मूल्य समाहित है।

"पिउ सो कहहु संदेसड़ा, हे भौरा हे काग।
सो धनि विरही जरि मुई तेहिक धुआँ हम लाग।।"

और यही प्रेम रीतिकाल के रीतिमुक्त धारा के कवियों में भी देखने को मिलता है। यह प्रेम एकनिष्ठ, स्वच्छंद, संवेदनशील, पुरुष का विरह का करूण रूदन, आत्मनिवेदन वाला प्रेम है। घनानंद के अनुसार -

"अति सूधो स्नेह कौ मारग है, जहाँ नेकु सयापन बाँक नहीं।"
यहाँ साँच चले तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसांक नहीं।"

भारतीय समाज में जाति-पाति का बहुत ही प्रचलन रहा है। समाज का विभाजन वर्ण व्यवस्था के आधार पर चार वर्णो में किया गया है। वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि रहा है। निम्न जातियों को उनके अधिकारों से वंचित रखा गया था। सभी मनुष्य एक समान होने के बावजूद भी मानव - मानव में भेद उत्पन्न कर सामाजिक विषमता निर्माण की गई है। वर्ण व्यवस्था के कारण अस्पृश्यता ऊँच-नीच का जातिभेद अत्यंत विकराल रूप धारण कर चुका था।

मध्यकाल में कबीर, रविदास, नानक और दादू दयाल जैसे संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से लोक जागरण कर समाज को प्रगति की राह पर ले जाने का प्रयास किया है। यह संत निर्भीक सत्यवादी तथा विद्रोही समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, जातीयता, ऊंच-नीचता, अन्याय, अत्याचार आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का खुलकर विरोध कर समाज में एकता और समानता की बात कर मानवीय आदर्शो की स्थापना की है। संत कबीर मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेदभाव को खत्म कर वह मानव-मानव में एकता प्रस्तावित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र एक समान है। वे कहते हैं -

'एक बूंद एकै मलमुतर, एक, चाम एक गुदा।
एक ज्योति से सब उत्पना कौन ब्राह्मण कौन सुदा।।'

हौसला प्रसाद सिंह ने संत कबीर के संदर्भ में ठीक ही कहा है, "वे एक लोक कवि थे जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से जन सामान्य को जागृत किया था। वे लोगों में सामाजिक और आध्यात्मिक चेतना को विकसित कर मनुष्य-मनुष्य के भेदभाव और मत-मतांतरों को नष्ट करना चाहते थे। उन्होंने प्रत्येक को समझाया कि तुम्हारी जाति मनुष्य है और धर्म भी मानव है। शेष सभी मानव जाति के विकास में बाधक है।" मध्यकालीन संत कवियों में संत कबीर के समान संत रविदास का भी अपना अलग स्थान है। वे भी जाति विहीन एवं वर्ग विहीन समाज संरचना के संदेशवाहक रहे हैं। उनका मानना है कि मनुष्य की पहचान उसके वर्ण, धर्म, जाति, या रंग से नहीं बल्कि उसके गुणों से होनी चाहिए। वे कहते हैं -

'रविदास जनम के कारन, होत न कोउ नीच।
नर कू नीच करि डारी है, ओछे करम को कीच।'

अगर शूद्र भी ब्राह्मण की तरह विद्वान है तो उसकी पूजा करनी चाहिए। रविदास के समान गुरु नानक जी का भी वही मानना है कि उच्च जाति का अभिमान करना व्यर्थ है। वास्तव में ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म को पहचाने 'जाति का गरबु न करी अहु कोई। ब्रह्मु बिंदे सो ब्राह्मण होई।' कहकर वे आगे मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त जाति-पाति, ऊंच-नीच और भेदभाव का विरोध करते हुए वह कहते हैं -

'नीचा अंदरी नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिन के सांगे साथि वडिआ सिऊ किया रीस।
जिथै नीच समालिअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।।'

संत कबीर दास का उत्तरदायित्व निभाने वाले दादू दयाल ने भी मध्यकालीन समाज में व्यक्त जाति व्यवस्था को नकारा है -

'दादू कूल हमारे केशवा सगात सिरजन हार।
जाति हमारी जगत गुरु परमेश्वर परिवार।।'

कृष्ण भक्त कवि संत सूरदास भी जाति-पाति के भेदभाव की व्यर्थता को समझाते हुए कहते हैं - "कास्यो सुक श्री भागवत विचार। जाति-पाति कोउ पूछत नाहिं श्रीपति के दरबार।" जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर सामाजिक बुराइयों के निराकरण की ओर संकेत किया गया है। संत रज्जब दास लिखते हैं -

'हिंदू तुरक दून्यूँ जल बूँदा, कासू कहिए ब्राह्मण सुदा।
रज्जब समता ज्ञान विचारा, पंचतत का सकल पसारा।'

संत नामदेव भी जाति प्रथा के नामों पर सामाजिक विषमता को नकारा है।
'का करौ जाति का करौं पांती। राजाराम सेऊं दिन राती।।'

संत पलटू जी ने भी वर्ण व्यवस्था द्वारा मानव मानव में भेद कर ऊंची जाति द्वारा निम्न जाति का शोषण कर समाज का विभाजन किया गया। ब्राह्मणों की इस वृत्ति की निंदा करते हुए संत पलटू जी ने उन्हें खरी-खोटी सुनाई है -

"भलि मति हतल तुम्हार पांडे बम्हना।
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
जीव मारी कै काया पोखों, तनिको दरद न आई।
राम नाम सुनि जूडि अवै, पूजौ दुर्गा चंडी
लंबा टीका कांध जनेउ, बकूला लाति पखंडी
बकरी भेडा मछरी खायौ, काहे गाम बराई
रुधिर मांस सब एकै पांडे, थू तेरी बम्हनाई।।"

अतः मध्यकालीन संत कवियों ने अपनी विद्वता तथा विज्ञानवादी दृष्टि के माध्यम से जागरण कर समाज को प्रगति की राह पर ले जाने का प्रयास किया है। संत निर्भीक, सत्यवादी तथा विद्रोही समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, जातीयता, ऊंच-नीचता जैसी सामाजिक कुरीतियों का खुलकर विरोध किया और मध्यकालीन समाज में वर्ण विहीन एवं जाति विहीन समाज की स्थापना की जो आज भी प्रासंगिक है।

११.५ हिंदू-मुस्लिम एकता :

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों में बँटा हुआ है। धर्मो के नाम पर समाज का विभाजन तो हुआ ही है किंतु देवी - देवताओं का भी बंटवारा किया गया है। तत्कालीन समाज में हिंदू मुस्लिम एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे और आज भी दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने-अपने धर्म संबंधी नियम अधिक कठोर बनाए। हिंदू-मुस्लिम यह दोनों धर्म अपने-अपने धर्म का कट्टरता से पालन करने लगे। धर्म की इस कट्टरता के कारण मनुष्य एक दूसरे का गला घोटने लगा है। तत्कालीन परिस्थिति में हिंदू अपने विचारों एवं नियमों पर कट्टर थे उसी प्रकार मुस्लिम मुल्लाओं में भी यह विचार अधिक कठोरता पूर्ण देखा जाता है। हिंदू और मुस्लिम धर्म के नाम पर समाज का बटवारा हो चुका था जिसके कारण समाज में अशांति और अराजकता निर्माण होने लगी थी। यह सामाजिक विकास के लिए बाधक और हानिकारक है यह संत कबीर ने तुरंत पहचान लिया था।

'हमारे राम-रहीमा, कैसो अलह राम सति सोई।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै और न दूजा कोई।।'

दोनों धर्मो के लोगों को समझाया कि राम, रहीम, केशव, करीम एक ही है। यह कहकर दोनों को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की है। मध्यकालीन संत रविदास के अनुसार हिंदू और मुस्लिमों में कोई अंतर नहीं है दोनों एक समान है -

'हिंदू तूरक नहीं कुछ भेदा सभी मह एक रक्त और मासा।
दोऊ एकऊ दूजा नहीं देख्यों सोई रैदासा।'

संत रविदास के समान दरिया साहब ने भी हिंदू मुस्लिम एकता को स्वीकारा है। वे मनुष्य का विभाजन जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग में नहीं करना चाहते हैं उनके लिए सभी मनुष्य एक समान है वे कहते हैं -

'हिंदू तुरुक हमै एकै जाना, जो एह मानै सब्द निसाना।'

संत गरीबदास के विचारों कथनी-करनी में कोई भी ऊंच-नीच, बड़ा या छोटा नहीं है, हिंदू-मुसलमान आदि जाति भेद मनुष्य निर्मित है, छत्तीस कौम की एक ही जाती है और सब में वही एक ब्रह्म समान रूप से समाया हुआ है। राम रहीम में कोई भेद नहीं है। संत गरीबदास मानव एकता चाहते है यह निम्न पंक्तियों द्वारा देखा जा सकता है -

'गरीब इस मौले के मुलक में दोनों दीन हमार।
इक वामें इक दाहिनें, बीच बसे करतार।।'

इसी तरह धार्मिक एकता का प्रतिपादन करते हुए संत दादू दयाल कहते हैं -

"सब हम देख्या सोधि कर दुजा नाहीं आन।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान।।"

गुरु नानक के अनुसार सच्चा मुसलमान वही है जो धन के लोभ को उतार कर फेंके। पैगंबर के उपदेश पर विश्वास रखें, मृत्यु के भ्रम को दूर करें, खुदा की रजा को कबुल करें, अपने अहंकार को त्याग कर सब जीवों पर दया करें आदि है। इस संदर्भ में गुरु नानक कहते हैं

"मुसलमाणु कहावणु मुसकलु, जो होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकल मालु मुसावे।
हेई मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै।
रब की रजाई मने सिर ऊपरि करता मने आपु गवावै।
तउ नानक सभ जीआ मिहरंमति होईत मुसलमाणु कहावै।"

वर्तमान समय में हिंदू और मुस्लिम के बीच में संघर्ष की स्थिति आज भी है जिसका परिचायक हिंदुस्तान और पाकिस्तान है। पर आज भी हम मंदिर और मस्जिद के नाम पर राजनीति की देखते है। दंगे फसाद करवाए जाते हैं। तत्कालीन समय में संत कवियों ने हिंदू-मुस्लिम को एक ही ईश्वर की संतान मानकर सांप्रदायिक एकता प्रस्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आज हिंसा से युक्त इस परिवेश में संतो के विचार आज भी प्रासंगिक है।

भक्ति कालीन समय में मनुष्य अज्ञान वश ईश्वर प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्गो पर भटक रहा था। धर्म के नाम पर आडंबर रचा जा रहे थे। मनुष्य द्वारा किए जाने वाले बाह्याचार, तिलक, स्नान, चौका, तिथि, मुहूर्त, पाषाण पूजा, तीर्थ यात्रा, मृतक संस्कार, जप, तप, होम-हवन आदि का विरोध कर संतों ने एकसा आचरण सिखाया और धार्मिक रीति रिवाज, कर्मकांड, बाहरी आडंबर और पाखंड का बोलबाला, धर्म की आड़ में अनेकानेक कर्म, आदि का विरोध कर ऐसे रस्मों को भस्म करना ही उन्होंने उचित समझा है।

गुरु नानक जी कहते हैं -

"जालउ ऐसी रीति जितु मैं पिआरा बीसरै।
नानक साई भली परीति थी जितु साहिब सेती पति रहै।"

कर्मकांड के संदर्भ में गुरु नानक जी का कहना है कि यदि हमारा माया से संबंध नहीं टूटता है, तो यज्ञ करना है व्यर्थ है। वैसे सतगुरु के ज्ञान द्वारा अंतर्मन में ही ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। तो उसके लिए योग आदि की कोई आवश्यकता नहीं है इस संदर्भ में वे कहते हैं -

'जोगु न भगवी कपड़ी जोगु न मैले वेसि।
नानक घरि बैठिआ जोगु पाईअै सतिगुर कै उपदेसि।'

आज हम देखते हैं कि सर्वत्र बाबाओं का बोलबाला है अपनी वेशभूषा बनाकर लंबी जुटा बढ़ाकर माला फेरते हुए ढोंग रचाते हम देखते हैं। तत्कालीन समय में ऐसे बाबाओं को संत कबीर उसके झूठे पाखंड को लेकर कहते हैं -

'माला फेरी तिलक लगाता, लंबी जुटा बढ़ाता है।
मन में तेरे कुफिर कुठारी यू न साहिब मिलता है।।'

संत कबीर के समान संत कवि सुंदर दास भी इस पाखंड को उजागर करते हुए कहते है -

"अवधू भेष देषि जिनी भूलै,
जब लग आतम दृष्टि न आड्र, तब लग मिटै न सूलै।
मुद्रा पहरी कहावत जोगी, युगति न दीसे हाथा।
वह मागर कहुं रह्यौ अनत ही, पहुँचे गोरक्षनाथा।
मूंड मूंडाई तिलक सिर दीयो, माला गरै झुलाई।
जो सुमरनि कीनो सब संतनि, सौ तौ षबरी न पाई।"

तीर्थ यात्रा के लिए मनुष्य समय और धन को बर्बाद कर चला जाता है अगर वह हिंदू है तो कैलाश यात्रा करता है। अगर वह मुस्लिम हैं तो वह मक्का मदीना जाता है। विभिन्न जाति तथा धर्म के लोग अपने-अपने तीर्थ स्थानों मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, भटक रहे है। विभिन्न तिर्थस्थलों पर जाकर ईश्वर को ढुँढणे का प्रयास करते है। संतों का मानना था कि ईश्वर को पाने के लिए हमें कही जाने की आवश्यकता नहीं है वह हमारे ह्रदय में वास करता है। हम अपनी आचरण शुद्धता से ही ईश्वर को प्राप्त कर सकते है। भक्ति कालीन सभी संत कवियों ने तीर्थ यात्रा को बाह्याडंबर माना है। अंतर्यामी ईश्वर की खोज करते हुए संत दादू कहते हैं -

"दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जाहिं।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही मांहि।।"

संत दाटू के समान संत रविदास ने भी तीर्थ यात्रा को नकारा है वे कहते है -

'का मथुरा का द्वारका का काशी हरिद्वार।
रैदास खोजा दिल अपना तह मिलिया दिलदार।'

कबीर के अनुसार ईश्वर को कहीं और ढूंढ़ने की जरूरत नहीं है वह तो अपने ही पास होता है उसे आप अगर तलाश होगी तो एक पल भर में आपको मिल सकता है -

"मोको कहां ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं मंदिर ना मैं मस्जिद ना काबे कैलाश में।।"

दरिया साहब के अनुसार तीर्थ स्थलों में ही ईश्वर सीमित नहीं है बल्कि वह सर्वत्र व्याप्त है। यदि भक्तों को सद्‌गुरु का मार्गदर्शन और सहयोग प्राप्त हो जाए तो इस तरह भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। तीर्थ यात्रा के बजाय सद्‌गुरु गुरु महिमा को महत्व देते हुए वह कहते हैं -

'सत्त पुरुष सत लोकहि डेरा, काया कबीर करहिं जग फेरा।'

गंगा स्नान को लेकर संत कबीर कहते हैं अगर हमारा अंतर्मन शुद्ध नहीं है तो बाहरी शुद्धता कुछ काम की नहीं है। हमारा अंतर्मन ही निर्मल होना चाहिए। अगर ऐसा होता तो मछली तो जीवन भर पानी में ही रहती है फिर भी उसकी बास नहीं जाती है -

'न्हाए धोए क्या हुआ, जो मन का मैल न जाए।
मीन सदा जल में रहें, धोय बास न जाए।।'

मूर्ति पूजा का बोलबाला आज सर्वत्र दिखाई देता है। धर्म के ठेकेदार कर्मकांड की प्रवृत्तियों के माध्यम से अपनी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आडंबर रचे जा रहे थे। ईश्वर नाम की माला जपना, बाल बढ़ाना, मुंड-मुंडाना आदि, ऐसे समाज के पाखंडियों को कबीर ने नहीं छोड़ा है। मूर्ति पूजा या पत्थर पूजा के जरिए अंधविश्वास में फंसकर लोग भगवान के पूजा, सेवा, नियमित व्रत, करने में व्यस्त थे संत कबीर ने इसे 'पूजा-सेवा-नेम-वृत्त, गुड़ियन का सा खेल।' कहकर उस पर व्यंग किया है। संत कबीर आगे मूर्ति पूजा के संदर्भ में वह कहते हैं -

'पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजु पहाड़।
याते ये चक्की भली, पीसि खाय संसार।।'

संत कबीर ने मूर्ति पूजा को लेकर कड़ा विरोध किया है उनका मानना है कि मनुष्य पत्थर के मूर्ति बनाकर उसकी पूजा-अर्चना करता है और अपना समय अपने आकांक्षा के लिए आत्म सम्मान के लिए अपना समय बर्बाद करता है पूरा संसार पत्थर के मूर्ति को ईश्वर मानकर पूजता है

"पाहुन कु का पूजिए, ये जनम न देई जाव।
आंधा नर आसा मुषी योंही खावै आव।।"

छापा तिलक लगाकर मुंडन करने वाले ढोंगी साधुओं की निरर्थकता पर उन्होंने अपनी वाणी द्वारा व्यंग्य किया है -

'माला तिलक लगाय के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ांय के, चले चुनी के साथ।।'

संत कबीर के समान देवता वाद का खंडन करते हुए दादू दयाल ने भी कहा है -
"ब्रह्मा का वेद विष्णु की मूरति, पूजै सब संसारा।
महादेव की सेवा लागै, कहां हैं सिरजन हारा।।"

दरिया साहब ने विधि पूर्ण पूजा, नृत्य और गान युक्त अर्चना आडंबर पूर्ण व्रत और नियम आदि को खटकर्म कहकर इसका खंडन किया है। उन्होंने अपने समय के हिंदू पुजारियों को आंख मूंदते घड़ी -घंट बजाते 'बाजीगर' के समान भेष बनाते और ढोंग करते देखा था। वे कहते हैं -

'मूंदही आँखि बजावहिं घंटा, जेवं बाजीगर खेलहि बंटा।
ऐसो पाखंड करै बनाई, बाउर लोग सब करै बडाई।।'

भक्तिकाल सामंती काल था। सामंती सामाज व्यवस्था में मूल्य और समाज दोनो का द्वंद्वात्मक संबंध है। समाज में अनेक तरह के परिवर्तन तो आए लेकिन सामाजिक मूल्यों में कोई बदलाव देखने को नहीं मिला। समाज उन्हीं पुरानी मान्यताओं, कुरीतियों से मुक्त नहीं हो पा रहा था। अन्याय, अराजकता, बहुदेववाद, कर्मकाण्ड, बाह्याडम्बर की स्थिति इतनी बढ़ गई थी कि मध्यकालीन समाज कलिकाल में तब्दील हो रहा था। कबीर, रैदास, धन्ना, गुरु नानक देव, तुलसीदास, मीरा जैसे संतो और कवियों ने मानवीय मूल्यों (प्रेम, सहिष्णुता, मधुरता, करूणा, अहिंसा, अहंत्याग, सत्संग, समानता, और सत्य आदि) की रचना और प्रतिष्ठापना पर जोर दिया। कबीरदास ने अहिंसा का समर्थन करते हुए जीव हत्या का विरोध किया है वो कहते हैं कि:

"दिन को रोजा रखत है रात हनत है गाय
यहां खून वहां बंदगी कैसे खुशी खुदाय"

देवी देवताओं के लिए तथा ईश्वर प्राप्ति के लिए प्राणियों की बलि दी जाती है। मनुष्य अपनी मन्नतों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्राणियों की बलि चढ़ाता है। इस प्राणी हिंसा को लेकर संत रविदास कहते हैं -

'रविदास मूंडह काटि करि, मूरख कहत हलाल।
गला कटावहू आपना, तउ कर होईही हाल।।'

आज वर्तमान समय में चारों ओर धार्मिक कर्मकांड का तथा पाखंडता दिखाई दे रही है हिंदू धर्म मैं ईश्वर प्राप्ति के नाम पर तीर्थ यात्रा, जप, तप, व्रत, उपवास मूर्ति पूजा की जा रही है। मनुष्य सत्य के रास्ते से हटता जा रहा है। हिंदू-मुस्लिम धर्म के तथाकथित ठेकेदार बाह्याचार की कर्मकांडी प्रवृत्तियों द्वारा अपने धर्म की व्यवस्था को कठोर से कठोर बनाते जा रहे हैं। धर्म और ईश्वर के नाम पर समाज का रूप बिगड़ता जा रहा है। आज वर्तमान समय में भी संत भक्त कवियों की विचारधारा की आवश्यकता महसूस हो रही है।

अहंकार हमारे व्यक्तित्व विकास में बाधक है हर मनुष्य अहंकार में अंधा हो जाता है अहंकार का खंडन करते हुए संत कबीर कहते हैं -

'जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नहीं।'

संत कबीर कहते हैं कि हमारे व्यक्तित्व विकास के लिए निंदा करने वाले को अपने पास रखना चाहिए क्योंकि वह बिना पानी बिना साबुन के स्वभाव निर्मल करता है। हमारी कमियों को दिखाकर व्यक्तित्व में निखार लाता है।

निंदक निया राखिए, आंगन कुटी समाय
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय।।

संत कबीर के समान संत रविदास भी कहते हैं
'पर निंदा सम नहीं अधमाइ, कहि रैदास मुनि सब गाई।।'

आज वर्तमान समय में मनुष्य बहुत ही स्वार्थी बन गया है। लोभ, मोह, माया ने उसके अंदर घर बना कर रखा है। उसे जितना चाहिए उतने में खुश नहीं होता है वह और पाना चाहता है। अपनी कई पीढ़ियों के लिए वह जमा कर रखना चाहता है। इस तरह अपने जीवन में अशांति फैलाता है।

संत कबीर का मानना है कि, मनुष्य को स्वार्थ वृत्ति को त्याग कर अपने लिए जितना चाहिए उतने में ही आनंदित रहना चाहिए तभी तो सभी को समान अवसर प्राप्त हो जाएंगे। वे कहते हैं -

साई इतना दीजिए, जा में कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय।।

मनुष्य दूसरों में दोष ढूंढना चाहता है किंतु खुद का आत्म विश्लेषण नहीं करता है कबीर का कहना है कि हमें अपनी कमियों को दूर करके ही आगे बढ़ना चाहिए दूसरों में झांकने से अच्छा है कि खुद को देखें अपनी गलतियां सुधार कर अपने को संवारने की आवश्यकता है।

'बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझसे बुरा न कोय।।'

रविदास जी के अनुसार वही साधु सच्चा होता है जो सब की पीड़ा जान सकता है और औरों की पीड़ा।

"रविदास सोई साधु भलो, जउ जानही पर पीरा।
पर पीर कहु पेखि के रहने सदा ही अधीर।।"

अपरिग्रह का अर्थ है कोई भी वस्तु संचित ना करें धन संचय को लालच, ईर्ष्या, स्वार्थ और बढ़ती वासना के एक संभावित स्त्रोत के रूप में माना जाता है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए पर्याप्त भोजन करना होता है इससे अधिक संचय करना अयोग्य माना क्योंकि इससे शोषण की प्रवृत्ति बढ़ती है और नैतिकता नष्ट हो जाता है।

आज बाजारवाद के दौर में हमें चारो और तथा सारे नाते रिश्तों में सिर्फ स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आता है। इसक समय ऐसा था जब हमारे यहां मूल्यों को अत्याधिक महत्व दिया जाता था। पर आज स्वार्थ की अंधी दौंड में हम सिर्फ भागे ही जा रहे है। इस विषय में संत कबीर कहते हैं -

munotes.in

"स्वारथ को सब कोउ सगा, जग जगला ही जांणि
बिन स्वारथ आदर करे, सौ हरि की प्रीति पिछांणि।।"

कबीर ने मनुष्य की धन-संचय की स्वार्थी प्रवृत्ति पर भी आक्षेप लिया है। आज समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानव मूल्य न होकर केवल धन होता जा रहा है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है। प्रत्येक मनुष्य धन के पीछे बेलगाम घोड़े की तरह दौड़ रहा है। फलतः किसी के भी मन में 'समाधान' नदारद है। संत रैदास धन को झूठी माया घोषित कर धनसंचय को दुख की खान कहा है -

'सच्चा सुख सत्त धरम मंहि, धन संचय सुख नाहि।
धन संचय दुख खान है, 'रैदास' समुझि मन माहिं।।'

आज वर्तमान समय में मनुष्य अपना ईमान बेच कर पैसो के पीछे भाग रहा है नाम शोहरत इज्जत पाने के लिए बेचैन हो उठा है इस धन संचय को लेकर संत नामदेव कहते हैं - 'जैउ मधुमाखों संचै अपार, मधु लीनो मुखी दीनी छारू।' मधुमक्खी मधु का संचय करती है किंतु वह उसका उपयोग नहीं ले पाती है। संत कबीर का भी कहना है कि मनुष्य को संग्रह वृत्ति को त्याग कर परोपकार की वृद्धि का अनुसरण करना चाहिए। संत कबीर कहते हैं -

'साई इतना दीजिए, जा में कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय।।'

संत तुलसीदास के अनुसार लोक व्यवहार में स्वार्थपरता सर्वत्र परिलक्षित होती है। इससे सावधान रहना आवश्यक है - 'स्वारथ लागगि करहिं सब प्रीति'। संत तुलसीदास भ्रष्टाचारियों को फटकारते हुए कहते हैं - 'अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहीं काना।' रहीम की दृष्टि भी इस तथ्य से सुपरिचित है वे लिखते हैं -

काज परै कुछ और है, काज सरै कुछ और।
रहिमन भंवरी के परै नहीं सिरावत मौर।।

कबीर कहते हैं हे मनुष्य तुम्हारे पास जो वैभव है ऐश्वर्या उस पर तुम व्यर्थ गर्व करते हो

"कबीर कहा गरबियों ऊंचे देखि आवास।
काल्हि पूर्यववै लेटना ऊपरि जामें घास।।"

कबीर कहते हैं हे मनुष्य तुम्हारे पास जो वैभव है ऐश्वर्या उस पर तुम व्यर्थ गर्व करते हैं

"कबीर कहा गरबियों ऊंचे देखि आवास।
काल्हि पूर्यववै लेटना ऊपरि जामें घास।।"

वर्तमान समय में समाज में धन संचय की वृद्धि बढ़ रही है। भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी जमाखोरी बढ़ती जा रही है। जिसके कारण शोषण की प्रवत्ति बढ़ रही है। और मनुष्य की

munotes.in

नैतिकता खत्म होती जा रही है। भौतिकता वादी इस परिवेश में संतो के विचार आज भी प्रासंगिक है।

मानवतावाद ऐसा विचार और दर्शन है जो मानव मूल्यों और चिंताओं पर केंद्रित है। संसार के समस्त प्रगति का केंद्र बिंदु मनुष्य है मनुष्य के सर्वांगीण विकास में भौतिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक आध्यात्मिक प्रगति अपेक्षित है। व्यक्ति को अपने लिए नहीं बल्कि संपूर्ण समाज के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। मानव के उच्चतर मूल्यों दया, क्षमा, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, अहिंसा, त्याग आदि को मानवतावाद कहा जाता है। मानवतावाद वही है स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों के हित में कार्य करना। मानव अन्य लोगों के दुख दर्द को महसूस करें और उनकी सुखी जीवन के मार्ग में बाधक न बन कर उनके विकास और प्रगति पर बल दे।

शंकरदेव, नरसी मेहता, आलम्मा महाप्रभु, संत बसवेश्वर, संत कबीर, संत रविदास, गुरु नानक, संत तुलसीदास, दादू दयाल, इन महान संतों ने अपने हितों को समाज के हितों के साथ जोड़ कर नारी समस्या, जातीयता, हिंदू - मुस्लिम एकता, बाह्याडंबर, मानवतावादी दृष्टि आदि महत्वपूर्ण समाजाभिमुख कार्य किए इसलिए यह सच्चे मानवतावादी माने जाते हैं।

मानव मूल्यों में प्रेम का स्थान सर्वोपरि है। अगर नफरत की व्याधि को दूर करना है तो प्रेम के अमृत लेप की आवश्यकता होती है। अगर प्रेम में एक बार प्रेम के पय-कलश में वैमनस्य की खटास पड़ जाए तो उसमें पहले जैसा स्वाभाविक स्वाद नहीं बचता है। प्रेम के रेशमी धागे को तोड़ना कदापि उचित नहीं है। रहिमन कहते हैं -

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना मिलै, मिले गाँठ परी जाय।।

मानवीय प्रेम को महत्व देते हुए हैं संत कबीर भी कहते हैं प्रेम के केवल ढाई अक्षर पढ़ने से आप पंडित हो सकते हैं -

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
'ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।'

अपनी वाणी से अपने विचारों से बातों से या कठोर शब्दों से दूसरों को दुखी नहीं करना चाहिए।

'ऐसी वाणी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।'

संत कबीर के अनुसार शीलवान मनुष्य के अलावा कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता। जिस प्रकार सोने की खान में सोना खत्म नहीं होता उसी प्रकार शीलवान मनुष्य अच्छे विचारों की खान होते है।

'सीलवंत सबसे बड़ा, सब रतन की खाणी।
तीन लोक की संपदा, रही सील आनी।।'

munotes.in

सदियों से चली आई शोषण की प्रवृत्ति आज भी हमारे समाज में शोषक और शोषित जिन दो वर्गो में समाज का विभाजन हो गया है। शोषितों का कई प्रकार से शोषण हो रहा है। उनके प्रति करुणा का भाव व्यक्त करते हुए संत भक्त कवियों ने उसका विरोध किया है। कबीर कहते हैं -

'दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
बिना जीवन की स्वांस से लौट भस्म हो जाए।'

संत कबीर के समान रविदास जी समाज की मंगल कामना के अग्रही है। वे समतामूलक समाज की संकल्पना करते हुए कहते हैं -

'ऐसा चाहूँ राज मैं, जहां मिले सबन को अन्न।
छोटे बड़े सम बसें, रविदास रहे प्रसन्न।।'
संत रविदास कहते हैं -
पर पीड़ा अति अधम वाणी, परहित सरिस धरम नहीं आनि।

'दीन दुखी करि सेव महि, लागि रहयो रविदास।
निसि बासर की सेव सी, प्रभु मिलन की आस।।'

तुलसी का रामराज्य समानता पर आधारित समाज है
'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नाहिं कोई अबुध न लक्षण हीना।'

यह रामराज्य समानता और प्रेम पर आधारित समाज की परिकल्पना करता है।

संत गरीबदास मानव एकता चाहते है यह निम्न पंक्तियों द्वारा देखा जा सकता है -

'गरीब इस मौले के मुलक में, दोनों दीन हमार।
इक वामें इक दाहिने, बीच बसे करतात।'

संत कबीर सामाजिक संघर्ष दूर कर सामाजिक एकता, विश्वास, प्रतिष्ठा कर सामाजिक संघर्ष को दूर करते हुए सामाजिक एकता के लिए प्रेरित करते हैं वे कहते हैं कि जीवन में सबको एक बार अवसर मिलता है कुम्हार मिट्टी रौंदकर घड़ा बनाता है, घडा टूटकर मिट्टी में विलीन हो जाता है। कुम्हार तथा हर मनुष्य एक दिन मिट्टी हो जाता है। इसलिए छोटे-बड़े के भेद को तथा शोषण की मनोवृत्ति को नकारते हुए सामाजिक एकता को प्रस्थापित करना चाहते हैं। संत कबीर कहते हैं।

'माटी कहे कुम्हार से तु क्या रौंदे मोय,
एक दिन आएगा मैं रोंदूगी तोहे।'

कुमार मिट्टी रौंदकर घड़ा बनाता है। घड़ा टूटकर मिट्टी में विलीन हो जाता है। इसी तरह जन्म लेने वाला हर मनुष्य एक दिन मिट्टी हो जाता है।

munotes.in

११.६ नशा-पान का विरोध

इस व्यस्तता भरे जीवन में मनुष्य विभिन्न प्रकार के नशा के पीछे भाग रहा है जिसके कारण कई परिवार उजड़ चुके हैं तत्कालीन समय में भी इस प्रकार के नशा पान को लेकर संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से फटकारा है। संत कबीर कहते हैं -

"भांग तमाखू धतूरा, सूरा पान ले घूंट।
कहै कबिरा ता जीव का, धर्मराय सिर कूट।।"

संत कबीर के समान संत गरीबदास ने भी मन की अधिकारधिक पवित्रता को बनाए रखने के लिए मांस-मदिरा, भांग-चरस और अफीम तंबाकू आदि अभक्ष वस्तुओं का अति निषेध किया है।

गरीब भांग तमाखू की पींवहि, गोसत गला कबान।
मोर मृग कूँ भखत हैं, देहंगे कहां जवाब।।

संत कबीर ने पर स्त्री गमन का निषेध किया है वह कहते हैं -

पर नारी शता फिरै, चोरी बिढता-खाहि।
दिवस चारि सरसा रहे अंति समूला जांहि।।

जो मानव में अनुरक्त रहता है एवं चोरी के धन पर समृद्ध होता है अंत में उसका समूल नाश होता है। आगे कबीर कहते हैं।

पर नारी पर सुंदरी, बिरला बंचौ कोई।
खाता मीठी खांडसी अंति कालि विष होई।।

अर्थात दूसरे की पत्नी तथा दूसरे की सुंदर नारी के आकर्षक प्रभाव से कोई विरला ही मुक्त होगा। पर स्त्री संसर्ग सुख के समान मधुर हैं किंतु जिस प्रकार खांड बाद में पेट को हानि पहुंचाती है उसी प्रकार पर स्त्री प्रेम अंत में विषदायक है।

संत कबीर ने श्रम को अत्यधिक महत्व दिया है। उन्होंने अपने जीवन में सदैव कर्म को महत्व दिया है। भिक्षा मांगना उन्हें कतई पसंद नहीं था वह कहते हैं कि भिक्षा मांगना मरण समान है। इस प्रकार श्रम का महत्व मनुष्य जीवन में श्रेष्ठतम है बिना श्रम का धन पाप है इस प्रकार की शिक्षाएं उपदेश देकर कर्म व्रत रहने के लिए वह कहते हैं।

मांगन मरण समान है, तोहिं देई मैं सीख।
कहे कबीर समझाएं के, मति कोई मांगे भीख।।

आज के शोषण, घृणा, हिंसा, सांप्रदायिकता तथा आतंकवाद के वातावरण में मानवतावाद की बहुत ही जरूरत है। मनुष्य के संकुचित भावना से ऊपर उठकर मानव कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए क्योंकि मानव सभी जीवो में श्रेष्ठ और विवेकशील है। मानवतावाद मनुष्य में नैतिक गुण एवं मानवीय मूल्यों का संचार करता है। मानवतावाद से मनुष्य के अंदर की पाशविक प्रवृत्ति का नाश होकर मनुष्य हिंसा से दूर होता है। मध्यकालीन संतो ने प्रेम, अहिंसा, सामाजिक एकता, अहंकार त्याग, समानता, पर पीड़ा, अपरिग्रह, शोषण प्रवृत्ति, नशा-पान, पर

स्त्री गमन त्याग आदि मूल्य विकसित कर समाज को एक नई राह पर ले जाने का भरसक प्रयास किया है।

११.७ सारांश

संक्षेप में संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से तत्कालीन समय में लोकजागरण कर समाज को प्रगति की राह पर ले आने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, जातीयता अंधविश्वास और रूढ़ियों मिथ्याचारों, सांप्रदायिक कट्टरता ओं कर्मकांड के आडंबरों का खुलकर विद्रोह किया और तत्कालीन समाज में सकता, समानता और मानवीय आदर्शों के मूल्यों की स्थापना की है जो आज भी प्रासंगिक लगती है।

११.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) प्रासंगिक शब्द का मूल अर्थ क्या है ?

२) पाँच भक्तिकालीन कवियों के नाम लिखिए।

३) हौसला प्रसाद सिंह ने कबीर के विषय में क्या कहा है ?

४) 'हिन्दु तुरक इन्यूँ जल बूँदा, कासू कहिए ब्राह्मण सुदा।
रज्जब समता ज्ञान विचार, पंचतत का सकल पसारा।।'
यह पंक्तियाँ किस कवि की है ?

५) कबीर के अनुसार तीर्थयात्रा करके मनुष्य क्या बर्बाद करता है ?

६) कबीर के अनुसार ईश्वर कहाँ बसता है ?

७) 'रविदास मूंडह काटि करि, मूरख कहत हलाल।
गला कटावहू आपना, तड कर हो ईही हाल।।'
इन पंक्तियों में समाज में चल रही किस प्रथा का विरोध संत रविदास ने किया है।

८) संत कबीर के अनुसार हमें कैसी वाणी बोलना चाहिए ?

११.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भक्तिकाव्य क्यों प्रासंगिक काव्य है उदाहरण सहित विवरण दीजिए।

२) भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता और आज का समाज विषय पर अपने विचार सविस्तार प्रस्तुत कीजिए।

३) भक्तिकाव्य में प्रयुक्त लोकचेतना और सदाचार की आज के दौर से तुलना कर विवेचन कीजिए।

❖❖❖❖

इकाई - १२ रीतिकाल

इकाई - १३ रीतिकालीन काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

लेखक - प्रा. अनिल गोविन्द चौधरी

munotes.in

इकाई-१२

रीतिकाल

इकाई की रूपरेखा :

१२.१ इकाई का उद्देश्य
१२.२ पस्तावना
१२.३ रीतिकाल का नामकरण एवं वर्गीकरण
१२.४ रीतिकाल का सीमांकन
१२.५ रीतिकाल का शास्त्रीय विवेचन
१२.६ रीति - ग्रंथों की परम्परा
१२.७ रीतिकाल का वर्गीकरण
१२.८ रीतिकाल की पृष्ठभूमि
१२.८.१ राजनीतिक
१२.८.२ सामाजिक
१२.८.३ सांस्कृतिक
१२.८.४ साहित्य एवं कला
१२.९ सारांश
१२.१० लघुत्तरीय प्रश्न
१२.११ दीर्घोत्तरी प्रश्न
१२.१२ संदर्भ ग्रंथ

१२.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा।

- रीतिकाल का नामकरण एवं वर्गीकरण से परिचय होगा।
- रीतिकाल के सीमांकन के बारे में जान सकेंगे।
- रीतिकाल का शास्त्रीय विवेचन स्पष्ट होगा।
- रीतिकाल - ग्रंथों की परम्परा से अवगत हो जाएगें।
- रीतिकाल का वर्गीकरण एवं उसकी पृष्ठभूमि को समझ पाएँगे।

munotes.in

१२.२ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के काल विभाजन में साहित्य की प्रवृत्तियाँ और समयकाल को दृष्टि में रख कर वैज्ञानिक रूप से हिंदी साहित्य का इतिहास को आचार्य शुक्ल ने चार भागों में विभाजित किया । हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल के नाम से अभिहित किया है । इस भाग में रीतिकाल की जो पृष्ठभूमि रही है, उसे देखकर यह कह सकते हैं कि यह काल घोर अराजकता का काल रहा है । भक्तिकाल में जिस प्रकार भक्ति का रसात्मक काव्य प्रधानता रही उसी प्रकार रीतिकाल में श्रृंगारिक रचना प्रधान विषय रहा । परिस्थितियाँनुसार बदलते परिवेश में मुगल साम्राज्य स्थापित होने के उपरान्त कलात्मक रूप से दरबारी संस्कृति का उद्भव हुआ, जिसमें मनोरंजन हेतु कविता प्रस्तुत करने के लिए कवियों को दरबार में आमंत्रित किया जाता था । वे अपने झूठे पराक्रम, दान की प्रशंसापरक कविताएँ सुनने और भोग-विलास का उद्दीपन करने वाली रचनाओं में ही रुचि रखते थे । ऐसा काव्य दरबारी कहलाता है, जो आश्रदाताओं की रुचि को ध्यान में रखकर उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए रचा जाता है । मुगल दरबार का अनुकरण कर अन्य सभी राजाओं ने भी दरबार में कवियों को आमंत्रित करने की प्रथा आरम्भ किया और धीरे-धीरे इस युगमें विलासित चरम सीमा तक पहुँचने लगी । मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों एवं सिखों के आक्रमणों एवं कपंनी शासन की राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण इस युग में असुरक्षा तथा अव्यवस्था का वातावरण बनने लगा, फिर भी राजाओं के दरबार और दरबारी संस्कृति संपूर्णतः प्रतिष्ठित रही । जिसके कारण बाहरी शासको के हाथो जनता का शोषण होता रहा जिसके परिणामस्वरूप सामाजित संस्कृतियाँ नष्ट होने लगी । इस प्रकार हिंदी साहित्य का यह रीतिकाल बहुत से आक्षेपों-आरोपों का युग रहा है ।

१२.३ रीतिकाल का नामकरण एवं वर्गीकरण

हिंदी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मध्यकाल को दो भागों में विभाजित किया है पहला पूर्व-मध्यकाल और दूसरा उत्तर-मध्यकाल । उत्तर मध्यकाल को उन्होंने रीतिकाल की संज्ञा दी हैं । आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल नाम की प्रेरणा जार्ज ग्रियर्सन के काल विभाजन से मिली है उनकी रचना 'मोर्डन वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ़ नॉर्दन हिन्दुस्तानी' के सातवे अध्याय को रीतिकाव्य कहा हैं । आचार्य शुक्ल जी ने प्रायः इस काल में उन लक्षणबद्ध रचना करने वाले कवियों को रखा है । विभिन्न विद्वानों ने उत्तर-मध्यकाल को अनेक नामों से पुकारा है तथा उनके नामकरण को लेकर विभिन्न मत भी दिए है ; जैसे - रीतिकाल, अलंकृत - काल, कलाकाल, श्रृंगार काल । जिस प्रकार भक्तिकाल में ईश्वर की भक्ति को ज्यादा प्रधानता दी गई है, उसी प्रकार रीतिकाल में कलात्मकता एवं श्रृंगार-भावना की अधिक प्रधानता रही हैं । आचार्य शुक्ल ने उत्तर-मध्यकाल की समय सीमा उन्होंने १७०० से १९०० तक माना है । उसके पूर्व मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृत-मध्यकाल' कहा है । इस नाम के औचित्य से संबंधित मत इस प्रकार है कि "पूर्वालंकृत प्रकरण में सात अध्यायों द्वारा भूषण और देव काल का कथन है और उत्तरोलंकृत प्रकरण में दास पद्माकर काव्य अलंकृत है इन दोनों प्रकरणों के नाम लिए हुए इस कारण से रखे गए हैं कि इस समय के कवियों ने सारंकार भाषा लिखने का अधिक प्रयत्न किया । इस प्रकार भाषा के अलंकारिकता को केंद्र में रख कर मिश्र बंधुओं ने इसका नामकरण किया हैं । पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस काल कवियों की रचना प्रवृत्तियों को देखकर

इसका नाम श्रृंगार काल रखा है । कहीं-न-कहीं श्रृंगारकाल नाम को आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया हैं; इसके संदर्भ में कहते है "वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्ही दो रसों की कविता इस काल में हुई । प्रधानता श्रृंगार की ही रही । इससे इस काल को रस के विचार से श्रृंगार काल कहे तो कह सकते हैं ।" डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे कलाकाल नाम दिया जो हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में लिखते हैं "यह लिखते हुए मुझे प्रसन्नता हैं कि इस इतिहास का कला-काल है ।" लेकिन इतिहास में उन्होंने रीतिकाल ही नाम दिया हैं और विशेषता का आधार कला ही हैं । त्रिलोचन ने इसे 'अन्धकार' काल नाम दिया । नामकरण के दृष्टि से अधिकतर लोगो ने रीतिकाल को ही तर्कयुक्त और संगत माना है जिसमें नगेन्द्र अपने हिंदा साहित्य के बृहद इतिहास में सम्पादकीय लेख में 'रीतिकाल' को ही उपयुक्त मना हैं ।

रीति शब्द का अर्थवक्ता की दृष्टि से देखा जाए तो रीति शब्द का अर्थ प्रायः शैली, पद योजना से सम्बंधित है इसका सबंध प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्रों में रीति-सम्प्रदाय से हैं ; जिसमें रीति को 'विशिष्ट पद रचना' कहा है जो की रीति के इस अर्थ में ग्रहण नहीं कर सकते । रीति काव्य में पद रचना नहीं होता काव्य सिद्धांतों के आधार पर काव्यांगों के लक्षणों सहित या उनके आधार लिए गए उदाहरणों से होता हैं । रीतिकाल के कवियों ने काव्य रीति, रस रीति, अलंकार रीति आदि का प्रयोग साहित्य में अनेक किया हैं इस संबंध में भिखारीदास कहते है "काव्य की रीति सीखी सुकबिं सो देखी सुनी बहुलोक की बाते"। काव्य में रीति कि शुरुआत केशव से मानी जानी चाहिए जिसके संदर्भ में आचार्य शुक्ल भी कहते है की "इसमें संदेह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया ।"

१२.४ सीमांकन

ऐतिहासिक अध्ययन में कवियों की प्रवृत्ति का विवेचन करने के लिए वर्ण्य विषय के अनुसार रचनाओं का वर्गीकरण तथा उस प्रवृत्ति के अनुसार प्रत्येक काल का नामकरण अनिवार्य होता है, उसी प्रकार उस प्रवृत्ती के प्रेरक तत्त्वों का प्रतिपादन करने तथा रचनाओं के परिमाण को आंकने के निमित्त उसके प्रसार-काल की सीमाएं निर्धारित कर लेना भी आवश्यक हुआ करता है । किंतु यह सीमा-निर्धारण ऐतिहासिक घटनाओं के समान निश्चित नहीं हो सकता; न तो निश्चित बतायी जा सकती है और न समाप्ति की ही । उसकी प्रस्तावना और अविच्छिन्न विकास-परंपरा के तथा चरम सीमा और उपसंह्रति के बीच कम-से-कम २५-३० वर्षों का अंतर तो रहता ही है । ऐसी दशा में संगत यही होना चाहिए कि प्रवृत्ति विशेष की अविच्छिन्न विकास-परंपरा के आरंभ तथा चरम सीमा की समाप्ति संबंधी तिथियों को निर्धारित करते समय उदारता से काम लिया जाये । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखते समय उसे प्रवृत्तियों के अनुसार चार भागों में विभाजित किया है तथा परिवर्ती विद्वानों ने उनके इस विभाजन की काल-सीमाओं को प्रायः अविकल रूप में ग्रहण भी कर लिया है, किंतु उनका सबसे बड़ा दोष यही है कि वे इस संबंध में उदार नहीं हो पाये तथा निश्चित संवत् से प्रवृत्ति विशेष का आरंभ और निश्चित संवत् पर उसका अंतः निर्धारित कर बैठे हैं । जिस युग में रीति-निरूपण अथवा रीति-प्रभावित ग्रंथों के निर्माण का प्राचुर्य रहा, उसको 'रीतिकाल' की परिधि में नहीं आ पाते, जिन्हें वे स्वयं ही इस युग में परिगणित कर चुके हैं । उदाहरण के लिए, चिंतामणि-कृत 'रसविलास' तथा मतिराम-कृत 'रसराज' १६४३ ई. से लगभग १० वर्ष की पूर्व की तथा ग्वाल कवि की 'रसरंग' आदि रचनाएं १८४३ ई. से लगभग १०-१५ वर्ष बाद की ही

ठहरती हैं । इनके अतिरिक्त कतिपय कवि ऐसे भी हैं जिनका जन्म भक्तिकाल में हुआ और उनकी रचनाएं 'रीतिकाल' में लिखी गयीं अथवा उनका जन्म 'रीतिकाल' में हुआ और रचनाएं वे इसकी समाप्ति के १०-२० वर्ष बाद तक करते रहे । अतएव, 'रीतिकाल' की सीमाएं हमें सामान्य रूप से सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक मान लेनी चाहिए । इस काल के आदि और अंत के दोनों ओर लगभग २०-२० वर्ष का समय जो छोड़ा गया है, उसे यदि इसकी प्रस्तावना और उपसंहृत के नामों से अभिहित किया जाये तो भी कोई आपत्ति की बात न होगी । कारण, इससे कालविषयक सीमा-बंधन के परिणामस्वरूप एक ही परंपरा के कतिपय ग्रंथों को इस प्रकार की रचनाओं के वर्ग से निरसित न किया जा सकेगा ।

१२.५ रीतिकाव्य का शास्त्रीय विवेचन :

रीतिकालीन लक्षणबद्ध कविताओं का प्रमुख काव्य आधार काव्यशास्त्रीय रचनाएं रही है । हिंदी काव्य में जो काव्यशास्त्रीय परम्परा विकसित हुई उसका प्रमुख आधार प्राचीन संस्कृत काव्य शास्त्र ही है, जिसके प्रमुख पांच सम्प्रदाय प्रसिद्ध है - रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय और वक्रोक्ति सम्प्रदाय । जिसमें विभन्न आचार्यों ने अपने मतानुसार काव्य की आत्मा घोषित किया है । रीति ग्रन्थ लिखने की परिपाठी रीति कवियों के काव्यशास्त्रीय आचार्यो से ली गई है । जिन्होंने कई अलंकृत और लक्षण ग्रन्थ लिखे है, जिसमें से जयदेव कृत 'चंद्रलोक' और अप्पय दिक्षित की 'कुवलियानन्द' ग्रन्थ हैं । इसके सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल कहते है "काव्य के स्वरूप और अंगो के सम्बन्ध में हिंदी रीतिकाल कवियों ने संस्कृत के इन परवर्ती ग्रंथों का मत ग्रहण किया है ।"

रस सम्प्रदाय सबसे प्राचीन माना जाता है । इसके उन्नायक आचार्यों में भरत मुनि हैं और उनके रससूत्र के व्याख्याकार लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनवगुप्त हैं तथा भोज, मम्मट, विश्वनाथ और परवर्ती आचार्यों का नाम लिया जाता है । इन्होंने रस के स्वरूप, सामग्री तथा भेदादि की व्याख्या और विवेचन के साथ काव्य में उसके महत्त्व प्रतिपादन द्वारा रस-सिद्धांत की स्थापना की । ऐसे आचार्यों में भानुदत्त मिश्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन्होंने अपने 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी' नामक ग्रंथों में क्रमशः रस के स्वरूप और उसके भेदोपभेदों तथा श्रृंगार रस, विशेषतः इसके आलंबन नायकनायिकाभेद, को जिस व्यवस्थित एवं सुबोध रूप में प्रस्तुत किया, वह पूर्ववर्ती ग्रंथों में दुर्लभ है ।

रस संप्रदाय के बाद अलंकार संप्रदाय को स्थान दिया गया है । जिसके प्रतिस्थापक आचार्य भामह हैं । भामह के बाद दंडी, उद्भट, रुद्रट, जयदेव आदि ने रसवादी अलंकारों की उद्भावना कर काव्य की आत्मा के रूप में रस का तिरस्कार ही नहीं किया, अपितु अलंकार और अलंकार्य का अभेद मानते हुए इसे काव्य का आधारभूत तत्व भी कहा । यह रस संप्रदाय का सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी रहा । इसके साथ ही इन लोगों ने अलंकारों के अनेक भेदोपभेदों की परिकल्पना करते हुए उनका वर्गीकरण करने तथा मूलाधार बताने का प्रयत्न भी किया । बाद में मम्मट, विश्वनाथ और रसवादी आचार्यों ने यद्यपि इनका अस्तित्व शरीर को सुशोभित करने वाले कटक, कुंडलादि आभूषणों के समान ठहरा कर इनकी अनिवार्यता का विरोध किया, तथापि इनके व्याख्यान-विवेचन का लोभ-संवरण वे भी नहीं कर सके । इन्होंने पूर्ववर्तियों द्वारा

प्रकल्पित अलंकारों की व्याख्या अत्यंत व्यवस्थित ढंग से की । इसके बाद भानुदत्त मिश्र के समान कतिपय ऐसे आचार्य भी हुए, जिन्होंने इस विषय को अत्यंत सुबोध में प्रस्तुत किया ।

अलंकार संप्रदाय के बाद तीसरा संप्रदाय रीति संप्रदाय है । इसके प्रवर्तक आचार्य वामन हैं, तथापि इनसे पूर्व ही काव्यांग के रूप में 'रीति' तथा इसके प्राण रूप 'गुणों' की चर्चा होती थी । यह भामह द्वारा वैदर्भ और गौड़ नामक मार्गों के अंतर के निषेध तथा दंडी द्वारा इन दोनों के निर्देश से स्पष्ट है । गुणों का विवेचन भरत के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है । दंडी और वामन का गुण-विवेचन किसी सीमा तक इनसे प्रभावित कहा जा सकता है । भामह ने भी तीन गुणों का विवेचन किया है । किंतु एक बात निश्चित है कि वामन ने शब्द और अर्थ के आधार पर गुणों का विवेचन कर उनके आधार पर वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली नामक तीन रीतियों की स्थापना तथा इससे पूर्व रीति के स्वरूप आदि की व्याख्या द्वारा अपने सिद्धांत को जिस प्रकार से प्रतिष्ठित किया, उस प्रकार से किसी पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती आचार्य ने इस दिशा में प्रयत्न नहीं किया । यही कारण है कि यह सिद्धांत आगे चल कर अधिक प्रचलित न हो सका । फिर भी, गुण और रीति को काव्यांग सभी ने माना और अपने अपने अनुसार इन दोनों की व्याख्या की । रुद्रट समास के आधार पर रीति की व्याख्या कर यदि 'लाटी' नामक चौथी रीति की परिकल्पना की, तो इस आधार को मानते हुए राजशेखर और श्रीपाद ने मैथिली अथवा मागधी तथा भोज ने अवंती नामक दो रीतियां और जोड़ कर इनकी संख्या छह तक पंहुचा दी ।

रीति संप्रदाय के पश्चात ध्वनि संप्रदाय आता है जिसके प्रतिस्थापक आचार्य आनंदवर्धन हैं, तथापि इनसे पूर्व भी यह सिद्धांत प्रचलित था । यह स्वयं उन्हीं के कथन से स्पष्ट है : 'काव्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नात पूर्वः।' स्वयं वैयाकरणों के स्फुट विवेचन में इसके संकेत विद्यमान हैं । जो हो, आनंदवर्द्धन ने एक ओर जहां अपने सिद्धांत का निर्धात विवेचन और उसकी स्थापना की, वहीं दूसरी ओर पूर्ववर्ती रस, अलंकार और रीति सिद्धांतों की सम्यक् परीक्षा कर ध्वनि में रस, अलंकार, गुण, रीति और दोष का स्थान निर्धारित किया । इस सिद्धांत का विरोध यद्यपि कुंतक और महिम भट्ट ने प्रबल शब्दों में किया, किंतु अभिनवगुप्त ने ध्वनिविषयक भ्रांतियों का निराकरण करते हुए इसमें रस के महत्त्व को स्थापित कर एक प्रकार से इस सिद्धांत की व्यापकता को सिद्ध कर दिया । इनके उपरांत मम्मट ने पुनः प्रचलित विचारों का खडंन-मंडन करते हुए ध्वनि का विस्तृत विवेचन किया । मम्मट के पश्चात विश्वनाथ ने ध्वनि की अपेक्षा रस का महत्त्व प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया, किंतु पंडितराज जगन्नाथ ने प्रबल शब्दों में खंडन किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने इस दिशा में एक योगदान यह भी किया कि आनंदवर्द्धन द्वारा निर्दिष्ट काव्य के तीन भेदों-उत्तम और अधम के साथ उत्तमोत्तम नामक चौथे भेद को स्वीकार किया । पंडितराज का प्रभाव परवर्ती लोगों पर कम पड़ा तथा सामान्यतः लोग मम्मट के एतद्विषयक विवेचन को ही महत्त्व देते रहे ।

ध्वनि सिद्धांत के उपरांत वक्रोक्ति सिद्धांत का आविर्भाव हुआ । यह सिद्धांत अलंकार और रीति सिद्धांतों के समान देहवादी था, रस और ध्वनि सिद्धांतों के समान आत्मवादी नहीं था । इसके प्रवर्तक आचार्य कुंतक हैं । इन्होंने काव्य का जीवित 'वक्रोक्ति' को मानते हुए प्रतिभा पर आश्रित कविवैदग्ध्यभंगीभणिति (वैचित्र्य) के रूप में इसकी परिभाषा की । वस्तुतः यह सिद्धांत भामह द्वारा अलंकार के प्राणरूप में स्वीकृत अर्थ और शब्द के वैचित्र्य वाली वक्रोक्ति और भट्टतौत द्वारा निरूपित नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा पर आधारित है । कुंतक ने इसे वर्ण-विन्यास से लेकर घटना-विन्यास तक बता कर इसका विस्तार प्रायः काव्य सभी रूपों

में दर्शाया, किंतु यह सिद्धांत आगे चल कर लोकप्रिय न हो सका । मम्मट आदि ने वक्रोक्ति को अलंकार विशेष से अधिक महत्त्व नहीं दिया ।

इन पांच संप्रदायों से संबद्ध सिद्धांतों के अतिरिक्त काव्यशास्त्र में एक छठा सिद्धांत और आविर्भूत हुआ और वह था - औचित्य सिद्धांत । इसके प्रवर्तक थे आचार्य क्षेमेन्द्र। इस सिद्धांत के अंतर्गत औचित्य को काव्य का आधारभूत तत्त्व मानते हुए पूर्वोक्त सिद्धांतों में प्रतिपादित रस, अलंकार, गुण, रीति आदि के उचित प्रयोग की बात कह कर प्रकारांतर से इन सबके समन्वय का प्रयत्न किया गया । किंतु यह आगे किसी भी प्रकार से स्वीकार न हो सका । संभवतः इसलिए क्योंकि इसमें कोई ऐसी मौलिकता नहीं थी, जिसकी ओर परिवर्ती आचार्यों का ध्यान आकृष्ट होता । जो बातें इसमें प्रतिपादित की गयी थीं, उनकी चर्चा आनंदवर्द्धन और कुंतक कर ही चुके थे ।

काव्यशास्त्र के उक्त सिद्धांतों के साथ ही संस्कृत में छंदोविवेचन की धारा भी स्वतः रूप से चल रही थी । इसका सीधा संबंध यद्यपि काव्य के साथ ही था, तथापि उक्त आचार्यों में से किसी ने भी काव्यांग के रूप में इसका विवेचन करना इसलिए आवश्यक नहीं समझा, क्योंकि इसके सामान्य रूप का ही वर्णन किया है।

१२.६ रीति-ग्रंथो की परंपरा

आचार्य शुक्ल ने रीति-ग्रंथों की परम्परा की शुरुआत चिंतामणि त्रिपाठी के रचनाओं से माना है । लेकिन नगेन्द्र केशवदास के रचनाओं से ही रीति-परम्परा की शुरुआत मानते है और आचार्य शुक्ल इन्हीं को रीतिकाल के कोटि में नहीं रखते है; इसके संदर्भ में आचार्य शुक्ल के अनुसार "इसमें संदेह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले पहल समावेश आचार्य केशव ने ही किया है पर हिंदी में रीति ग्रंथों के अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के प्रायः ५० वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं ।" इस प्रकार चिंतामणि के 'काव्यविवेक', 'कविकुल कल्पतरु' और 'काव्य प्रकाश' इन तीन ग्रंथों के उपरान्त ही लक्षणग्रंथों की भरमार थी। शुक्ल के मत का विरोध करते हुए नगेन्द्र लिखते है "चिंतामणि को यह गौरव देना अन्याय है क्योंकि यह केवल संयोग था की उसके उपरान्त रीतिकाव्य की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो चली।" इसी प्रकार नगेन्द्र केशव को रीतिकाव्य का प्रवर्तक मानते है । चिंतामणि के बाद ही जो कविता लिखने की ऐसी प्रणाली सामने देखने मिली जिसमे अलंकार और रस का अनूठा दृश्य देखने मिला । रीतिकाव्य के कवियों के उद्देश्य को बताते हुए आचार्य शुक्ल कहते है "रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपूण कवि थे उनका उद्देश्य कविता करना था न की काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना था ।"

१२.७ रीतिकाल का वर्गीकरण

रीतिकाल का वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से किया हैं । आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल का विभाजन दो भागों में किया है ; पहला रीतिग्रंथकार दूसरा अन्य कवि रीति ग्रंथकार के अंतर्गत उन्होंने ५७ कवियों को लिया हैं । बच्चन सिंह ने भी रीतिकाल को दो भागों

में विभक्त किया है; बद्ध-रीतिकवि और मुक्त-रीतिकवि । बद्ध-रीतिकवि के अंतर्गत दो भाग किये है प्रथम रीति चेतस जिसमें उन्होंने चिंतामणि, जसवंतसिंह, भिखारीदास, प्रताप साही, ग्वाल और द्वितीय भाग काव्य चेतस है जिसके अंतर्गत भूषण, मतिराम देव, पद्माकर को लिया है और रीतिमुक्त के भी दो भाग किये है क्लासिकल काव्य धारा और स्वच्छंद काव्य धारा जिसमें क्लासिकल में बिहारी को लिया है और स्वच्छंद काव्य में आलम, घनानंद, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव को उल्लेखित करते हैं । रीतिकाल को तीन भागो में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र विभाजित करते है; जो - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीति मुक्त हैं जिसमें उन्होंने काव्य की विशेषताओं के आधार पर रीतिकाव्य को विभक्त किया हैं और यही सर्वमान्य हैं ।

१२.८ रीतिकाल की पृष्ठभूमि

किसी भी साहित्य के निर्माण में उस समय का युगीन वातावरण का मुख्य योगदान होता है, इसीलिए आचार्य शुक्ल कहते है की "साहित्य जनता के चित्तवृत्तियों का इतिहास होता है जिसके माध्यम से तत्काल परिवेश के बारे में जानकारी होती हैं । उस वातावरण के निर्माण में राजनीति, संस्कृति और साहित्य कला का महत्त्व पूर्ण योगदान होता है । और साहित्य के अध्ययन के लिए उस समय के युगीन परिस्थितियों की जानकारी होना अनिवार्य हो जाता है ।" साहित्य के विविध कलाओं का निर्माण तत्कालीन समाज के परिस्थितियों पर निर्भर होता हैं और साहित्य उस समय का इतिहास बन जाता हैं । जिस प्रकार एक साहित्य का असर पड़ता है उसी प्रकार एक साहित्य के निर्माण में भी समाज की पृष्ठभूमि निर्भर करती है। मुगलों की सत्ता आने के बाद समाज की परिस्थिति बदल गई थी, जिसके कारण राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक रूप से प्रभाव रहा हैं ।

१२.८.१ राजनीति परिवेश :

रीतिकाल में पूर्ण रूप से शासन मुगलों के हाथों में था जिसे भारत में इस काल को चरमोत्कर्ष और उसके बाद उत्तरोत्तर ऱ्हास, पतन और विनाश का युग कहा जा सकता है और अंग्रेजों का आगमन काल देखा जा सकता हैं । मुगलों में उस समय का शासन काल शाहजहां का था । जहाँगीर के बाद शाहजहाँ ने ही मुगल सत्ता का विस्तार किया और उसी समय ताजमहाल और मयूर सिंघासन जैसे ऐतिहासिक वैभव का निर्माण किया गया । शाहजहाँ के मृत्यु की खबर फ़ैलाने के पश्चात १६५८ ई. में उसके पुत्र औरंगजेब और दाराशिकोह के बीच रस्ता के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया और दारा की हत्या कर औरंगजेब ने सिंहासन पर अधिकार जमा लिया उसके उपरान्त जागीरदारों, राजाओं और हिन्दुओं में धार्मिक उपद्रव आरम्भ हो गए । औरंगजेब ने अपने तानाशाही शासन से सभी पर राज किया ।

१७०७ ई. में औरंगजेब के मृत्यु के बाद उसके द्वितीय पुत्र शाहआलम गद्दी पर बैठे और १७१२ ई. में मुग़ल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया । छोटे-छोटे जागीरदार स्वतंत्र घोषित करने लगे विलासिता इतनी अधिक होने लगी जिससे मुगलों की केंद्र सत्ता की पकड़ धीरे-धीरे ध्वस्त होने लगी । उसके बाद १७३८ ई. में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगलों की नीव हिला दी और बाद में १७६१ ई. में अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण ने उनका साम्राज्य पूरी तरह ध्वस्त कर दिया । इस आक्रमणों का पूरा लाभ विदेशी व्यापारियों ने ले लिया और अंग्रेज भीतर-ही-भीतर शक्ति के रूप में १८०३ ई. में उत्तरी भारत पर अपना अधिकार जमा लिया और मुग़ल

सिर्फ नाममात्र के लिए ही शासक रह गए । उसके बाद १८५७ ई. के विद्रोह के पश्चात् फिर से मुग़लों ने सत्ता की स्थापन करने का प्रयास किया लेकिन वह भी असफल रह गए ।

केंद्र शासन की स्थिति भी रीतिकाव्य के रचना के क्षेत्र में अवध, राजस्थान, बुंदेलखंड की कथा भी इसी प्रकार की है; जिसमे अवध के विलासी शासको का अंत भी मुग़ल साम्राज्य के समान ही रहा हैं । राजस्थान में भी विलासी प्रवृत्ति और बहु पत्नी प्रथा के कारण राजपुरुष भी आंतरिक कलह के शिकार हो गए । बुंदेलों के भले ही मराठों के साथ लाभ उठाने का प्रयत्न किया परन्तु पारंपरिक द्वेषों के कारण सफल न रहे और मुग़ल साम्राज्य के तरह ही हिन्दु रजवाड़ों का अंत हो गया । इस प्रकार मुगलों के पतन का काल रहा जहाँ सिर्फ विलासिता रहने के कारण अराजकता ने जन्म लिया ।

१२.८.२ सामाजिक परिवेश :

सामाजिक दृष्टि से भी यह काल विलासिता का युग कहा जाना चाहिए । इस काल में सामंतवादी प्रवृत्ति का अधिक बोलबाला है । सामंतवाद के दोष सर्वत्र व्याप्त थे । जिसका असर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सामान्य जनता पर पड़ रहा था । विलासी शासको, सामंतो अधिकारियों मनसबदारो के अधिपत्य के कारण जनता उसमें शोषित हो रही थी । ऊपर से लेकर नीचे तक शासकों का वर्ग था । शोषित वर्ग में कृषक, मजदूर थे जिनपर अधिक कर लादकर साहकूार शोषण कर रहे थे । सामान्य जनता के लिए चिकित्सालय, शिक्षा, आदि का भी कोई प्रबंधन नहीं था । कार्य सिद्धि के लिए उत्कोच लिया करते थे । विलासिता भी उस समय चरम सीमा पर थी जिसमें विलासिता की बढ़ती प्रवृत्ती के कारण नारी को अपनी संपत्ति मानकर उनका भोग करना सामान्य हो गया था । विलास के उपकरणों का संग्रह करना एवं विलासिता में लीन रहना उच्च वर्ग के जीवन का एक मात्र लक्ष हो गया था । मध्यम वर्ग भी उन्ही का अनुसरण करता था । विलासिता में डूबे होने के कारण वे अपने संतान की भी देखभाल नहीं कर पाते थे । शिक्षक तो इस प्रकार होते थे जो काम कलाओं की शिक्षा देकर कामुकता को पूर्ण करते थे । लड़कियों के साथ छेड़छाड़, अभद्र व्यवहार, राजकुमारों की दिनचर्या हो गई थी । विलासी माता पिता की संताने अनैतिक कार्यों में लीन थी । विवाहित स्त्रियाँ भी पति से प्रेम ना पाने के कारण अनैतिक सम्बन्ध बनाती थी । इस प्रकार उस समय की सामाजिक परिस्थिति बड़ी भयानक थी जहाँ पर सिर्फ शोषण, अत्याचार, भोग, विलासिता ही सभी जगह व्याप्त थी ।

१२.८.३ सांस्कृतिक परिवेश :

सामाजिक परिवेश के सामान ही सांस्कृतिक परिवेश भी दयनीय अवस्था में थी । जहाँ अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ के उदार नीति के कारण हिन्दू-मुस्लिम के संस्कृतियों मे जो समन्वय के भाव थे जो औरंगजेब के शासनकाल में धार्मिक कट्टरता के कारण छिन्न-छिन्न हो गए । विलासिता के कारण धार्मिक आस्थाओं का पालन करना कठिन हो गया था । वे अपने झूठे पराक्रम, दान की प्रशंसापरक कविताएँ सुनने और भोग-विलास का उद्दीपन करने वाली रचनाओं में ही रुचि रखते थे । ऐसा काव्य दरबारी कहलाता है, जो आश्रयदाताओं की रुचि को ध्यान में रखकर उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए रचा जाता है । मंदिरों, मठो के पीठाधीश अपनी लोभी प्रवृत्ति के कारण राज और सेठों को गुरु दीक्षा देकर भौतिक सुख प्राप्त कर रहे थे । मंदिरों में ऐश्वर्य और विलास होने लगे । हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही अपने सिद्धांतों से दूर होकर कर्मकांड और बाह्य आडम्बर की सीमा तक रहने लगे । ऐसी अवस्था में धर्म के साथ नैतिकता का जो सम्बन्ध था वह टूटने लगा था । धर्म स्थान पापाचार का केंद्र बन गये । जनता में अंधविश्वास

बढ़ने लगे जिसका फायदा मुल्ला-मौलवी और पंडित-पुरोहित उठा रहे थे । उस समय भी पुरानी परम्परा के सूफी फ़कीर विद्यमान थे परंतु किसी पर भी कबीर, नानक तथा जायसी जैसी प्रतिभा नहीं थी । वे क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में असमर्थ थे । किसी पर भी उनके वाणियों का कोई भी असर नहीं पड़ रहा था । इस प्रकार विलासिता के कारण धार्मिक संस्कृति भी ध्वस्त होती दिखाई दे रही थी और हर जगह अनास्था, अंधविश्वास बढ़ता जा रहा था ।

१२.८.४ साहित्य एवं कला :

साहित्य कला की दृष्टि से इस युग में अनेक कलाएं विकसित हुएं । भारत में अधिकतर मुग़ल शासन काल में ही कलाओं का विकास हुआ । मुग़ल राजा कला प्रेमी हुआ करते थे । अपने विलासिता को पूर्ण करने के लिए फारसी और हिन्दू शैली के सम्यक संयोग से ललित कलाओं का निर्माण करवाया । मुगलों की अद्भूत और सौन्दर्य /कला आगरा के मोटी मस्जिद और ताजमहाल के निर्माण से देखने मिलती हैं तो शाहजहाँ ने बनवाया था । इस काल के दरबारी कवि एवं कलाकार रहा करते थे और अपने आश्रयदाताओं से उन्हें इतना सम्मान मिलता था की उनकी भी गणना सामंतों में होने लगी थी । अपने आश्रयदाताओं की अभिरुचियों को ध्यान में रख कर वे साहित्य कलाओं का निर्माण करते थे । मुगलों की राजकीय भाषा फारसी थी और भाषा फारसी होने के कारण अलंकार प्रधान शैली का प्रभाव इस युग के प्रत्येक भाषा पर पड़ा । उस समय काव्य भाषा के लिए ब्रजभाषा ही सबसे निकटतम भाषा थी । इस काल के प्रत्येक राजाश्रित कवि अपने राजाओं को प्रसन्न रखने के लिए उनकी प्रशंसा एवं श्रृंगारिक रचनाएँ करते थे ।

जहाँ तक ललित कलाओं का सम्बन्ध रहा है चित्र कला भी काव्य के समान ही प्रचलित और समृद्ध रही है । जहाँगीर का राजकत्व काल कला का स्वर्णयुग काल कह सकते है । विशेष रूप से राजस्थान और पर्वतीय क्षेत्रों में भी चित्रकला के विभिन्न रूप देखने मिलते हैं। राजस्थान शैली में चित्रों का मुख्य विषय रागमाला थी । इसमें ऋतुओं का आश्रय लेकर शब्द को रेखाओं और रंगों में बद्ध किया जाता था । इस शैली में चित्रों का विषय कृष्णलीला, नायिकाभेद, बारहमासा रहा हैं ।

औकांगड़ा शैली में चित्रों का विषय महाभारत, पुराण एवं दैनिक जीवन से सम्बन्धित बाते रही हैं । चित्रकला के अतिरिक्त संगीत का भी विशिष्ट स्थान रहा हैं । शिल्पकला का भी विशेष रूप से भव्यता रही है जिसमें शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई आगरा का ताजमहल दिल्ली के लाल किले दीवाने ख़ास विशेष रूप से उल्लेखनीय है । समग्र रूप से देखे तो साहित्य कला की दृष्टि से यह काल संपन्न और उत्कर्ष का काल कहा जा सकता हैं ।

१२.९ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने रीतिकाल का नामकरण एवं वर्गीकरण, सीमांकन, उसका शास्त्रीय विवेचन, रीति-ग्रंथों की परम्परा, रीतिकाल का वर्गीकरण और उसकी पृष्ठभूमि आदि का अध्ययन किया। किसी भी प्रकार के साहित्य के निर्माण के लिए उस समय का युगीन वातावरण का मुख्य योगदान होता है। इसी वातावरण के निर्माण में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्य कला का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसी योगदान से समाज के

परिस्थितियों पर प्रभाव पड़ता है और उसी से इतिहास बनता है। यहीं रीतिकाल के अंतर्गत उद्घाटित किया गया है।

१२.१० लघुत्तरीय प्रश्न

१) आ. रामचंद्र शुक्ल को रीतिकाल के नामकरण की प्रेरणा किस विद्वान से मिली ?
२) 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा किसने दी है ?
३) 'रस सम्प्रदाय' के प्रवर्तक है -
४) 'काव्यविवेक' ग्रंथ के रचनाकार है -
५) सन १७०७ ई. में औरंगजेब के मृत्यु के बाद गद्दी पर कौ बैठा ?
६) बच्चन सिंह ने रीतिकाल को कितने भागों में विभाजित किया है ?

१२.११ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) रीतिकाल के नामकरण को स्पष्ट करते हुए शास्त्रीय विवेचन पर प्रकाश डालिए।
२) रीतिकाल का नामकरण और उसकी पृष्ठभूमि पर चर्चा कीजिए।

१२.१२ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
२) हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक डॉ. नगेंद्र
३) हिंदी साहित्य का सरल इतिहास - विश्वनाथ त्रिपाठी
४) रीतिकाल - डॉ. नगेंद्र

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-१३

रीतिकालीन काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा :

१३.१ इकाई का उद्देश्य
१३.२ पस्तावना
१३.३ रीतिबध्द काव्य-धारा
१३.३.१ रीतिबद्ध के प्रमुख कवि
१३.३.२ रीतिबध्द कालधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
१३.४ रीतिसिध्द काव्य-धारा
१३.४.१ रीतिसिध्द के प्रमुख कवि
१३.४.२ रीतिसिध्द काव्य की प्रवृत्तियाँ
१३.५ रीतिमुक्त काव्य धारा
१३.५.१ रीतिमुक्त के कवि
१३.५.२ रीतिमुक्त काव्य-धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
१३.६ सारांश
१३.७ लघुत्तरीय प्रश्न
१३.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
१३.९ संदर्भ ग्रंथ

munotes.in

१३.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा।

- रीतिबध्द काव्य-धारा और उसकी प्रवृत्तियाँ को विस्तार जान सकेंगे।
- रीतिबध्द काव्य-धारा और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों से भलीभाँति परिचित हो सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्य-धारा और प्रमुख प्रवृत्तियों से अवगत हो पाएँगे।

१३.२ प्रस्तावना

रीतिकाल में अधिकतर श्रृंगारिक रचनाएं केंद्र में रहीं और भक्ति प्रेम की प्रधानता क्रमशः कम होने लगी । परिणामतः भक्ति में जो प्रेम तत्त्व थे वो मूलतः लौकिक प्रेम में परिवर्तित होकर श्रृंगारिक होने लगे । इस प्रकार इस काल की रचनाएं श्रृंगार प्रधान तथा नायक-नायिका

भेद, नखशिख-वर्णन एवं विविध क्रीडाओं का रसमयी शैली में विवेचन किया गया । सामाजिक परिस्थितियों को देख कर मुगलों के पतन का काल भी कह सकते हैं । इस समय हिंदी क्षेत्र में छोटे-छोटे राजे-नवाब थे जो केंद्रीय सत्ता द्वारा अनुशासित होते थे । वीरगाथाकालीन सामंतों की तरह आपस में लड़ नहीं सकते थे । इस काल में घोर अराजकता, विलासिता के कारण सभी जगह अत्याचार और दुराचार का ही विस्तार था जहाँ राजा सिर्फ अपनी प्रसन्नता सुन कर उसी में मग्न रहते थे उनके आश्रित राजदरबारी कवि श्रृंगारिक रचनाएं लिख कर धन इकट्ठा किया करते थे । इस प्रकार इस काल में साहित्य में भावों की प्रधानता कम रही और अलंकारिकता अधिक रही । दरबारी कविता में एकरसता तो होती ही है, उसमें प्रधानतः मुक्तक ही रचने का अवकाश होता है, क्योंकि कवियों में आश्रयदाता के तत्काल प्रसन्न करने की होड़ होती है । इसीलिए चमत्कार-प्रियता, आलंकारिता, अतिशयोक्ति आदि दरबारी कविता की प्रवृत्तियाँ बन जाती है । इसके अतिरिक्त कुछ कवि वीर प्रधान काव्य भी लिखे गए । शिवाजी, छत्रसाल जैसे आश्रयदाता पराक्रमी राजा के लिए भूषण की कविताएँ श्रृंगारहीन होकर भी वीररसात्मक हैं । इसलिए यह समझना भूल होगी कि इस काल की सभी रचनाएँ दरबारी हैं । वस्तुतः दरबारीपन का विरोध भी इस काल की कविता में मिलता है, उत्कृष्ट प्रेम की कविताओं की भी कमी नहीं है रीतिकाल में । दरबारीपन तो रीतिकाल की एक प्रवृत्ति ही है ।

रीतिकाल में लक्षण ग्रन्थ लिखने की जो परिपाठी विकसित हुई वह संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थ की रचना करनेवाले आचार्यों से रही हैं । रीतिकालीन कवि निरूपण की प्रक्रिया में लक्षण बताकर उदाहरण के रूप में प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ अपनी बात को सुस्पष्ट या प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत करते थे । लक्षण तो परंपरा से प्राप्त होते थे, उन्हें ग्रंथकार अपने शब्दों में प्रस्तुत कर देते थे, किंतु कविताओं में उनकी मौलिकता होती थी । इसीलिए कहा जाता है कि रीतिकाल के लक्षण-ग्रंथकार वस्तुतः कवि थे, आचार्यत्व को तो उन्होंने कविता करने का बहाना बना लिया था । फलतः हिंदी में आचार्य और कवि, दोनों एक ही व्यक्ति होने लगे । इस प्रणाली से इस काल में प्रचुर एवं उत्कृष्ट रचनाएँ हुई ।

रीतिकाल के साहित्य को प्रवृत्तिगत दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त इन तीन भागों में विभाजित किया गया है।

१३.३ रीतिबद्ध काव्य-धारा :

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे रीतिकाल के अंतर्गत विभाजन किया है इसके अंतर्गत वो सभी काव्य आ जाते हैं जिसमें काव्यों का पद्यमय लक्षण प्रस्तुत कर सवा रचित काव्य प्रस्तुत किया गया हो और डॉ. नगेन्द्र इसे 'आचार्य कवियों का काव्य' कहा हैं । रीतिबद्ध काल के अंतर्गत उन कवियों को समावेश किया गया है जो रीति के बंधन में बंधे हुए है जिन्होंने लक्षण बद्ध, शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण कर रीतिग्रंथ की रचना की हैं । इस काल के अंतर्गत प्रमुख कवि - चिंतामणि, मतिराम, देव, जसवंत सिंह, कुलपति मिश्र, सूरती मिश्र, सोमनाथ, भिखारीदास, दूहल, रघुनाथ, रसिक गोविंद, प्रताप सिंह, ग्वाल।

१३.३.१ रीतिबद्ध के प्रमुख कवि :-

चिंतामणि :-

रीतिकालीन आचार्यों में सर्वप्रथम इन्हीं का नाम लिया जाता हैं । आ. रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का आरम्भ के प्रथम कवि चिंतामणि को माना है । इनका जन्म १६०० ई. में तथा मृत्यु लगभग १६८०-६५ के आसपास माना जाता हैं । यह तिकवाँपुर (जिला कानपुर) के रहने वाले हैं । इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था । इनके कुल चार भाई हैं, चिंतामणि, भूषण, मतिराम, जटाशंकर । ये शाह जी भोंसले, शाहजंहा और दाराशिकोह के यहाँ आश्रित रहे हैं । इनके ग्रंथों में कहीं-कहीं इनका नाम मणिमाल भी कहा हैं । इनकी रचनाओं की विशेषताओं के बारे में आचार्य शुक्ल कहते हैं "चिंतामणि ने काव्य के सब अंगों पर ग्रन्थ लिखे हैं । इनकी भाषा ललित और सानुप्रास होती थी । अवध के पिछले कवियों की भाषा देखते हुए इनकी ब्रजभाषा विशुद्ध दिखाई पड़ती हैं । विषय-वर्णन की प्रणाली भी मनोहर हैं । ये वास्तव में उत्कृष्ट कवि है ।"

इनके कुल नौ रचना बताई जाती हैं :- रसविलास, श्रृंगारमंजरी, छंदविचार पिंगल, कविकुलकल्पतरु, कृष्णचरित, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, कवित्तविचार और रामायण । जिसमें से पांच उपलब्ध हैं । रस विलास रस विवेचन का ग्रन्थ हैं । श्रृंगार मंजरी नायक-नायिका भेद का ग्रन्थ हैं। कविकुलकल्पतरु इनकी सबसे विशिष्ट रचना मानी जाती हैं इसमें श्रृंगार रस तथा रास के विभिन्न अवयवों का निरूपण किया गया हैं ।

कुलपति मिश्र :-

रीतिबद्ध परम्परा में आनेवाले प्रमुख आचार्यों में कुलपति मिश्र प्रमुख है । ये माथुर चौबे परशुराम मिश्र के पुत्र थे । इनका निवास स्थान आगरा है । यह महाराज जयसिंह के पुत्र महाराज रामसिंह के यहाँ आश्रित थे । महाकवि बिहारी के भानजे माने जाते है । इनका कविताकाल लगभग १६६० से १७०० के बीच ठहरता है । इनके द्वारा प्रमुख पांच ग्रंथ रचे हुए हैं 'रसरहस्य', 'संग्रामसार', 'दुर्गाभक्तिचंद्रिका', 'मुक्तातरंगिनी' तथा 'नखशिख' है जिसमें से तीन रचनाएं ही प्राप्त हैं । यह संस्कृत के प्रखर विद्वान थे । साहित्यशास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण इनके ग्रंथों में लक्षण ग्रंथों की अपेक्षा अधिक प्रोढ़ हैं । इनका रस रहस्य मम्मट के काव्य प्रकाश का छायानुवाद है ।

मतिराम :-

मतिराम रीतिकाल के मुख्य कवियों में प्रतिष्ठित है । इनका जन्म तिकवाँपुर, ज़िला कानपुर में संवत १६७४ के लगभग हुआ था । ये चिंतामणि और भूषण के भाई हैं । इनकी दो ग्रन्थ सबसे प्रसिद्ध मानी जाती है जिसमें रसराज और ललित ललाम हैं क्योंकि रस और अलंकार में इनकी रचना बहुत उपयोगी मानी जाती हैं । मतिराम बूँदी के महाराज भावसिंह के यहाँ बहुत समय तक रहे और उन्हीं के आश्रय में अपना 'ललित ललाम' नामक अलंकार का ग्रंथ संवत १७१६ और १७४५ के मध्य रचा । इनकी रचना के संदर्भ में आ. शुक्ल कहते है कि, "मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता है, उसकी सरलता और अत्यंत स्वाभाविकता उसमें ना तो भावों की कृत्रिमता है और ना ही भाषा की । भाषा शब्दाडंबर से सर्वथा मुक्त है ।" नायिका के विरह ताप को लेकर बिहारी के समान अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन इन्होंने नहीं किया है । ये बहुत दिनों तक जीवित रहे और लम्बा जीवन व्यतीत किया ।

इनका 'छंदसार' नामक पिंगल ग्रंथ महाराज शंभुनाथ सोलंकी को समर्पित है । इनका परम मनोहर ग्रंथ 'रसराज' किसी को समर्पित नहीं है । इनके अतिरिक्त इसके दो ग्रंथ और हैं, 'साहित्यसार' और 'लक्षण श्रृंगार' । बिहारी सतसई के ढंग पर इन्होंने एक 'मतिराम सतसई' भी बनाई, जो हिन्दी पुस्तकों की खोज में मिली है । इसके दोहे सरसता में बिहारी के दोहों के समान ही हैं ।

पद्माकर :-

पद्माकर रीतिकाल के अंतिम आचार्य है । इनका समयकाल सन १७५३ ई. से सन १८३३ ई. तक माना गया हैं । इनका जन्म स्थान -सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ इनके पिता मोहनलाल भट्ट जयपुर नरेश प्रतापसिंह के यहाँ दरबारी कवि रहे । पिता कविता लिखते थे इस कारण इनका प्रभाव पद्माकर पर भी रहा । यह तैलंग ब्राह्मण थे । पद्माकर महाराष्ट्र के सातारा छत्रपति के यहाँ राज कवि थे। इनका मुख्य विषय काव्यशास्त्र, वीरकाव्य, शृंगारिक रचना और भक्ति रचनाएं रही हैं । पद्माकर को अन्तिम दिनों में कुष्ठ रोग हो गया था । उसके निवारण हेतु उन्होंने गंगा लहरी की रचना की । ८० वर्ष के उपरान्त अंत में कानपुर गंगातट में शरीर छोड़ा।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएं पद्माभरण, प्रतापसिंह, विरूदावली यह जयपुर में महाराजा प्रतापसिंह के आश्रय में रहकर काव्य रचना करते थे, हिम्मत बहादुर विरूदावली - सुजाउदौला के सेनापति, प्रबोध पचासा, कलि पच्चीसी, जगद विनोद - ६ प्रकरण, ७३१ छन्द प्रतापसिंह पुत्र जगतसिंह पर, राम रसायन - वाल्मीकी रामायण का आधार लेकर, राजनीति, ईश्वर पच्चीसी, अन्तिम समय में कानपुर में "गंगालहरी" की रचना की । जगद् विनोद में छः प्रकरण और ७३१ छन्द है । शृंगार रस एवं नायिका भेद का विशद विवेचन काव्यांगो के लक्षण दोहों में है । इनकी प्रसिद्ध पंक्ती :-

"फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोंवदै लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी
छीनि पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसुकाय, 'लला फिर आइयो खेलन होरी ।"

देव :-

देव कवि का पुरा नाम देवदत्त था । इनका जन्म - सन् १६७३ ई. तथा मृत्यु सन् १७६८ में हुआ था । ये इटावा के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे । ये रईसो के यहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते है कहीं भी स्थाई रूप से किसी के यहाँ आश्रित नहीं रहे थे । इन्हें कोई अच्छा उदार आश्रयदाता नहीं मिला जिसके यहाँ रहकर इन्होंने सुख से जीवन यापन किया हो । इसका कारण या तो इनकी प्रकृति की विचित्रता रही या इनकी कविता के साथ उस काल की रुचि का असामंजस्य रीतिकाल के सभी कवियों में सबसे अधिक ग्रन्थ देव के ही है । इनके कुल ५२ रचना बताई जाती हैं ।

इसमें से यह ग्रन्थ उपलब्ध हैं ; भाव विलास, अष्टयाम, भावानिविलास, सुजान विनोद, प्रेमतरंग, रागरत्नाकर, कुशलविलास, देवचरित, प्रेमचंद्रिका, जातिविलास, रसविलास, काव्य रसायन और शब्द रसायन, सुखसागर तरंग, वृक्षविलास, पावस विलास, ब्रह्म दर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, जगदर्शन पचीसी, रसानंद लहरी, प्रेमदीपिका, नखशिख, प्रेमदर्शन । इन्होंने भावविलास की रचना संवत १७४६ में दिया है और ग्रंथ निर्माण का समय इन्होंने अपनी अवस्था

१६ ही वर्ष की बतलाई है । इस प्रकार से इनका जन्म संवत १७३० के आसपास का निश्चित होता है । इसके अतिरिक्त इनका और वृत्तांत कहीं प्राप्त नहीं होता । देव ने अपने 'अष्टयाम' और 'भावविलास' को औरंगजेब के बड़े पुत्र 'आजमशाह' को सुनाया था जो कविता के प्रेमी थे । इसके बाद इन्होंने 'भवानीदत्ता वैश्य' के नाम पर 'भवानी विलास' और 'कुशलसिंह' के नाम पर 'कुशल विलास' की रचना की । इसके बाद 'मर्दनसिंह' के पुत्र 'राजा उद्योत सिंह वैश्य' के लिए 'प्रेम चंद्रिका' बनाई । इसके उपरांत यह लगातार अनेक प्रदेशों में घूमते रहे । इस यात्रा के अनुभवों का इन्होंने अपने 'जातिविलास' नामक ग्रंथ में उपयोग किया । इस ग्रंथ में देव ने भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न प्रदेशों की स्त्रियों का वर्णन किया है । इस प्रकार के वर्णन में उनकी विशेषताएँ अच्छी तरह व्यक्त हुई हों, ऐसा नहीं है । इतना घूमने के बाद इन्हें एक अच्छे आश्रयदाता 'राजा मोतीलाल' मिले, जिनके नाम पर संवत १७८३ में इन्होंने 'रसविलास' नामक ग्रंथ बनाया । जिसमें इन्होंने 'राजा मोतीलाल' की बहुत प्रशंसा की है - "मोतीलाल भूप लाख पोखर लेवैया जिन्ह लाखन खरचि रचि आखर ख़रीदे हैं।"

भिखारीदास :-

भिखारीदास रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से है । आचार्य भिखारीदास का जन्म प्रतापगढ़ के निकट टेंउगा नामक स्थान में हुआ था । इनका रचना काल १७२५-१७६० ई. मानी जाती है । अपनी रचनाओं में इन्होंने अपना वंश परिचय दिया है । इनके पिता कृपालदास, पितामह वीरभानु, प्रपितामह राय रामदास और वृद्ध प्रपितामह राय नरोत्तम दास थे । भिखारी दास जी के पुत्र अवधेश लाल और पौत्र गौरीशंकर । इनकी मृत्यु बिहार में आरा के निकट भभुआ नामक स्थान पर हुई । भिखारीदास द्वारा लिखित सात कृतियाँ प्रामाणिक मानी गई हैं - रस सारांश, काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, छन्दोर्णव पिंगल, अमरकोश या नामप्रकाश प्रकाश, विष्णु पुराण भाषा और सतरंज शासिका हैं । इसमें से अमरप्रकाश या नाम प्रकाश संस्कृत के अमरकोश का पद्यानुवाद है । विष्णुपुराण भी अनुवादित है ।

इनका सबसे प्रख्यात और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्य निर्णय' है; इसमें इन्होंने काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य पुरुष, स्वरुप, काव्य भाषा, उत्तम काव्य रचयिता के गुण, शब्द शक्ति, रस सामग्री, अलंकार, तुक और दोष का सम्पूर्ण विवेचन किया है । इस ग्रंथ को देखकर कह सकते हैं कि काव्य के सबसे अधिक विषयों का विवेचन करने वाले प्रथम कवि हैं । इन्होंने रीतिकर्म के साथ-साथ कवि-कर्म का सामंजस्यपूर्ण निर्वाह किया है ।

ग्वाल :-

रीतिकाल के अंतिम चरण में ग्वाल एक प्रख्यात सर्वांग निरूपण रीतिबद्ध कवी थे इनका जन्म १७९१ ई. में वृन्दावन में हुआ था । बरेली - निवासी खुशालराय इनके काव्य गुरु माने जाते हैं । जीवनकाल में ये पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह, रामपुर के नवाब, नाभा के महाराजा जसवंतसिंह, मजीठा-निवास लहनासिंह आदि के आश्रय में रहे थे । ग्वाल ने अपने काव्य में सभी रीति प्रवृत्तियों को समेट दिया है । इनकी कुल ६ रीति ग्रन्थ हैं ; रसिकानन्द, कविदार्पण, बलवीर विनोद, साहित्यानंद, प्रस्ताव प्रकाश, नेहनिर्वाण और वीर रचनाओं में हम्मीरहठ, विजय-विनोद, रचनाएं हैं । इनमें से साहित्यानंद इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है । यह सोलह स्कंध में विभाजित विशालकाय ग्रन्थ है । रीति निरूपण में इनकी प्रवृत्ति समन्वयात्मक रही है । आचार्य पक्ष की तुलना में कवि पक्ष श्रेष्ठ है ।

१३.३.२ रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

रीतिबद्ध कवियों ने अधिकांश रूप में काव्य में रस और अलंकार निरूपण पर ही बल दिया। इस काल के राजाओं की विलासितावृत्ति को तुष्टि करने के लिए राज्याश्रित कवि अनेक श्रृंगारिक रचनाये लिखते थे; और इस काल की श्रृंगारिकता ही प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक थी। राजाओं के पराक्रम की प्रशंसा में अनेक लक्षणबद्ध रचना लिखते गए जिससे कवियों को राजाओं द्वारा अधिक धन प्राप्ति हो जाती थी । इस प्रकार विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं -

१. कवि कर्म और आचार्य कर्म का सम्बन्ध :-

संस्कृत में साहित्यशास्त्र का निरूपण, विवेचन तथा सिद्धांत का प्रतिपादन करना आचार्यों का काम था । संस्कृत साहित्य में कवी कर्म और आचार्य कर्म को पृथक माना गया हैं । लेकिन राजाश्रित दरबार में साहित्य शास्त्र का निरूपण करनेवाला एक ही व्यक्ति आचार्य भी और कवि भी था लेकिन आचार्य शुक्ल ने शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करने के पश्चात भी इन कवियों को आचार्य की संज्ञा नहीं दी रीतिग्रन्थ की रचना करने वाले कवियों के आचारत्व पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए आचार्य शुक्ल लिखते है "हिंदी के लक्षण ग्रंथों की परिपाठी पर रचना करने वाले सैकड़ों कवी हुए वे आचार्य की कोटि में नहीं आ सकते वे वास्तव में कवि ही थे ।" आचार्य की विशेषता को निर्धारित करते हुएं कहते हैं कि "आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ ।" रीति ग्रंथकारों का प्रमुख उद्देश्य कविता करना था शास्त्र विवेचन नहीं अतः कवि लोग एक ही दोहे मे अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कवि कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे । कवियों का उद्देश्य काव्यों का परिचय देना था । अपने कवित्त शक्ति का परिचय देना नहीं ।

२. काव्य में श्रृंगारिकता :-

रीतिबद्ध कवियों की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति शृंगारिकता है । इन कवियों का श्रृंगार वर्णन एक ओर तो शास्त्रीय बन्धनों से युक्त है; तो दूसरी ओर विलासी आश्रयदाताओं की प्रवृत्ति ने इसे उस सीमा तक पहुँचा दिया जहाँ यह अश्लीलता का संस्पर्श करने लगा । नायक-नायिका भेद का निरूपण प्रायः इसी के अन्तर्गत किया गया है । इस काल में काव्य का मुख्य विषय नायिका भेद ही रहा है, जिसमे नायिका श्रृंगार रूप का आलंबन हैं और आलंबन के अंगों का वर्णन करना प्रमुख विषय हो गया । इस विषय पर कई ग्रंथों की रचना हुई । वस्तुतः इन कवियों को वह दरबारी वातावरण प्राप्त हुआ जिसमें व्यक्ति की दृष्टि विलास के समस्त उपकरणों के संग्रह की ओर ही रहती है । निर्द्वन्द्व भोग में ही जीवन की सार्थकता समझी गई और नारी को उपभोग की वस्तु मानकर देखा गया । पुरुष की समस्त चेष्टाएं उसे एक वस्तु के रूप में ही देखती हैं । विलास वृत्ति की प्रधानता के कारण इनकी सौन्दर्य दृष्टि भी अंग सौष्ठव, शारीरिक बनावट एवं बाह्य रूपाकार तक सीमित रही, आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में उनकी वृत्ति नहीं रही ।

नारी के प्रति सामन्ती दृष्टि होते हुए भी कहीं-कहीं स्वकीया प्रेम के दृश्य उपलब्ध हो जाते हैं, अन्यथा सर्वत्र बाह्य सौन्दर्य की प्रधानता दिखाई पड़ती है । संयोग चित्रण में जहां सुख वर्णन एवं विपरीत रति का चित्रण है, वहां अश्लीलता का समावेश हो गया है । वियोग वर्णन के अन्तर्गत रीतिमुक्त कवियों - घनानन्द, आदि ने ह्रदय की विकलता का मार्मिक एवं अनुभूतिपरक चित्रण किया । इस पर डॉ. भागीरथ मिश्र ने रीतिकालीन कवियों की इस श्रृंगारिकता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है - "उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर

सोपानों की ओर वे नहीं जा सके । प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या, आदि उदात्त पक्ष उनकी दृष्टि में बहुत कम आए हैं ।"

३. भारतीय काव्यशास्त्र परम्परा का सुबोध वर्णन :-

भारतीय काव्यशास्त्र में विभिन्न सम्प्रदाय रहे हैं लेकिन रीतिबद्ध कवियों ने विशिष्ट एक सम्प्रदाय के प्रति अपनी प्रतिबद्धता घोषित नहीं किया क्योंकि इनका उद्देश्य काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का व्याख्या करना नहीं था बल्कि संस्कृत काव्यशास्त्र में रचित काव्यांगों को लोकभाषा में प्रतिपादन करना था । कवियों ने काव्यशास्त्रीय परम्परा को अपनाकर अपने अनुकूल भाषा में ग्रंथों की रचना करने के उपरांत उन्होंने आधार ग्रन्थ के रूप में श्रृंगार रस और नायिका भेद के लिए रसमंजरी, रस तरंगनी, चंद्रलोक आधार लिया । इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय रचना भी सरल रूप से लोकभाषा में भी उपयोग होने लगी ।

४. आलंकारिकता :-

रीतिकालीन कवियों के काव्य में अलंकार इनकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है । कविताओं को विभिन्न अलंकारों के माध्यम वे दरबारी कवि रचनाएं करते थे और अपने कवि कर्म की सार्थकता समझते थे । अलंकारों के प्रति इनका मोह अति प्रबल था, अतः वे कविता में अलंकारों का अधिक प्रयोग करते थे । केशव तो अलंकार विहीन कविता को 'सुन्दर' मानते ही नहीं भले ही वह अन्य कितने ही गुणों से युक्त क्यों न हो इसलिए काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता घोषित कर कहते थे -

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त ।।

इस प्रकार कल्पना की ऊंची उड़ान, चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं पाण्डित्य प्रदर्शन रीतिकालीन काव्य में आलंकारिकता के कारण ही आया है । यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शाब्दिक चमत्कार की सृष्टि उसमें पर्याप्त की गई है तो दूसरी ओर उसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति जैसे - भाव निरूपक अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । रीतिबद्ध कवियों के लिए अलंकार शास्त्र की जानकारी एक अनिवार्यता थी, क्योंकि इसके बिना उसे सम्मान मिलना कठिन था, परिणामतः इस काल में आलंकारिकता खूब फली-फूली । अलंकार जो कविता का 'साधन' है । इस काल में 'साध्य' बन गया ।

५. आश्रयदाताओं की प्रशंसा :-

रीतिबद्ध के अधिकांश कवि राजदरबारों में आश्रय प्राप्त थे । देव, भूषण, सूदन, केशव, मतिराम, आदि सभी प्रसिद्ध कवि राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे, अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य रचना करते । देव ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह की प्रशंसा में 'भवानी विलास' लिखा तो सूदन ने भरतपुर के राजा सुजानसिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित' की रचना की । वीर रस के प्रसिद्ध कवि भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवा बावनी' एवं छत्रसाल बुन्देला की प्रशंसा में 'छत्रसाल दशक' की रचना की । भूषण जैसे कुछ को यदि छोड़ दिया जाए तो रीतिकाल के अधिकांश कवियों द्वारा की गई आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण है । कवियों का गुणगान करना अनचाही विवशता थी । कवियों को दरबार से बाहर करने के लिए भी षड्यन्त्र चलते रहते थे, अतः आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए

munotes.in

उन्हें प्रयत्नशील रहना पड़ता था । स्वतः स्फूर्त काव्य रचना की प्रवृत्ति राजनीतिक जोड़-तोड़ एवं दांव-पेच में लीन इन कवियों में हो ही नहीं सकती थी ।

६. प्रकृति - चित्रण :-

प्रकृति का वर्णन भी रीतिबद्ध कवि अलंकार के रूप में किया करते थे । रीतिबद्ध कवियों ने आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण प्रायः बहुत कम हुआ है, जबकि आलंकारिक रूप में तथा उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है । परम्परागत रूप में षड्ऋतुवर्णन एवं बारहमासा का चित्रण भी उपलब्ध होता है; किन्तु उसमें मौलिकता एवं नवीनता नहीं है । देव, मतिराम, भिखारीदास आदि कवियों के प्रकृति चित्रण इसी प्रकार के हैं । सेनापति प्रकृति चित्रण की दृष्टि से रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गए हैं । उनके द्वारा किया गया वर्षा ऋतु का वर्णन उल्लेखनीय है जैसे :

सेनापति उनए नए जलद सावन के
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै ।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहू भांति ।
आने हैं पहार मानों काजर के ढोय कै ।।

इसी प्रकार रीतिबद्ध के एक अन्य कवि पद्माकर का वसंत वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है । यथाः

द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखी दीप दीपन में दिपत दिगंत है ।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में
बनन में बागन में बगर्यो वसंत है ।।

प्रकृति के अनेक उपमान-कमल, चन्द्रमा, चातक, हंस, कोयल, मेघ, पर्वत, पुष्प आदि लेकर इन्होंने नायिका के अंग-प्रत्यंगों का सुन्दर चित्रण किया है ।

७. ब्रजभाषा का प्रयोग :-

रीतिकालीन कवियों की काव्य रचना ब्रजभाषा में रही है । रीतिकाल में केवल ब्रजक्षेत्र के कवियों ने ही ब्रजभाषा में काव्य रचना नहीं की अपितु ब्रजक्षेत्र के बाहर के हिन्दी कवियों ने भी ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की । जैसे - 'भिखारीदास' जी ने लिखा हैः

ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ
ऐसे ऐसे कविन की बानी हु सौं जानिए ।

स्पष्ट है कि रीतिकाल तक आते-आते ब्रजभाषा व्यापक काव्य भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी थी । रीतिकालीन ब्रजभाषा अपने शब्द-सौष्ठव, अनुप्रासिकता, मधुरता एवं पदलालित्य के कारण काव्यभाषा के लिए पूर्ण उपयुक्त बन चुकी थी, किन्तु उसमें कवियों ने मनमानी तोड़-मरोड़ की ।

८. आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव :-

रीतिबद्ध कालीन कवियों में आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव रहा हैं उनका उद्देश्य सिर्फ कवी शिक्षा ही रहा हैं इसलिए उन्होंने सिर्फ काव्य शास्त्रीय ग्रंथो का अनुवाद मात्र किया । उन्हों लक्षणों के आधार पर साहित्य की रचना कर साहित्यिक योगदान दिया हैं । दरबारी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने काव्य स्तुति में ही कार्य किया उनकी दृष्टि आलोचनात्मक नहीं बन पायी वे भले

ही काव्यशास्त्रीय ग्रंथो का निरूपण किया सिर्फ काव्यों में अलंकारिकता और शास्त्रीयता लाने के लिए आलोचना बहीं की उनमें प्रायः आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव रहा हैं ।

९. जीवन के प्रति एहिक दृष्टिकोण :-

रीतिबद्ध कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण एहिक रहा हैं वे आदर्शवादी नहीं थे । वे भक्तिकाल के कवियों के भाति संसार के सुख दु:ख को छोड़कर वैराग्य धारण करना उनका प्रतिपाद्य नहीं था । वे ऐहिक जीवन के विभिन्न अंगों को देख नहीं पाएं इसीलिए उनके जीवन में तत्काल परिस्थिति तथा जीवन के विलासी अंक का चित्रण किया । जिस परिवेश में रहते थे वे उसी का चित्रण करते थे उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी रहा हैं। वे उस समय के समाज को काव्य में अभिव्यक्त करते थे जो उनके ग्राहक थे। उनका समर्पण राजा-रजवाड़ों, सामंतों के प्रति रहती थी । इसके अलावा भी ने समाज के अन्य वर्गों के जीवन का भी परोक्ष चित्रण किया हैं । उनके काव्य में लक्षण के उदाहरण स्वरूप कल्पना के साथ-साथ अपने युग के सामाजिक जीवन की विविध रंग छटाएं भी विद्यमान थी ।

१३.४ रीतिसिद्ध काव्य-धारा

रीतिसिद्ध काव्य-धारा के कवि रीतिबध्द कवियों से कहीं विशेषताओं के कारण भिन्न है। इन्होंने कभी रीति ग्रंथ परम्परा के अनुसार शास्त्रीय बध्द रचना नहीं की परन्तु रीति की भाँति ही वे भी अंलकारिक और श्रृंगारिक रचना के पारंगत थे। यह पूर्णतः रीति ज्ञाता थे। जिनका कलाशास्त्रीय ज्ञान से आबध्द था लेकिन लक्षणों के चक्कर में नहीं पड़े।

१३.४.१ रीतिसिद्ध के प्रमुख कवि :-

बिहारी :-

बिहारी रीतिसाहित्य के रीतिसिद्ध काव्य धारा के एक मूर्धन्य कवि है । महाकवि बिहारीलाल का जन्म १६०३ ई. के लगभग ग्वालियर में हुआ । वे जाति के माथुर चौबे थे । उनके पिता का नाम केशवराय था। उनका बचपन बुंदेल खंड में कटा और युवावस्था ससुराल मथुरा में व्यतीत हुआ । जिसके विषय में जानकारी निम्न दोहे से प्रकट है :-

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले बाल ।
तरुनाई आई सुघर मथुरा बसि ससुराल ।।

जयपुर-नरेश मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में रहा करते थे । राजा अपनी नयी रानी के प्रेम में इतने डूबे रहते थे कि वे महल से बाहर भी नहीं निकलते थे और राज-काज की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे । मंत्री आदि सभी लोग इससे बड़े चिंतित थे, किंतु राजा से कुछ कहने की शक्ति किसी में न थी । बिहारी ने यह कार्य अपने ऊपर लिया । उन्होंने निम्नलिखित दोहा किसी प्रकार राजा के पास पहुंचाया :-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल ।
अली कली ही सों बिंध्यों, आगे कौन हवाल ।।

इस दोहे का राजा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे रानी के प्रेम-पाश से मुक्त होकर पुनः अपना राज-काज संभालने लगे । वे बिहारी की काव्य कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने

munotes.in

बिहारी से और भी दोहे रचने के लिए कहा और प्रति दोहे पर एक अशर्फ़ी देने का वचन दिया। बिहारी जयपुर नरेश के दरबार में रहकर काव्य-रचना करने लगे, वहां उन्हें पर्याप्त धन और यश मिला। सन १६६४ ई. में उनकी मृत्यु हो गई। बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है। यह मुक्तक काव्य है। इसमें ७१९ दोहे संकलित हैं। बिहारी सतसई श्रृंगार रस की अत्यंत प्रसिद्ध और अनूठी कृति है। इसका एक-एक दोहा हिंदी साहित्य का एक-एक अनमोल रत्न माना जाता है।

रसनिधि :-

रसनिधि दतिया राज्य के बरौनी इलाके के संपन्न जमींदार 'रसनिधि' नाम से काव्यरचना करते थे। इनका वास्तविक नाम पृथ्वीसिंह था। इनका रचनाकाल संवत् १६६० से १७१७ तक माना जाता है। इनकी रतन हजारा, विष्णुपद कीर्तन, कवित्त, बारहमासा, रसनिधि-सागर, हिंडोला, अरिल्ल आदि रचनाए प्राप्त हैं, जिसमें से इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'रतनहजारा' है, जो बिहारी सतसई के अनुकरण पर लिखा गया दोहा है। इनके दोहों का एक संग्रह छतरपुर के श्री जगन्नाथप्रसाद ने प्रकाशित किया है।

रसनिधि प्रेमी स्वभाव के रसिक कवि थे। इन्होंने रीतिबद्ध काव्य न लिखकर फारसी की शायरी शैली में प्रेम की विविध दशाओं और चेष्टाओं का वर्णन किया है। फारसी के प्रभाव के कारण प्रेमदशाओं में व्यापकता प्राप्त की किंतु भाषा और अभिव्यंजना की दृष्टि से इनका काव्य अधिक सफल नहीं हो सका। शब्दों का असंतुलित प्रयोग तथा भावों की अभिव्यक्ति में शालीनता का अभाव खटकनेवाला बन गया।

नृपशम्भू :-

नृप शंभु के संबंध में हिंदी-साहित्य के इतिहासों में विभिन्न मत पाये जाते हैं। किसी ने इन्हें सितारागढ़ वाले और किन्हीं इन्हें शंभुनाथसिंह सोलंकी कहा है। नृप शंभु की रचनाओं में जो उपनाम प्रयुक्त हुए हैं, वे हैं - नृप शंभु, शंभुराज, शंभु-कृति, शंभु जू आदि। शंभुराज या नृप शंभु छत्रपति शिवाजी महाराज के पुत्र थे। इनका जन्म १६५७ ई. में पुरंदर में हुआ था। दो वर्ष बाद ही माता का स्वर्गवास हो गया, अतः इनका पालन-पोषण इनकी दादी अर्थात शिवाजी की माता जीजाबाई ने किया। नृप शंभु की शिक्षा-दीक्षा तत्कालीन परंपरा के अनुसार हुई, जिसमें इन्होंने संस्कृत, फ़ारसी का ज्ञान प्राप्त किया। नृप शंभु ने संस्कृत में 'बुधभूषण' नामक ग्रंथ की रचना की, जिससे स्पष्ट है कि इन्होंने अलंकारशास्त्र, पुराण, संगीत और धनुर्विद्या में शिक्षा प्राप्त की थी। इनका विवाह सन् १६६५ में येसूबाई से हुआ, जो बड़ी योग्य पत्नी थीं। वे राजनीति में बड़ी निपुण थीं और राजकाज में भी सहायता देती थीं।

नृप शंभु की तीन हिंदी-कृतियां प्राप्त होती हैं - 'नायिकाभेद', 'नखशिख' और 'सात दशक'। प्रथम दो रचनाएं इनकी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का प्रमाण हैं। इनके छंदों को देख कर साथ भाव और भाषा का लालित्य भी विद्यमान है। शंभुराज को आठ वर्ष की अवस्था में औरंगज़ेब द्वारा 'पंचहज़ारी' पद प्रदान किया गया।

नेवाज :-

नेवाज महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि थे। इनका समय सन् १६८० ई. के आसपास मानना चाहिए। मिश्रबंधुओं के अनुसार ये कान्यकुब्ज तिवारी थे। छत्रसाल से इनका संबंध भगवंत कवि के निम्नलिखित दोहे से प्रमाणित होता है :

भली आजु कलि करत भली बाजु हौ, छत्रसाल महराजा।
जहं भगवतगीता पढ़ी, तहं कवि पढ़त नेवाज।।

इससे स्पष्ट होता है कि, नेवाज छत्रसाल के दरबार में भगवंत कवि के पश्चात नियुक्त हुए । नेवाज कवि के संबंध में और विशेष जानकारी नहीं मिलती । इनका 'शकुंतला नाटक' नामक ग्रंथ मिलता है, जो वास्तव में नाटक न हो कर काव्यग्रंथ ही है । इसमें उत्तम छंद रचना है तथा भावों का मार्मिक चित्रण मिलता है ।

मिश्रबंधुओं ने इनकी भाषा की बड़ी प्रशंसा की है । संयोग-श्रृंगार का इन्होंने विशेष वर्णन किया है । इनकी रचनाशैली रीतिस्वच्छंद कवि ठाकुर की टक्कर की है । ऐसा लगता है कि इन्होंने श्रृंगार का व्यापक वर्णन करने वाला कोई ग्रंथ लिखा होगा, परंतु अब वह नहीं मिलता । इस संदर्भ में जो स्फुट छंद मिलते हैं, वे इस बात के द्योतक हैं कि इन्होंने सहज ढंग से प्रेम-व्यापार का वर्णन किया है ।

हठीजी :-

हठीजी का समयकाल सन १७८० ई. के आसपास निर्धारित किया गया है । ये राधावल्लभ संप्रदाय के कृष्णभक्त कवि थे । इस संप्रदाय के ग्रंथों में इनका जन्मस्थान चरखारी माना जाता है । यद्यपि ये कृष्णभक्ति परंपरा के कवि थे, इसलिए बच्चन जी ने इन्हें रीति-चेतना से संपृक्त किया है क्योंकि उसके अंतर्गत उक्तिवैचित्र्य, नखशिख सौंदर्य चित्रण और श्रृंगारवर्णन की रीतिपरंपरा का पूरा अनुगमन है। इनका एक ही प्रसिद्ध ग्रंथ उपलब्ध होता है, जो 'श्रीराधासुधाशतक' नाम से है । इसके अंतर्गत १०३ छंद हैं । यद्यपि भाव की मार्मिकता और नवीन उद्भावना इनकी रचना में विशेष नहीं मिलती, परंतु राधा के वर्णन में राजसी ठाटबाट और विलास का चित्रण भरपूर है । जिस प्रकार इनके छंदों में विलास और संपन्नता का वर्णन है, उसी प्रकार इनकी कविता में अलंकृति है और विशेष रूप से उपमा और उत्प्रेक्षा जैसे सादृश्यमूलक अलंकार विपुलता से मिलते हैं ।

पजनेस :-

पजनेस का जन्म पन्ना में सन १८१५ ई. के लगभग माना गया है। तथा आ. शुक्ल ने इनका रचनाकाल १८४३ जे आस-पास माना हैं। इनकी रची हुई कोई पुस्तक नहीं मिलती लेकिन इनकी दो रचनाएं बताई गई है जो 'मधुप्रिया' और 'नखशिख' हैं। ये दोनों ही पुस्तकें सरोजकार में उपलब्ध थीं । 'सरोज' में 'मधुप्रिया' से उद्धरण भी दिए गए हैं।

पजनेस रसवादी परंपरा के कवि थे और रीतिकालीन कवियों की तरह अपनी रचनाओं के लिए अलंकार योजना शब्दचमत्कार के लिये आवश्यक मानते थे जिसके कारण कहीं कहीं इनके पद अर्थहीन से लगते हैं । इनकी भाषा स्वच्छ, सरल और स्वाभाविक है वहाँ इनके शब्दचित्र बहुत साफ और चटकीले उतर सके है।

१३.४.२ रीतिसिद्ध काव्य की प्रवृत्तियाँ :

रीतिसिद्ध काव्य कवियों से विशेषताओं के कारण भिन्न हैं इन्होंने कभी रीति ग्रन्थ परम्परा के अनुसार शास्त्रीय बद्ध रचना नहीं की परन्तु रीति की भाँति ही वे भी अलंकारिक और श्रृंगारिक रचना के पारंगत थे यह पूर्णतः रीति ज्ञाता थे । जिनका काव्य शास्त्रीय ज्ञान से आबद्ध

था लेकिन उनके लक्षणों के चक्कर में नहीं पड़े । आचार्य विश्वनाथ ने ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि की संज्ञा देकर रीतिबद्ध कवियों से भिन्न रखा है। रीतिसिद्ध के प्रतिनिधित्व कवि बिहारी, रसनिधि, नृपशम्भू, नवाज, हठीजी, पजनेश आदि हैं । उनमें से प्रसिद्ध कवि बिहारी रहे है जिनका एक मात्र ग्रन्थ बिहारी सतसई है ।

१. बहुज्ञता एवं चमत्कार प्रदर्शन :-

रीतिबद्ध कवियों में पाण्डित्य प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, उसके कारण रीतिसिद्ध कवि काव्य में विविध विषयक ज्ञान का समावेश करके अपनी बहुज्ञता प्रदर्शित करते थे। जैसे बिहारी ने अपने काव्य में ज्योतिष, पुराण, आयुर्वेद, गणित, कामशास्त्र, नीति, चित्रकला आदि अनेक विषयों की जानकारी समाविष्ट है । बिहारी ने अपने काव्य में ज्योतिष के राजयोग प्रकरण का उल्लेख निम्न दोहे में है :

सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यो सुदिन सनेह ।
क्यों न नृपति है भोगवै लहि सुदेस सब देह ।।

इसी प्रकार आयुर्वेद ज्ञान का परिचय उनके निम्न दोहे से प्राप्त होता है । विषम ज्वर का उपचार 'सुदर्शन' चूर्ण से होता है । सुदर्शन का श्लिष्ट प्रयोग करते हुए चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति का परिचय भी यहां दिया गया है :

यह विनसत नग राखि कैं जगत बड़ो जस लेहु ।
जरी विषम ज्वर ज्याइए आइ सुदरसन देहु ।।

रीतिसिद्ध कवियों ने भी रीतिबद्ध की तरह ही काव्य में यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शब्दालंकारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन हेतु किया गया है । वस्तुतः इस काल में शब्दों की पच्चीकारी एवं कला की रमणीयता पर ही अधिक ध्यान दिया गया । ये लोग इसी को कवि कर्म समझते थे । वर्ण्य विषय की मार्मिकता एवं भावव्यंजना पर इन्होंने उतना ध्यान नहीं दिया जितना अलंकार योजना पर दिया ।

२. भक्ति एवं नीति :-

बिहारी ने जिस प्रकार श्रृंगारिक रचना में महारत हासिल की उसी प्रकार उन्होंने भक्ति और नीति की रचनाएं लिखकर गागर में सागर भर दिया । इनके काव्य की प्रशंसा करते हुए डॉ. नगेन्द्र के कहते है - "रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है - हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी । भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करें अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सकें ।" बिहारी के कई दोहे है जो भक्ति परक है; लेकिन राधाकृष्ण के नाम पर लिखी गई रचनाओं में भक्तिभावना प्रमुख न होकर श्रृंगार भावना प्रमुख है । जैसे -

रीझिहैं सुकविजोतौ जानौ कविताई।

न तौ राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।।

रीतिसिद्ध कवि बिहारी की कृति 'सतसई' में ७० दोहे भक्तिभावना के हैं । नीति सम्बन्धी उक्तियां भी इन कवियों ने पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं । दरबारी वातावरण के सतसई में नीति के अनेक दोहे उपलब्ध है; यथा -

नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय ।
जेतो नीचौ है चले तेतो ऊंचो होय ।।

घाघ, बेताल, वृंद एवं गिरधरदास ने नीति सम्बन्धी प्रचुर काव्य की रचना की थी। वृंद सतसई में नीति सम्बन्धी सुन्दर उक्तियों को काव्य रूप दिया गया है । यथा -

भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नांहि ।
जानि परत हैं काग पिक रितु वसंत के मांहि ।।

इस प्रकार बिहारी के काव्य में श्रृंगारिकता के साथ साथ भक्ति और नीति के भी दोहे प्रभावित रूप से दृष्टिपात है ।

३. प्राकृतिक वर्णन :-

रीतिसिद्ध काल में कवियों के प्रकृति का वर्णन प्रायः उद्‌द्दिपन हेतु चित्रण किया है । श्रृंगार के संयोग पक्ष एवं वियोग पक्ष को अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति का वर्णन विभिन्न अवस्था में किया गया है । बिहारी ने अपने काव्य में प्रकृति का प्रयोग काव्य में अधिकतर संयोग पक्ष को प्रधानता दी जिसमें उन्होंने षट ऋतू वर्णन एवं बारहमासा का वर्णन किया है; जिसमे बिहारी के दोहे इस प्रकार है -

रनित भृंग घंतावली झरित दान मधुनीर।
मंद मंद आवतु चाल्यो कुंजर कुज समीर।।

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सो कियो दीरघ दाध निदाघ।।

प्रकृति के अनेक उपमान कवि ने नायिका के अंको की श्रृंगारिकता को अभिव्यक्त करने के लिए नख शिख वर्णन किये है ।

४. श्रृंगार की सरस अभिव्यक्ति :-

श्रृंगारिक रचना करना रीतिकालीन कवियों की प्रधान विशेषता हैं । संयोग पक्ष हो या वियोग पक्ष रीतिसिद्ध कवियों की श्रृंगारिक रचना अद्भुत हैं । श्रृंगारिक रचना में रीतिसिद्ध कवियों ने इसे लक्षणबद्ध किया लेकिन रीति सिद्ध कवियों ने इसे सामान रूप से लिखा जिसमें कोई भी नियम या शास्त्रीय बंधन नहीं थे । इसी कारण श्रृंगारिक रचना में रीतिबद्ध कवियों की तुलना में रीतिसिद्ध कवियों की रचनाओं में रस-संचार की क्षमता अधिक पायी जाती हैं जैसे बिहारी के काव्य में राधा-कृष्ण के श्रृंगारिक संयोग-पक्ष को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं जैसे-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय
सौंह करे भौहनी हंसे, दैन कहे, नटी जाइ ।

इनके श्रृंगार कल्पना में जो मधुरता झलकती है यह रीति बद्ध कवियों में नहीं हैं । इसके अलावा ऋतू वर्णन, बारामासा वर्णन, नखशिख वर्णन को रीतिसिद्ध कवियों ने विशेष रूप से इन्हें काव्य का विषय बनाया हैं।

५. ब्रजभाषा का परिष्कृत रूप :-

भाषा की दृष्टि से रीतिसिद्ध कवियों की भाषा अधिकतर ब्रज ही रहीं हैं वह भी काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग लोग भाषा ही रही हैं । बिहारी के भाषा के संदर्भ में आचार्य शुक्ल कहते हैं "बिहारी की भाषा चलाती होने पर भी साहित्यिक हैं और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर हैं यह बात बहुत कम कवियों में पायी जाती हैं ।" ब्रज के साथ-साथ इनके शब्दों में अरबी-फारसी शब्दों का उपयोग करते हैं जैसे बिहारी के दोहे -

सघन कुञ्ज, छाया सुखद सीतल सुरभि समीर ।
मन हवे जात अजौं, वा जमुना के तीर ।।

ब्रज भाषा में कोमलता, अर्थ प्रधानता, व्यंजनात्मकता की मात्रा अधिक पायी जाती हैं । रीति सिद्ध कवियों ने अपने काव्य में ब्रज भाषा को ही अपनाया हैं ।

६. भावपक्ष एवं कलापक्ष का समन्वय :-

रीतिसिद्ध कवियों की रचनाएं लक्षणबद्ध तथा शास्त्रीयबद्ध न होने के कारण काव्य में भाव पक्ष और कलापक्ष की प्रगल्भता मिलती हैं । रीतिबद्ध कवियों में शास्त्रीयबद्धता होने के कारण उनके काव्य में भाव पक्ष नीरस बन गया और उनमें कला की प्रधानता अधिक रही परन्तु रीतिसिद्ध काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय रहा । जैसे -

जपमाला छापा तिलक सरे न एकौ काम । मन कांचे नाचे बृथा साँचे रांचे राम ।।
कनक-कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय । वह खाए बौराय नर, यह पाए बौराय ।।

इस प्रकार इनकी कविता की कल्पना में नवीनता ही नहीं बल्कि भाव और कला का लालित्य भी हैं ।

७. अलंकार का प्रयोग :-

रीतिबद्ध कवियों की भाँति ही रीति सिद्ध कवियों की रचनाओं में भी अलंकार योजना निपुणता के विविध रूप देखने मिलते हैं जैसे अनुप्रास, श्लेष अलंकारों का प्रयोग अधिक रूप से किया जाता हैं । किसी-किसी दोहों में कई अलंकार उलझ पड़े हैं परन्तु उसके कारण उनके काव्य में भद्दापन नहीं आया । जैसे असंगति और विरोधभास की मार्मिक प्रसिद्ध उक्तियां -

दृग अरुझ्त टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठ दुर्जन हिए, दई नई यह रीति ।।
तंत्रीनाद कबित्त रस, सरस राग रति रगं ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग ।

इस प्रकार काव्य में अलंकारों का प्रयोजन सही रूप में किया है।

८. शुद्ध कलात्मक दृष्टिकोण :-

रीतिसिद्ध कवियों का कलात्मक दृष्टिकोण शुद्ध ही रहा है रीतिबद्ध कवियों का कलात्मक पक्ष शास्त्रीयता से अधिक जुड़ा हुआ था । इसके विपरीत रीतिसिद्ध कवियों का कलात्मक प्रयोजन शास्त्रीय रहीत शुद्ध प्रयोजन था जिसके संदर्भ में आ. मिश्र कहते है कि "हिंदी साहित्य के इतिहास में शुद्ध साहित्य की दृष्टि से काव्य-निर्माण करनेवालों की संख्या रीतिकाल में इसी दृष्टि से काव्य निर्माण करनेवालों की संख्या इसकी अपेक्षा निश्चित ही न्यून-

न्युन्तर है ।" शुद्ध कलात्मकता का तात्पर्य काव्य निखार से है । जो बिहारी, नवाज आदि कवियों में दिखाई देती है जो चाँद अशर्फ़ियों के लिए काव्य नहीं लिखते थे बल्कि काव्य की प्रतिबद्धता के कारण उनके काव्य में शुद्ध कलात्मकता निखरती है ।

९. मुक्तक काव्य रूप :-

मुक्तक काव्य धारा का सही विकास रीतिसिद्ध साहित्य में देखा जा सकता हैं । जिसमें गाथा सप्तशती का नाम इस परम्परा में सर्वप्रथम आता है । यह जीवन को सहजता से सरल रूप से चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत करनेवाला प्रथम मुक्तक काव्य है । इसके अलावा मुक्तक काव्य में जो गुण होते है बिहारी के दोहों में भी पुर्णतः विद्यमान दिखाई देते है । इनकी रचनाओं को देखकर मुक्तक काव्य के संदर्भ में आचार्य शुक्ल का कहना है कि "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में स्थायी प्रभाव ग्रहण करता हैं । इसमें तो रस के ऐसे छीटे पड़ते हैं जिनसे हृदयकालिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है ।"

१३.५ रीतिमुक्त काव्यधारा

रीति मुक्त वह काव्य-धारा है जो शास्त्रीय तथा लक्षण ग्रंथो से मुक्त हों । जो स्वच्छन्द रूप से लिखा गया काव्य हो । कई कवि रीति शास्त्रों का निरूपण न करके अपने अनुभूतियों के सही अभिव्यक्ति की तलाश में स्वछन्द रूप से रचनाएं लिखी एक तरह से ये कवि अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर विद्रोही थे । इनका विद्रोह काव्य रीतियों के प्रति ही नहीं तत्काल समाज के सामाजिक - राजनितिक परिस्थितियों के विरुद्ध भी था । इस काव्य धारा के कवियों में अधिकतर प्रबंध काव्य कम लिखकर श्रृंगारिक तथा फुटकल रचनायें लिखी हैं । इनकी रचनाएं सभी मुक्तक शैली में रहती हैं । इसमें भाव की प्रधानता अधिक होती हैं । इस काव्य धारा के प्रमुख कवि रसखान, घनानंद, आलम, ठाकुर आदि सभी रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत है इन्होंने लक्षणबद्ध रचना नहीं लिखी । यह साहित्य धारा रीतिसाहित्य के प्रतिक्रियात्मक रूप से विकसित हुई है जिसके संदर्भ में डॉ. भागीरथ मिश्र जी कहते है कि "वास्तव में यह रीति मुक्त होने की छटपटाहट रीतिकाल के आरम्भ में नहीं मिलती, वरन यह युग उत्तरार्ध में विकसित हुई हैं ।" रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं को दृष्टि में रखकर आ. शुक्ल ने उन्हें निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैं - स्वछन्दवादी कवि, रीतिमुक्त प्रबंधकार, रीतिमुक्त सूक्तिकार, रीतिमुक्त पद्यकार ।

१३.५.१ रीतिमुक्त के प्रमुख कवि :

घनानंद :-

घनानंद को घन आनंद, आनंद, आनंद धन, आनंद मेघ के नाम से जाने जाते हैं । इनका जन्म काल संवत १७९६ में लगभग हुआ और ये संवत १७९६ में नादार्शाही में मारे गए थे । जाति के कायस्थ और दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मेरे मुंशी थे । ये एक विशुद्ध प्रेमी थे । वेश्या सुजान द्वारा ठुकराएं जाने पर वे निराश होकर नगर छोड़कर चले गए और वृंदावन में निम्बार्क सम्प्रदाय अपना कर भक्ति करने लगे । वे मुग़ल सम्राट मुहम्मद के मुंशी थे । इनके काव्य में यह सिद्ध हो जाता हैं की यहाँ स्वच्छंद कवि थे । इनके काव्य में प्रेम वर्णन पर सूफी का

प्रभाव पड़ा हैं । इनकी रचनाओं में अनुभूति की अधिक सघनता मिलती हैं । प्रेम की एकान्तिक उपासना इनके जीवन का साध्य और साधन दोनों हैं।

इनके काव्य की भाषा ब्रज हैं ये मूलतः फारसी भाषा के ज्ञाता थे। इनकी विरहलीला ब्रजभाषा में फारसी के छंद में रचित हैं । इनके रचनाओं में सुजानसागर, विरहलीला, कोकसागर, रासकेलिवल्ली और कृपाकंद ग्रंथो का पता चला हैं । इसके अतिरिक्त कवित्त-सवैयों के फुटकल संग्रह डेढ़ सौ से लेकर सवा चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इन्हें 'प्रेम के पीर' की संज्ञा दी हैं और ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक हैं इसलिए इनके सन्दर्भ में आ. शुक्ल कहते है "प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवी नहीं हुआ ।" इनकी कविता में भावपक्ष प्रधान हैं और कोरे विभाव पक्ष इनमें कम मिलता हैं ।

आलम :-

इनका प्रारंभिक नाम लालमणि था । ये जाती के ब्राह्मण थे । आचार्य शुक्ल के अनुसार इनका कविता काल संवत १७४० से संवत १७६० तक रहा । ये एक मुस्लिम महिला शेख नामक रंगरेजिन से विवाह के लिए इन्होंने अपना धर्म परिवर्तन किया और नाम आलम रखा । उनकी पत्नी का नाम शेख था । इनके पुत्र का नाम जहान था । यह औरंगजेब के दूसरे बेटे मुअज्जम के आश्रय में रहते थे । आलम ने एक बार अपनी पगड़ी रंगने को दी जिसमें एक कागज बंधा चला गया उसमें दोहे की आधी पंक्ति लिखी थी "कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन" शेख ने दोहा इस पूरा किया 'कटी को कंचन काटी बिधि कुचन मध्य धरी दीन' उस चिट को फिर ज्यों-की-त्यों पगड़ी में बांधकर लौटा दिया । आचार्य शुक्ल प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानंद की कोटी में स्थान दिया विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार "आलम प्रेमोन्मत्त कवि है और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते हैं ।" इनके कविता का संग्रह 'आलमकेलि' है माना जाता की इसमें बहुत से कवित्त शेख के रचे हुए हैं ।

बोधा :-

बोधा 'राजापुर' ज़िला, बाँदा के रहने वाले सरयूपारी ब्राह्मण थे । इनका नाम 'बुद्धिसेन' था, पर महाराज इन्हें प्यार से 'बोधा' कहने लगे और वही नाम इनका प्रसिद्ध हो गया । इनका कविताकाल संवत् १८३० से १८६० तक माना जा सकता है । बोधा एक बड़े रसिक जीव थे । कहते हैं कि पन्ना के दरबार में सुभान (सुबहान) नाम की एक वेश्या थी जिससे इनको प्रेम हो गया । इस पर रुष्ट होकर महाराज ने इन्हें छह महीने देश से निकालने का दंड दिया । सुभान के वियोग में छह महीने इन्होंने बड़े कष्ट से बिताए और उसी बीच में 'विरहवारीश' नामक एक पुस्तक लिखकर तैयार की । छह महीने पीछे जब ये फिर दरबार में लौटकर आए तब अपने 'विरहवारीश' के कुछ कवित्त सुनाए । महाराज ने प्रसन्न होकर उनसे कुछ माँगने को कहा । इन्होंने कहा 'सुभान अल्लाह' है । महाराज ने प्रसन्न होकर सुभान को इन्हें दे दिया और इनकी मुराद पूरी हुई । 'विरहवारीश' के अतिरिक्त 'इश्कनामा' भी इनकी एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इनके बहुत से फुटकल कवित्त, सवैये पाए जाते हैं ।

भाषा में संस्कृत और फारसी भाषा का भी अच्छा ज्ञान था । इन्होंने कोई रीतिग्रंथ न लिखकर अपनी मौज के अनुसार फुटकल पद्यों की रचना की है । ये अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे । प्रेममार्ग के निरूपण में इन्होंने बहुत से पद्य कहे हैं । 'प्रेम की पीर' की व्यंजना भी

इन्होंने बड़ें मर्मस्पर्शिनी युक्ति से की है । यत्र तत्र व्याकरण दोष रहने पर भी इनकी भाषा सहज और मुहावरेदार है। उससे प्रेम की उमंग छलक पड़ती है । इनके स्वभाव में फक्कड़पन भी कम नहीं था । 'नेजे', 'कटारी' और 'कुरबान' वाली बाज़ारू ढंग की रचना भी इन्होंने कहीं कहीं की है । जो कुछ हो, ये भावुक और रसज्ञ कवि थे, इसमें कोई संदेह नहीं ।

ठाकुर :-

हिन्दी साहित्य में ठाकुर नाम से तीन कवि मिले हैं ; १) असनीवाले प्राची ठाकुर, २) असनीवाले दूसरे ठाकुर तथा ३) बुंदेल खंड़ी ठाकुर । किन्तु हिंदी साहित्य में बुंदेल खंड़ी वाले ठाकुर को अधिक प्रधानता मिली है । इनकी हस्तलिखित रचनाएं भी मिली हैं । वे जैतपुर दरबार के कवि रहे है । इनकी प्रारंभिक शिक्षा ओरछा में हुई है । १९०४ में 'ठाकुर शतक' नामक रचना संग्रह प्रकाशित हुई है । इनकी रचनाओं में अनुभूति की प्रधानता तथा कलापक्ष को अधिक महत्त्व मिला है ।

इनकी काव्य की भाषा बड़ी ही सरल और सहज रही हैं उन्होंने व्यवहार में चलती ब्रज भाषा का प्रयोग किया । इनकी रचनाओं में भक्ति के काव्य कम मिलते हैं इनका वृत्त स्वछन्द प्रेम में ही रमी । इनकी रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग मिलता है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कहते है कि, "ठाकुर की तरह मुहावरों का प्रयोग हिंदी का कोई दुसरा कवि नहीं कर सकता । हिंदी में ऐसे मस्त, टीसवाले, स्वछंद और पारखी कवि इने-गिने ही हुए ।" इनके काव्य में वियोग पक्ष की प्रधानता रहीं है । स्वछंद प्रेम इनका काव्य विषय रहा है ।

द्विजदेव :-

द्विजदेव (महाराज मानसिंह) अयोध्या के महाराज थे और बड़ी ही सरस कविताएं करते थे । ऋतुओं के वर्णन इनके बहुत ही मनोहर हैं । इनके भतीजे 'भुवनेश जी' ने द्विजदेव जी की दो पुस्तकें बताई हैं - 'श्रृंगारबत्तीसी' और 'श्रृंगारलतिका' । 'श्रृंगारलतिका' का एक बहुत ही विशाल और सटीक संस्करण महारानी अयोध्या की ओर से हाल में प्रकाशित हुआ है । इसके टीकाकार हैं भूतपूर्व अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायण सिंहा । 'श्रृंगारबत्तीसी' भी एक बार छपी थी ।

जिस प्रकार लक्षण ग्रंथ लिखनेवाले कवियों में पद्माकर अंतिम प्रसिद्ध कवि हैं उसी प्रकार समूची श्रृंगार परंपरा में ये । इनकी सी सरस और भावमयी फुटकल श्रृंगारी कविता फिर दुर्लभ हो गई । इनमें बड़ा भारी गुण है भाषा की स्वच्छता । अनुप्रास आदि चमत्कारों के लिए इन्होंने भाषा भद्दी कहीं नहीं होने दी है । ऋतुवर्णनों में इनके हृदय का उल्लास उमड़ पड़ता हैं । बहुत से कवियों के ऋतुवर्णन हृदय की सच्ची उमंग का पता नहीं देते, रस्म सी अदा करते जान पड़ते हैं । पर इनके चकोरों की चहक के भीतर इनके मन की चहक भी साफ़ झलकती है । एक ऋतु के उपरांत दूसरी ऋतु के आगमन पर इनका हृदय अगवानी के लिए मानो आप से आप आगे बढ़ता था ।

१३.५.२ रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

स्वछंद साहित्य का काव्य प्रयोजन रीतिकाव्य से पूर्णतः भिन्न है इसलिए इनके काव्य की विशेषताएं तथा काव्यस्वरूप भी भिन्न है । इस साहित्य के स्वरुप को स्पष्ट करने के लिए निम्न रूप से विशेषताएं इस प्रकार है -

१. रीति परम्पराओं का विरोध :-

रीतिमुक्त काव्य में रीति परम्पराओं की परिपाठी पर नहीं चला बल्कि उनमें उनका विरोध दिखाई देता हैं . जैसे - लक्षणबद्ध रचना के प्रतिक्रिया के रूप में स्वछन्द धारा के काव्य की रचना दिखाई देती हैं । इनकी रचनाओं में बाह्यांग सजानेवाले उपकरण नहीं पाए जाते हैं अर्थात अतिशयोक्ति का प्रयोग कम दिखाई देता है । इनकी काव्यों में काव्यशास्त्रीय ढंग से लिखे रचनाओं को उपेक्षित रखा जाता हैं तथा संवदेना की धरातल पर काव्य की रचना करके आंतरिक भाव को अभिव्यक्त किया गया हैं; जैसे - ठाकुर के काव्य में रीति-परम्परा का विरोध इस प्रकार दिखाई देता हैं -

"डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोनत कवित्त किबों खेली करि जाने हैं ।"

यह विरोध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों धरातल पर हुआ हैं ये कवि काव्यों के बाह्यांग के सजानेवाले तत्त्वों को अनावश्यक मानते थे । देखा जाए तो इनका मुक्तक साहित्य रीति-अज्ञान की उपज नहीं हैं । ये काव्यशास्त्र से भी भली भाति परिचित थे ।

२. काव्यगत स्वछन्द दृष्टिकोण :-

रीतिकाव्य में अनुशासन की प्रधानता दिखाई देती हैं लेकिन रीतिमुक्तक काव्य में अनुभूति को प्रधानता दी हैं; जिससे उनकी रचनाएं स्वछंद अनुभूति का काव्य हैं । उन्होंने आंतरिक भाव को ही सर्वपरी रखा हैं । जैसे - "रीति सुजान सच्ची पटरानी बुद्धि बावरी है कर दासी ।" वे कवित्त शास्त्रीयता पर नहीं बल्कि स्वछन्द भाव धारा प्रेम पर विश्वास करते थे । प्रेम भाव धारा की दृष्टि से घनानंद रीतिमुक्त धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं इनकी प्रशंसा करते हुए आ. शुक्ल जी लिखते हैं - " "

"प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जवान्दानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवी नहीं हुआ ।" वे संवेदनाओं को सहजता से प्रगट करने में विश्वास करते थे । वे हमेशा राजाश्रय में रहे लेकिन चाटुकारिता की प्रवृत्ति को नहीं अपनाया । घनानंद कवि ने तो अपना राजाश्रय तक खो दिया लेकिन अपनी आंतरिक प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया ।

३. भाव-प्रवणता :

रीतिमुक्त कवियों में भाव प्रवणता इनकी काव्यधारा की प्रमुख विशेषता रही हैं । मनुष्य में भावना की प्रवीणता रहती हैं । हर मनुष्य भावनात्मक रूप से एक दुसरे से जुड़ा होता हैं रीति मुक्तक कवियों ने इन्हीं भावनाओं को अपनी कविता का मूल आधार बनाया हैं तथा यथार्थता को महत्त्व कम दिया हैं । वे दूसरी दुनिया में रमे रहते हैं और भावनात्मकता के कारण ही इनकी काव्यों में रहस्यात्मकता दिखाई देती हैं । इनकी रहस्यात्मकता बोधा के काव्य में दिखाई देता है जैसे –

अति खीन मृनाल के तारहूँ तें, तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है ।
सुई बेह के द्वार सकै न तहां, परतीति को टाडो लादावनो है ।।

भावुकता के कारण इनके काव्य में एक विलक्षण माधुर्य रमता हुआ दिखाई देता हैं जिसके कारण कहीं-कहीं रहस्यात्मकता की झलक दिखाई देती है ह्रदय ही उत्तेजना प्रवेग के साथ इनके काव्य लहराता हुआ अभिव्यक्त होता है ।

४. वैयक्तिकता :

काव्य में व्यक्ति की वैयक्तिकता की झलक दिखाई देता हैं । जिसमें अनुभूति और भावना का मिश्रण रहता हैं इसलिए वैयक्तिकता इनके काव्य की एक विशेषता हैं । रीति मुक्तक कवियों ने अपनी निजी अनुभूतियाँ कविताओं के माध्यम अभिव्यक्त किया हैं जैसे – ठाकुर की स्पष्ट वादिता और लोकंमुख भाषा, द्विजदेव का प्राकृतिक प्रेम, घनानंद की भावोद्रेकता आदि । इस प्रकार रीतिमुक्त काव्य में कवियों ने निजी वैयक्तिकता उनकी विशेषता रही हैं ।

५. प्रेम का उद्दंत स्वरूप :

काव्य में प्रेम के तत्त्व की प्रधानता आदिकाल से ही दिखाई देती है परन्तु रीतिकाल में विशेष रूप में मिलती हैं । रीतिमुक्तक के स्वछन्द कवि प्रेम के मतवाले कवि थे । इनका प्रेम ना ही शारीरिक था न काल्पनिक था न पुस्तकीय था उनका प्रेम शुद्ध भावों के धरातल पर अलौकिक था । इनके प्रेम में विरह की प्रधानता अधिक पायी जाती है । जहां प्रेम उनके लिए साधना भी है साध्य भी । इनका प्रेम विलासिता और वासना के स्तर से अधिक ऊँचा दिखाई देता हैं । जैसे बोधा का काव्य सुजान के प्रति जो प्रेम भाव है वो लौकिक ना होकर अलौकिक हो गया है जैसे –

एक सुभान के आनन पे, कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को ।
जानि मिले तो जहान मिले तो जहान कहाँ को ।

६. नारी के प्रति नया दृष्टिकोण :

रीतिमुक्त काल के कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण उदात्त रहा हैं । उनके प्रति सौन्दर्य भाव का वर्णन कवियों ने सूक्ष्म एवं उद्दत रूप से किया हैं । इसके पूर्व रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध साहित्य में नारी के प्रति दृष्ट, वासनायुक्त और कलुषित रहा हैं । रीतिकालीन कवियों के नारी का वर्णन सिर्फ शारीरिक नख शिख वर्णन है जिससे कामुकता को बढ़ावा मिलता रहा लेकिन रीति मुक्त स्वछन्द कवियों की दृष्टि आस्था की रहीं है इसलिए उन्होंने नख शिख वर्णन की परिपाठी को त्यागकर सौन्दर्य का वर्णन अनुभूति के धरातल पर किया हैं । जैसे – प्रेयसी का सौन्दर्य चित्रण करने के लिए उनकी अनोखी उप्रेक्षाएं अत्यंत आकर्षक बन जाती हैं जिसका मनोरम वर्णन निम्न प्रकार से है -

श्याम घटा लिपटी थिर बीजू के, सोहे अमावस अंग उज्यारी ।
घूम के पुंज में ज्वाल की माल सी, पे दृग सीतलता सुखकारी ।।

७. प्राकृतिक चित्रण :

रीति-कवियों ने प्रकृति का चित्रण सौन्दर्यबोध तथा विरह में बारहमासा और उद्दीपन के रूप में किया हैं; जो की यहाँ रीतिकाल की एक परिपाटी के रूप में निर्वाह हुआ हैं । यहाँ पर प्रकृति का अपना मूल रूप नहीं एक परम्परागत शब्दों, बिम्बों के रूप में वर्णन हुआ हैं । यह विशेषता रीतिमुक्त काव्य कवियों में भी विद्यमान हैं इन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन विभिन्न रूप में किया हैं जिसमें कवि की रागात्मकता दिखाई देती हैं जैसे – कवि द्विजदेव के काव्य में प्रकृति वर्णन -

“डोली रे विकासे तरु एकै
सू एकै रहे हैं नवाइकै सौसहि ।
त्यों द्विजदेव मरांड के व्याजही

munotes.in

एकै अनंद के आंसू बरिसहिं ।
तैसेउ के अनुराग भरे
कर पल्लव जोरि के एकै असीसाही ।।"

इसके अतिरिक्त बोधा ने विशेष रूप से 'विरह वारिश' में प्रकृति का चित्रण विशेष रूप से किया हैं ।

८. भाषा का प्रयोग :

रीतिमुक्त काव्य में कवियों ने भाषा का प्रयोग लोग भाषा के सहज रूप में किया हैं इनकी भाषा प्रायः संगीत और लय गुणों से युक्त हैं । इनमें कही भी कृत्रिमता लक्षणबद्धता नहीं पायी जाती । रीति-मुक्तक कवियों की भाषा अधिकतर टकसाली ब्रजभाषा है और अर्थ गाम्भीर्य, मधुर तथा प्रांजल भी हैं । इनके भाषाओं में कहीं - न - कही अभिव्यक्ति के धरातल पर अरबी और फ़ारसी साहित्य के ज्ञाता थे इसलिए इनकी भाषा में फ़ारसी शैलियों का प्रभाव दिखाई देता हैं । भाषा में काव्य सौन्दर्यता लाने के लिए प्रतीक, रूपक, लोकोक्तियाँ आदि भाषा-तत्त्वों से भाषा की अर्थवता में वृद्धि दिखाई देती हैं । डॉ. मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में "ठाकुर ने लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा, रसखान ने मुहावरों द्वारा, आनंदघन ने लक्षणा, मुहावरों, व्याकरण-शुद्धि आदि गुणों से भाषा के स्वरुप को सुसंस्कृत बनाया हैं ।"

९. मुक्तक रचनाएं की प्रधानता :

मुक्तक रचनाएं रीतिमुक्त काव्य की प्रधान विशेषता रहीं हैं । वह प्रबंध काव्य में नहीं बंधे रहे अपनी भावों को अभिव्यक्त करने के लिए मुक्तक शैली को अपनाया हैं । मुक्तक कविता के संदर्भ में आ. शुक्ल जी कहते हैं "यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता" मुक्तक काव्य में हृदय की प्रधानता होती हैं जो हृदय में एक स्थायी भाव ग्रहण करता हैं । रीति-मुक्त काव्य का प्रायः अधिकतर कवियों ने मुक्तक रचनाएं लिखी हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्षतः कहा जाता हैं कि रीतिमुक्त काव्य हिंदी साहित्य का अमूल्य काव्य धारा हैं । जिस प्रकार प्रेम के पीर कवियों ने प्रेम के उदात्त स्वरुप को लोगो तक परिचित करवाया तथा दूसरी और रीतिकालीन काव्यधारा की परिपाठी से कविता को मुक्ति दिलाई । भाषा की शक्ति का अद्भुत प्रयोग कर हृदय की अनुभूतियों को प्रभावी रूप से प्रकट किया और प्रेम के उद्दंत तत्व को काव्य के माध्यम से लोगों तक पहुंचायाँ ।

१३.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने रीतिसिध्द, रितिबध्द और रीतिमुक्त की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। इस रीतिकाल में अनेक राजाओं के आश्रय में कवि रहा करते थे। उनका मनोरंजन करने के लिए यही कवि श्रृंगारिक रचनाओं का निर्माण करते थे। यही श्रृंगारिकता रीतिकाल के प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक रही है। इसी प्रवृत्तियों को विद्यार्थी इस इकाई के माध्यम से समझ सकें।

१३.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) आ. रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का आरंभ करनेवाले कवि किसे माना है ?
२) बिहारी किस काव्य-धारा के प्रमुख कवि है ?
३) रसनिधि का वास्तविक नाम क्या था ?
४) घनानंद किस बादशाह के यहाँ मुंशी थे ?
५) 'काव्य निर्णय' किस कवि की रचना है ?
६) तृप शंभु कवि किसके पुत्र थे ?

१३.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) रीतिबध्द काव्य-धारा की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करें।
२) रीतिसिद्ध काव्य-धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालें।
३) रीतिमुक्त काव्य-धारा के प्रवृत्तियों पर विशद चर्चा करें।
४) रीतिकाल के प्रमुख कवियों पर प्रकाश डालें।

१३.९ संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल
२) हिंदी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेंद्र
३) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार वर्मा
४) हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह रीतिकाल - डॉ. नगेंद्र
५) हिंदी साहित्य का सवेंदनात्मक विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी

❖❖❖❖

munotes.in